# भारतीय आर्थिक नीति
# (Indian Economy Policy)

**प्रश्न पत्र-VI**

**Paper-VI**

**एम.ए. अर्थशास्त्र (उत्तरार्द्ध)**

**M.A. Economics (Final)**

**दूरस्थ शिक्षा निदेशालय**

**महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय**

**रोहतक-124 001**

Copyright © 2004, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

# विषय सूची

## इकाई–I


**अध्याय 1:** आर्थिक विकास - घटक व माप 5
**अध्याय 2:** राज्य, बाजार व संस्थाओं की भूमिका 10
**अध्याय 3:** आय असमानता, पर्यावरण, शिक्षा व स्वास्थ्य, जनांकिकी तथा आधारभूत संरचना 15
**अध्याय 4:** ग्रामीण-शहरी स्थानान्तरण 27
**अध्याय 5:** आर्थिक नियोजन 39
**अध्याय 6:** विकास के लिए पंचायत और एन०जी०ओ० की भूमिका 49


## इकाई–II


**अध्याय 7:** भूमि सुधार 51
**अध्याय 8:** कृषि आगत और हरित क्रान्ति 60
**अध्याय 9:** कृषि कीमत नीति 68
**अध्याय 10:** भारत में कृषि वित्त 73
**अध्याय 11:** भारत में कृषि बाजार 81
**अध्याय 12:** खाद्य (भोजन) सुरक्षाः भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली 86
**अध्याय 13:** औद्योगिक नीति 93
**अध्याय 14:** लघु उद्योग क्षेत्र 121
**अध्याय 15:** भारत की निर्यात-आयात नीति 137
**अध्याय 16:** एक्जिट पॉलिसी - श्रम बाजार सुधार में मुद्दे 143
**अध्याय 17:** भुगतान संतुलन व विदेशी पूँजी 146
**अध्याय 18:** भारत का विदेशी व्यापार - ढाँचा व दिशा 153


## इकाई–III


**अध्याय 19:** केन्द्र-राज्य वित्तीय संबंध 158
**अध्याय 20:** अर्थव्यवस्था में ढाँचात्मक सुधार 163
**अध्याय 21:** भारतीय मुद्रा बजार 172
**अध्याय 22:** भारत में पूँजी बाजार 177
**अध्याय 23:** विश्वव्यापीकरण और डब्ल्यू०टी०ओ० 182
**अध्याय 24:** RBI की मौद्रिक नीति का अवलोकन 189
**अध्याय 25:** भारत में कीमत स्तर 193

# M.A. (Final) Economics
## Paper-V
## Indian Economy Policy

M. Marks : 100
Time : 3 Hrs.

***Note:***

*(i) Question paper will consist of two sections A and B*

*(ii) Section A will consist of two Compulsory questions spread over the whole of syllabus. The first question will consist of 7 parts and the candidate will be required to attempt 5 parts. Answers will be very short type about 35 words carrying 4 marks each. The second question will consist of 3 parts and the candidate will be required to attempt 2 parts. Answer will be short type of about 200 words carrying 10 marks each.*

*(iii) Section B of the paper will consist of 6 questions taking two from each unit, and the candidate will be required to attempt 3 questions selecting one from each unit. The answers will be full length essay type carrying 20 marks each.*

**UNIT–I**

Approaches to economic development and its measurement–sustainable development; Role of State, market and other institutions; Indicators of development – Human development Index (HDI), gender development indices (GDI); Objective and strategy of planning; Failures and achievements of Plans; Developing grass-root organizations for development – Panchayats, NGOs and pressure groups; Board demographic features of Indian populations; Rural-urban migration; Urbanization and civic amenities; Concept and measurement of poverty – Head count index, poverty gap index, squared poverty gap index and Human poverty index (HPI); Income inequality; Energy; Social infrastructure–education and health; Environment; Regional inbalance; Issue and policies in financing infrastructure development

**UNIT–II**

Institutional Structure–land reforms in India; Technological change in agriculture–pricing of agricultural inputs; Terms of trade between agriculture and industry; Agricultural finance policy: Agricultural Marketing and warehousing; Issues in food security – policies for sustainable agriculture; Industrial policy; Public sector enterprises and their performance; Problem of sick unit in India; Privatisation and disinvestment debate; Growth and pattern of industrialisation; Small-scale sector; Productivity in industrial sector; Exit policy – issues in labour market reforms; Approaches for employment generation; Structure and direction of foreign trade; Balance of payments; Issues in export in export policy and FEMA; Exchange rate policy; Foreign capital and MNCs in India; The progress of trade reforms in India.

**UNIT–III**

Fiscal federalism–centre-state financial relations; Finances of central government; Finances of state governments; Parallel economy; Problems relating to fiscal policy; Fiscal sector reforms in India; Analysis of price behaviour in India; Financial sector reforms; Interest rate policy; Review of monetary policy of RBI; Money and capital markets; Working of SEBI in India. Rationale of internal and external reforms; Globalization of Indian economy; W.T.O. and its impact on the different sectors of the economy; Need for issues in good governance; Issues in competition and safety nets in Indian economy.

# ईकाई-1

# अध्याय-1
# आर्थिक विकास - घटक व माप
# (Economic Development – Indicators and Measurement)

आर्थिक विकास के बारे में सर्वमान्य परिभाषा देना काफी कठिन है क्योंकि अलग-अलग अर्थशास्त्रियों के सोचने के तरीके भी अलग-अलग हैं। लेकिन फिर भी हम कह सकते हैं कि आर्थिक विकास एवं प्रक्रिया है। यह किसी उद्देश्य को प्राप्त करने का साधन है। इसकी वजह से राष्ट्रीय आय में व द्धि होती है। इसलिए राष्ट्रीय आय बढ़ने पर साधनों का कुशलता से प्रयोग किया जाता है। लेकिन आधुनिक द ष्टिकोण में इसकी परिभाषा सामाजिक कल्याण के रूप में की जाती है। 1970 के पश्चात् अर्थशास्त्रियों ने यह महसूस करना आरम्भ कर दिया है कि प्रति व्यक्ति आय में व द्धि होने पर भी सामाजिक कल्याण में व द्धि नहीं हुई। इसलिए आर्थिक विकास का मतलब केवल राष्ट्रीय आय या प्रतिव्यक्ति आय में व द्धि न होकर सामाजिक कल्याण होना चाहिए अर्थात् लोगों की आधारभूत आवश्यकताओं की संतुष्टि होनी चाहिए। इससे निर्धनता, बेरोजगारी तथा आय की समानता में कमी है तथा जनता के जीवन स्तर एवं सामान्य कल्याण का सूचकाँक बढ़ता है। इस प्रकार अलग-अलग अर्थशास्त्रियों ने विकास में तथा संव द्धि में अन्तर किया है। आर्थिक संव द्धि का अभिप्राय राष्ट्रीय आय में विस्तार से ही नहीं है बल्कि आर्थिक विकास का संबंध एक विशेष समय से न होकर दीर्घकालिन परिवर्तनों से है। इसी प्रकार आर्थिक विकास को मापने के विषय में अर्थशास्त्रियों के विचारों में भिन्नता रही है। इसका एक निश्चित मापदंड देना मुश्किल है।

## माप
## (Measurement)

विकास का मापना बहुत मुश्किल है। आधुनिक अर्थशास्त्री विकास को व्यक्ति तथा समुदाय की भलाई के लिए जो इस बात को कि भलाई (कल्याण) को निर्धारित करने के लिए भी कुछ पैमाने हैं। जिसमें शामिल है - जीवन की आधारभूत आवश्यकताएँ शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, तथा आय में धन के वितरण में समानता। इस तरह के पैमाने लम्बे-चौड़े पैमाने पर है। लेकिन हर एक पैमाने को मापने का विभिन्न तरीका है और यदि इन विभिन्न तरीकों को मिला दिया जाए तो हम इसे विकास का सूचकांक बनाने की कोशिश कर रहे है जिसमें कुछ कमियाँ होंगी। यद्यपि अर्थशास्त्रियों का कहना है कि देश के लोगों का आर्थिक कल्याण मापने का तरीका प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय है।

भूतकाल में विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा विभिन्न घटकों को अलग-अलग भार देकर एक अलग तरीका विकास को मापने के लिए तैयार किया। प्रो० एवरैट ई० हेगन ने 11 घटकों का निरीक्षण किया। ये सामाजिक और व्यक्तिगत कल्याण से संबंधित हैं जिसमें शिक्षा, पौष्टिक, स्वास्थ्य, रोजगार, आधारभूत औद्योगिक वस्तुओं का प्रयोग संचार और दूसरी सेवाएँ, शहरीकरण तथा प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद। प्रो० डोलन्ड एच० निवोरोकी ने 14 घटकों का निरीक्षण किया जो प्रो० ऐवरेट से मिलते थे। यद्यपि इस सूचकांक में उपभोग वस्तुओं का कम महत्त्व दिया गया लेकिन इनमें एक चीज आम थी - स्वास्थ्य का महत्त्व, पौष्टिकता और शिक्षा जो कल्याण के घटक हैं। प्रो० इरमा एकलमैन ने विकास को मापने के लिए 41 घटकों का प्रयोग किया। इनमें से कुछ घटक सामाजिक या राजनैतिक प्रकृति के थे।

कुछ अर्थशास्त्रियों का मानना है कि प्रतिव्यक्ति आय में माप की अपेक्षा विकास को सामाजिक -आर्थिक घटकों द्वारा मापना चाहिए क्योंकि वे देश के नागरिकों की तस्वीर भली-भाँति पेश कर सकते हैं। हालांकि कुछ अर्थशास्त्री इससे असंतुष्ट है। क्योंकि उनका मानना है कि जिन अर्थशास्त्रियों ने विकास के घटक द्वारा विकास को मापा है उनका अधिकतर ध्यान ढाँचात्मक परितवर्तन पर था न कि मानव कल्याण की तरफ। दूसरा इसमें ये भी दिखाया गया है कि अल्प विकसित देशों को विकसित देशों के पदचिह्नों पर चलना चाहिए। तीसरे इसमें मापते समय आगत पर ज्यादा ध्यान दिया गया है जैसे 1000 मरीजों पर कितनी नर्स या स्कूल में कितने बच्चों का दाखिला आदि। आखिरी राष्ट्रीय आय की तरह अधिकतर घटकों के बारे में आँकड़ों की कमी आदि।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए कुछ अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास को मापने का तरीका तैयार किया जो जीवन की उपयोगिता या जनसंख्या की आवश्यकता को पूरा करनेवाली बातों को ध्यान में रखे। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण अध्ययन प्रो० मोरिस डी० मोरिस है जिसमें तीन घटकों को ध्यान में रखा गया। जो इस प्रकार हैं- एक वर्ष की आयु में आयु सीमा, शिशु म त्युदर व शिक्षा (साक्षरता) इन सबको मिलाकर PQLI तैयार किया गया है। हर एक घटक के लिए विभिन्न देशों की सूची 1 व 100 के बीच है। जिसमें एक को खराब तथा 100 को अच्छा माना गया है।

आमतौर पर यह माना गया है कि जिन देशों की प्रति व्यक्ति GNP कम है उनका PQLI कम तथा जिन देशों की प्रतिव्यक्ति GNP ज्यादा है उनका PQLI भी ज्यादा है। लेकिन इसमें भी कई भ्रान्तियाँ हैं जिन देशों की प्रति व्यक्ति GNP कम है उनका PQLI भी ज्यादा है तथा जहाँ प्रति व्यक्ति GNP ज्यादा है उन देशों का PQLI कम है PQLI कम होने का मतलब है कि उन देशों के लोगों का जीवन स्तर कम है तथा उनकी आधारभूत आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो पाती। अधिक प्रति व्यक्ति GNP तथा निम्न PQLI होने का मतलब है कि आय का हिस्सा कुछ ही लोगों के हाथ में है। इस बात से यह स्पष्ट है कि उच्च GNP उच्च कल्याण प्रदान नहीं कर सकता।

इसलिए प्रति व्यक्ति GNP की बजाय विकास को मापने का विश्वसनीय तरीका PQLI है क्योंकि उच्च आयु स्तर, शिक्षा तथा शिशु म त्यु दर में कमी होने का मतलब है कि विकास का लाभ हर एक व्यक्ति को मिल रहा है लेकिन अधिकतर अर्थशास्त्रियों का कहना है कि यह भी सही तरीका नहीं है क्योंकि इससे इस बात की गारंटी नहीं ली जा सकती है कि ऊँची PQLI से हर एक व्यक्ति के विकास का लाभ मिल रहा है बल्कि यह भी हो सकता है कि अधिकतर लोगों को इसका लाभ मिल रहा है न कि हर एक को। लेकिन वर्तमान में सबसे महत्त्वपूर्ण तरीका विकास को मापने का सही तरीका ह्यूमन डेवलपमेंट इंडेक्स (HDI) जो सबसे पहले

युनाइटेड नेशनल डेवलपमेंट प्रोग्राम (UNDP) द्वारा 1990 में शुरू किया गया। HDI को मापने के लिए विभिन्न घटक लिए गए हैं लेकिन उससे पहले हम मानव विकास के घटक के बारे में वर्णन करेंगे।

## मानव विकास के घटक
## (Indicators of Human Development)

महबूब उल हक ने मानव विकास को मापने के चार तत्त्व लिए हैं-

1. **समानता (Equity)** - यदि विकास का मतलब लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना व बढ़ाना हैं इससे लोगों को बराबर के अवसर मिलेंगे। इसका अभिप्राय है समाज में संवैधानिक ताकत का निर्माण करना मतलब उत्पादिक सम्पत्तियों का भूमि सुधार के तहत विवरण मे परिवर्तन, राजस्व नीति के तहत आय का वितरण मतलब अमीर से गरीब को आय का हस्तांतरण, शाखा पद्धति को सही करना ताकि गरीब लोगों की साख सम्बन्धित आवश्यकताएँ पूरी हो सकें, वोट अधिकार सुधार के तहत राजनैतिक अवसरों में बराबरी तथा सामाजिक व वैधानिक रुकावट दूर करना जिससे महिलाएँ भी बराबर का आर्थिक तथा राजनैतिक हक प्रयोग कर सकें।

2. **उत्पादकता (Productivity)** - उत्पादकता मानव विकास का महत्त्वपूर्ण भाग है उत्पादकता, इसका मतलब लोगों में निवेश की आवश्यकता और उनके लिए इस तरह का वातावरण तैयार करना जो उन्हें अपनी क्षमता का पूर्ण प्रयोग करने के अवसर प्रदान करे। अधिकतर देशों ने आर्थिक व द्धि मानव पूँजी में निवेश द्वारा प्राप्त की है। अधिकतर विकास के मॉडल मानव पूँजी पर आधारित हैं। इसलिए उत्पादकता को मानव विकास का एक पहलू मानना चाहिए।

3. **सशक्तिकरण (Empowerment)** - मानव विकास लोगों को पूर्ण सशक्तिकरण की बात करता है। सशक्तिकरण का मतलब है कि लोग अपनी इच्छाओं को स्वतंत्ररूप से पूरा कर सके। इसमें राजनैतिक प्रजातंत्र भी शामिल है जो लोगों को अपने जीवन के फैसले लेने के लिए प्रभावित करती है। इसका मतलब शक्ति का विकेन्द्रियकरण ताकि वास्तविक सरकार हर एक व्यक्ति के दरवाजे पर लाई जा सके। इसका मतलब देश के सभी सदस्य खासकर NGO (नॉन-गवर्नमेंट आरगेनाइजेसन) अपने फैसले लागू कर सके। इसके तहत शिक्षा, स्वास्थ्य में निवेश तथा हर एक व्यक्ति को इस तरह माहौल देना ताकि वे अपनी उत्पादन क्षमता का पूरा प्रयोग कर सके तथा महिला व पुरुष दोनों सशक्तिकरण प्रदान करना ताकि वे समानरूप से प्रतियोगी हो सकें।

## मानव विकास सूचकांक
## (Human Development Index)

ऊपर वर्णित बातें बताती हैं कि पिछले समय (गत वर्षो) में अर्थशास्त्रियों ने विकास को आर्थिक व द्धि से मानव विकास की तरफ हस्तांतरित किया है। काफी समय से यही बात थी कि राष्ट्र कैसे उत्पादन कर रहा है लेकिन अब यह बात है कि कैसे, लोगों को क्या मिल रहा है। इस हस्तांतरण का मुख्य कारण है लोगों के वस्तुओं के चुनाव की तरफ विशेष ध्यान देना इसमें स्वास्थ्य, शिक्षा, राजनैतिक आजादी साक्षरता आदि आय की तरह महत्त्वपूर्ण है।

यद्यपि, मानव विकास सभी जरूरतों का अंत है। इसलिए इसका माप काफी मुश्किल है। यद्यपि

आर्थिक संव द्धि को मापने का परम्परागत तरीका प्रति व्यक्ति GNP है। इसलिए मानव विकास के विभिन्न पहलुओं को मापना काफी मुश्किल काम है। HDI को UNDP ने 1990 में शुरू किया तथा मानव विकास रिपोर्ट भी 1990 में प्रकाशित हुई। HDI में तीन चीजें महत्त्वपूर्ण ली गई हैं- पौष्टिक, शिक्षा और स्वास्थ्य।

HDI, GNP की जगह नहीं लेता बल्कि समाज की वास्तविक तस्वीर पेश करता है आय के साथ HDI शिक्षा और स्वास्थ्य को भी मापता है, HDI बढ़ने का मतलब है लोगों की स्थिति में सुधार है जबकि किसी एकांकी आय में व द्धि होने से हो सकता है किसी दूसरे का शोषण हो। एक देश से दूसरे देश में HDI अंतर पूरा या बराबर किया जा सकता है लेकिन आय के अंतर को पूरा करना मुश्किल है। HDI में विभिन्न पहलू दिए गए है जिसका हम ऊपर वर्णन कर चुके है। फिर भी कुछ इस प्रकार हैं-

1. HDI में लोगों के आर्थिक व सामाजिक चुनाव को शामिल किया गया है।
2. मानव विकास के आधारभूत तत्त्वों को भी लिया गया है जैसे - जीवन-स्तर, साफ पानी तथा हवा की उपलब्धता आदि।
3. HDI में आयु को वर्षों में, किशोर साक्षरता में किशोरों का प्रतिशत तथा वास्तविक आय को PPP (परचेजिंग पेटिटी पावर) में मापा गया है। जो डालर ($) में ली गई है।

HDI की बनावट के लिए विभिन्न तत्त्व लिए गए है - लंबी आयु, ज्ञान तथा जीवन-स्तर। लंबी आयु का मतलब जन्म के समय आयु सीमा, ज्ञान मतलब शिक्षा प्राप्त करना तथा जीवन का रहन-सहन वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP (PPP जो $ में है) के द्वारा मापना है।

सूचकांक निकालने के लिए निम्नलिखित फार्मूला है-

$$\text{सूचकांक} = \frac{\text{वास्तविक कीमत - न्यूनतम कीमत}}{\text{अधिकतम कीमत - न्यूनतम कीमत}}$$

इसलिए HDI का मतलब आयु सीमा सूचकांक, शिक्षा प्राप्त सूचकांक तथा PPP का साधारण औसत है।

लेकिन HDI का सबसे बड़ा नुकसान है कि यह औसत है तथा यह मानव विकास की सही तस्वीर पेश नहीं करता।

## सेक्स-संबंधित विकास
## (Gender-Related Development Index (GDI))

GDI को 1995 मे मानव विकास रिपोर्ट में शुरू किया गया। यह HDI की तरह ही दिखाई देता है। लेकिन इसमे महिला व पुरुष की असमानता के संबंध में लिया गया है। मानव विकास रिपोर्ट 2000 बताता है कि कनाडा की रैंक GDI में सबसे ज्यादा है। GDI को HDI के साथ लिया गया है जिसमें केवल आदमी व महिला असमानता को साथ जोड़ दिया है। GDI के सामने कई बातें उभर कर आई है जैसे-

1. कोई भी समाज महिलाओं को बराबर का दर्जा नहीं देता यह इस बात का परिणाम है कि HDI की अपेक्षा GDI की कीमत कम है।

2. महिला असमानता को मानव गरीबी के साथ जोड़ा गया है।

3. महिला असमानता को हमेशा आम गरीबी के साथ नहीं जोड़ा गया है।

4. महिला असमानता को समानता में राजनैतिक तथा रीति-रिवाज परिवर्तन के द्वारा भी लाया जा सकता है।

GDI की दर महिला की योग्यता पर भी निर्भर करती है। यदि हम अध्ययन के परिणामों से देखें तो पता चलता है कि केरल में महिलाओं का संपत्ति में हिस्सा 12 प्रतिशत तक तथा हिमाचल में 38 प्रतिशत है। लेकिन केरल में GDI रैक ऊँचा है इसका मुख्य कारण महिलाओं की साक्षरता दर जो कि 81 प्रतिशत है इसलिए महिलाओं के लिए उच्च आय हिस्सा आवश्यक हो सकती है लेकिन पूर्ण नहीं क्योंकि यह महिला समानता की शर्त को पूरा नहीं कर पाता। दूसरी आधारभूत योग्यताएँ भी आवश्यक हैं।

## संस्थापित विकास
## (Sustainable Development)

संस्थापित विकास का अभिप्राय है कि साधनों का इस तरह प्रयोग किया जाए ताकि वर्तमान जनसंख्या की आवश्यकता पूर्ति करने के बाद भविष्य के लिए इन साधनों को बचा कर रखा जाए अर्थात् वर्तमान तथा भविष्यकाल में जनसंख्या इन साधनों का समानरूप से प्रयोग करे। यदि विकास प्रक्रिया का आंकलन किया जाए तो यह कई स्तरों से गुजर कर यहाँ पहुँची है। पहले आर्थिक संव द्धि से आर्थिक विकास-मानव विकास से संस्थापित विकास। संस्थापित विकास को छोड़कर हम बाकी का वर्णन पहले ही कर चुके हैं।

अल्पविकसित देशों की जनसंख्या में लगातार व द्धि से साधनों का पूर्णरूप से सदुपयोग नहीं हो पाता इसलिए आवश्यकता पूर्ति तथा संव द्धि के लिए हम इन साधनों का दुरुपयोग करना आरम्भ कर देते हैं। जैसे जनसंख्या बढ़ने से बिजली की माँग भी बढ़ती है तथा बढ़ी माँग की पूर्ति के लिए अथवा बिजली की अधिक मात्रा पैदा करने के लिए हम पानी का दोहन करते हैं। मानव संसाधन देश की पूँजी है लेकिन यदि इनकी आवश्यकता पूर्ति के लिए साधनों का दोहन होगा तो हमारे लिए घातक है। यह हम इन साधनों को बचाकर रखना चाहते हैं तो हमें देश को अथवा अर्थव्यवस्था को स्थापित विकास देना होगा ताकि भविष्य में जनसंख्या व द्धि में होनेवाली समस्याओं को जैसे प्राकृतिक साधन - जल, साफ हवा, रहने की व्यवस्था, मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की कमी न हो। यदि विकास के नाम पर यदि इन साधनों का दोहन करते रहे तो भविष्य में इनकी कमी उत्पन्न होगी तथा जनसंख्या को संस्थापित विकास जैसी आवश्यकता से वंचित रहना होगा जो कि बहुत आवश्यक है। विकास का अभिप्राय केवल जन कल्याण के साथ समाज को स्वच्छ पानी, शुद्ध वातावरण, रोजगार तथा मूलभूत आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति का होना चाहिए। विकास का मतलब केवल उत्पादन बढ़ाना ही नहीं होना चाहिए। इस प्रकार वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ भविष्य के लिए जनसंख्या के बीच उपलब्ध साधनों का समान रूप से बँटवारा व प्रयोग को ही हम संस्थापित विकास का नाम देते हैं। यह अर्थव्यवस्था को सुचारूरूप से चलाने के लिए अहम् कड़ी है। यदि इस तरह के विकास पर ध्यान दिया जाए तो भविष्य में साधनों की कमी की समस्या अपने आप ही कम हो जाएगी। हमारे लिए वर्तमान ही नहीं भविष्य की आवश्यकताएँ भी महत्त्वपूर्ण है।

# अध्याय-2
# राज्य, बाजार व संस्थाओं की भूमिका
# (Role of State, Market and Institutions)

अल्पविकसित देशों में विकास के कार्यक्रम चलाने के लिए राज्यों की भूमिका अहम है। राज्यों की इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इस प्रकार हम निम्नलिखित बातों द्वारा अल्पविकसित देशों में राज्य की भूमिका का वर्णन करेंगे।

1. **योजना की आवश्यकता (Need for Planning)** - द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् अधिकतर अल्पविकसित देश गरीबी के दुष्चक्र में फँस गए। इसलिए इस गरीबी के दुष्चक्र को तोड़ने के लिए वित्तीय तथा शारीरिक साधनों की आवश्यकता थी। इन देशों में साधनों की कमी से साधनों का वितरण इस प्रकार करना ताकि इसका सही प्रयोग हो सके। यह गहन सोच का विषय था अल्पविकसित देश को बैलैंस्ड, अनबैलैंस ग्रोथ या क्रिटिकल मिनियम एफर्ट अपनाना चाहिए। इसलिए राज्य की भूमिका अहम थी कि किस प्रकार योजना बनाकर न्यूनतम का ज्यादा या सही प्रयोग किया जाए।

2. **पूँजी निर्माण में भूमिका (Role in Capital Formation)** - अल्पविकसित देशों में आर्थिक प्रक्रिया के लिए पूंजी की अहम आवश्यकता है। यह सब पूँजी निर्माण पर निर्भर करता है अल्पविकसित देशों की सबसे बड़ी समस्या साधनों का अधिकतम प्रयोग करना है। सबसे बड़ी समस्या यह रहती है कि कैसे पूँजी की पूर्ति को बढ़ाया जाए। पूँजी की पूर्ति बचत पर तथा बचत प्रतिव्यक्ति आय पर निर्भर करती है जो कि अल्पविकसित देशों में कम है। लेकिन क्रियात्मक तौर पर पूँजी की पूर्ति को कौशल, प्रबंधन तथा विशेषज्ञ भी प्रभावित करते हैं जो पूर्ण तौर पर पूँजी निर्माण की बढ़ोत्तरी पर निर्भर करते हैं।

   अब प्रश्न यह उठता है कि पूँजी निर्माण कैसे बढ़े क्योंकि आय स्तर कम होने पर लोगों की बचत करने की क्षमता भी कम है और दूसरी तरफ अमीर वर्ग उपभोग पर बेकार के खर्च करता है। इसलिए साधनों के प्रयोग की जिम्मेवारी राज्य पर निर्भर करती है। सरकार प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कर लगाती है लेकिन प्रतिव्यक्ति आय कम होने पर सरकार को प्रत्यक्ष कर की बजाय भारी मात्रा में अप्रत्यक्ष कर पर निर्भर रहना पड़ता है।

3. **संस्थाओं के निर्माण में भूमिका (Role in Building Institution)** - यद्यपि पूँजी की कमी आर्थिक विकास में बड़ी बाधा है इसलिए सरकार बैकिंग संस्थाएँ, बचत संगठन, जीवन बीमा कारपोरेशन का निर्माण करती है। ये संगठन लोगों की बचत बढ़ाने में अहम भूमिका निभाते हैं और ये बचत ऋण के तौर पर निवेश की जाती है। वास्तव में बैंकिंग सुविधाओं के विस्तार के बिना, औद्योगिक उन्नति और आधुनिकीकरण के

कार्यक्रम संभव नहीं है तथा इनकी गति भी धीमी रहेगी।

4. **संस्थागत ढाँचे के विकास में भूमिका (Role in Development of Infrastructure)**- अल्पविकसित देश में संस्थागत ढाँचों (यातायात, बिजली, संचार, सिंचाई) का विकास सरकार पर निर्भर करता है क्योंकि निजी क्षेत्र भारी निवेश की वजह तथा लाभ की कम मात्रा से इनमें निवेश करने के इच्छुक नहीं होते। देश में कृषि, औद्योगिक विकास आधारभूत ढाँचे पर निर्भर करता है। यदि यह विकसित नहीं होगा तो देश का विकास करना असंभव है। भारत में इसके विकास की तरफ विशेष ध्यान दिया गया है। त तीय योजना में कुल निवेश का 24.7 प्रतिशत संचार तथा यातायात पर खर्च किया गया। ऊर्जा क्षेत्र में 14.7 प्रतिशत था तथा सातवीं व आठवीं पंचवर्षीय योजना में कुल 50 प्रतिशत था।

5. **औद्योगिक आधार को मजबूत करना (To Strength Industrial Base)** - पूँजीगत उद्योगों में निवेश करना आधारभूत ढाँचे में निवेश की तरह है। उदाहरण के तौर पर भारी उद्योग जैसे लोहा व इस्पात उद्योग, मशीन व औजार उद्योगों में भारी मात्रा में निवेश की आवश्यकता है। निजी व्यक्ति इन उद्योगों में निवेश करने के इच्छुक भी नहीं होते तथा उनके पास इतना ज्यादा पैसा भी नहीं होता। ये उद्योग देश में औद्योगिकीकरण बढ़ाने में रीढ़ की हड्डी की तरह है। इसलिए इनके विकास की सारी जिम्मेदारी सरकार पर निर्भर करती है।

6. **कृषि विकास में भूमिका (Role in Agricultural Development)** - अल्पविकसित देशों का मुख्य व्यवसाय कृषि है तथा यह राष्ट्रीय आय में काफी योगदान करती है। यद्यपि इस क्षेत्र में व द्धि दर कम है तथा यह आर्थिक विकास में बाधक है। लेकिन सरकार का मानना है कि जब तक कृषि आत्म-निर्भर नहीं बनेगा तब तक विकास की गति को बढ़ाया नहीं जा सकता। कृषि विकास के लिए नए खाद, बीज व सिंचाई व्यवस्था की अहम आवश्यकता है। इसके साथ-साथ किसानों को साख सुविधाएँ उपलब्ध कराना भी सरकार की ही जिम्मेदारी है। इसलिए अल्पविकसित देशों में सरकार की भूमिका अहम है। सरकार के हस्तक्षेप तथा योगदान के बिना अल्पविकसित देशों का विकास संभव नहीं।

7. **गरीबी तथा आय की असमानता की समस्या को कम करना (To Reduce the Problem of Poverty and Inequalities)** - आय की असमानता तथा भारत में गरीबी वाले अध्याय में हम इसका वर्णन कर चुके हैं। अल्पविकसित देशों में (भारत) लगभग 40% लोग गरीबी रेखा से नीचे हैं। अधिक संपत्ति पर भी कुछ ही लोगों का एकाधिकार है। इसलिए गरीबी तथा आय की असमानता को कम करने के लिए राज्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता है। सरकार ने गरीबी हटाने के लिए देश में ग्रामीण कार्यक्रमों की शुरुआत की तथा आय की असमानता कम करने के लिए सरकार ने कर प्रणाली का प्रयोग किया।

8. **क्षेत्रीय असमानता में कमी (Reduction in Regional Imbalances)** - देश में अधिकतर देश क्षेत्रीय असमानता की समस्या से पीड़ित हैं। विकसित देश जैसे अमेरिका भी इस समस्या को काबू नहीं कर सके। इस तरह की समस्या का निवारण करने के लिए भारत सरकार ने कुछ नीतियाँ निर्धारित की है जैसे उन क्षेत्र में उद्योग लगाना जो कि पिछड़े हुए राज्यों को योजनाओं के लिए तथा गैर-योजनाओं के लिए साधन

मुहैया करना तथा पिछड़े क्षेत्र में सार्वजनिक प्रोजेक्ट चालू करना आदि है। इस तरह के कार्यक्रम केवल राज्य सरकार ही चला सकती है क्योंकि निजि क्षेत्र जहाँ लाभ की मात्रा कम हो वहाँ निवेश करने में रुचि नहीं लेते।

9. **सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण को बढ़ावा (To Enhance Public Health and Family Welfare)** - वर्त्तमान समय में सामाजिक-आर्थिक कल्याण बढ़ाने की वजह से अल्प-विकसित देश सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण के लिए काफी मात्रा में धन खर्च करते हैं। सरकार ने अकाल, महामारी आदि रोकने के लिए महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं। सरकार ने न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम भी चलाए ताकि लोगों की न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। सरकार ने ग्रामीण स्वास्थ्य, पौष्टिकता कल्याण में खर्च करने से सरकार को किसी भी प्रकार की आय प्राप्त होने की सम्भावना नहीं रहती। इसलिए इस तरह के क्षेत्रों में निजी क्षेत्र कोई भी रुचि नहीं दिखाते तथा इसकी पूरी जिम्मेवारी सरकार पर रहती है। ग्रामीण क्षेत्र में सड़क, बिजली, घरों की सुविधा आदि जिम्मेदारी सरकार पर होती है।

## बाजार की भूमिका
## (Role of Market)

आधुनिक अर्थशास्त्री मुख्यरूप से दो संस्थाएँ बाजार तथा योजनाओं पर - आर्थिक समस्याओं का निवारण करने के लिए निर्भर रहते हैं। अर्थव्यवस्था के विकास में बाजार की अहम भूमिका है। यद्यपि आधुनिक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में प्रतियोगिता बाजार को जारी रखना काफी मुश्किल है। सरकार भी सार्वजनिक उद्योग के जरिए उत्पादन में शामिल होती है। इसलिए एक अर्थव्यवस्था का विकास बाजार के निर्धारण पर काफी निर्भर करता है। अर्थव्यवस्था में बाजार के मुख्य कार्य हैं - समाजवादी अर्थव्यवस्था में बाजार पद्धति का ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ता बल्कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में अर्थव्यवस्था की कार्य प्रणाली काफी हद तक बाजार पर निर्भर करती है।

1. **उपभोग वस्तुओं के स्टॉक का बँटवारा (To Allocate the Stock of Consumer's)**- जो अर्थव्यवस्था श्रम के विभाजन पर निर्भर करती है वहाँ उत्पादन स्वयं उपभोग के लिए किया जाता है। हर एक व्यक्ति कोई-न-कोई कार्य करता है जिसकी उसको अदायगी होती है। वर्तमान में उत्पादन खरीददारों को ध्यान में रखकर बनाया (उत्पादित) किया जाता है। आधुनिक अर्थव्यवस्था में यह पद्धति इतनी आसान है कि किसी को यह सोचने की जरूरत कैसे किसे क्या प्राप्त हुआ है। इन सब प्रक्रिया में बाजार की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। बाजार लाभ के द्वारा ही निर्धारित होता है तथा इसमें तथा उत्पादक उन्हीं को अपना उत्पादन बेचता है जो ज्यादा कीमत देते हैं। इस तरह के बाजारों में उपभोगकर्त्ता को बराबर का दर्जा नहीं दिया जाता। यद्यपि गरीबों को उपभोग वस्तुएँ कम मिलती है तथा अमीर वर्ग जो चाहता है वही प्राप्त कर सकता है। इसलिए बाजार क्रय शक्ति के आधार पर ही उपभोगकर्त्ता को वस्तुओं का बँटवारा करता है।

2. **वस्तुओं के उत्पादन का बँटवारा (To Allocate the Production between Commodities)** - सामाजिक अर्थव्यवस्था में इस तरह का बँटवारा सरकार द्वारा किया जाता है कि कौन-सी वस्तु की मात्रा ज्यादा होगी जैसे उदाहरण के तौर पर उपभोग वस्तुओं का ज्यादा उत्पादन हो या दूसरी वस्तुओं का जैसे सुरक्षा संबंधी

उत्पादन। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में तरह के निर्णय सरकार नहीं करती। ऐसी अर्थव्यवस्था में इस लाभ की मात्रा को देखकर ही उत्पादन को क्रियाओं में बाँटा जाता है। इसलिए पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में बाजार की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। स्वतन्त्र बाजार अर्थव्यवस्था में माँग को कीमत प्रभावित करती है तथा उत्पादक को उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति को ध्यान में रखकर ही कीमत का निर्धारण करना चाहिए। यदि उत्पादन इस तरह की व्यवस्था को ध्यान में नहीं रखता है तो उसे जोखिम भी उठानी पड़ सकती है। यद्यपि फैसला करना मुश्किल है लेकिन इसके सिवाय कोई चारा नहीं है।

3. **विभिन्न प्रयोगों में उत्पादन के साधनों का बँटवारा (To Allocate the Factors of Production among their Various)** - किसी भी देश में उत्पादन के साधनों की पूर्ति असीमित नहीं है। इसलिए हर एक अर्थव्यवस्था को उपभोग आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तथा आय बढ़ानेवाली वस्तुओं को ध्यान में रखकर उत्पादन के साधनों का बँटवारा करना पड़ता है इसलिए सस्ती तथा महँगी वस्तु दोनों का ही उत्पादन करना पड़ता है। उत्पादन के मालिक एक तरफ इस तरह के खरीददारों को भी ध्यान में रखते है जो कीमत ज्यादा दे सकें तथा इससे उनकी आय में बढ़ोत्तरी हो। इसलिए उत्पादनकर्त्ता को महँगे उत्पादन के साधनों की जगह सस्ते साधनों को प्रयोग करने में भी कोई परेशानी नहीं है। ये उपभोगकर्त्ता की आय को तथा क्रयशक्ति को ध्यान में रखकर किया जाता है।

   इसलिए इन सब बातों के साथ-साथ उत्पादक को उपभोगकर्त्ता की रुचि का भी ध्यान रखना होगा। उत्पादकों को अपने लाभ बढ़ाने के लिए भी कोशिश करनी चाहिए इसलिए उत्पादक के बाजार की हर एक स्थिति का पूर्ण गहन अध्ययन करना पड़ता है ताकि वह हर एक वस्तु की जानाकरी रख सके।

   लेकिन कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि इस तरह के निर्णय बाजार की अपेक्षा सरकार को करने चाहिए। क्योंकि अल्प-विकसित अर्थव्यवस्था में समाज कल्याण या उपभोक्ताओं का हित सरकार द्वारा ही पूरा किया जा सकता है क्योंकि निजी व्यक्ति तो कल्याण को छोड़कर लाभ कमाने की व्यवस्था पर ज्यादा ध्यान देता है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर ही बाजार की भूमिका का अवलोकन करना चाहिए।

अधिकतर अल्पविकसित देशों में बाजार की भूमिका संदेहजनक है क्योंकि इन देशों में उत्पादक को बाजार के आकार, दूसरे उत्पादकों की मौजूदगी से प्रतियोगिता के स्तर कितना अंतर, बाजार सूचना आदि की सही जानकारी नहीं होती। इसलिए यदि अधूरी सूचना के आधार पर यदि बाजार का निर्धारण किया जाए तो यह अर्थव्यवस्था के लिए घातक होगा। अल्पविकसित देशों में राज्य की भूमिका महत्त्वपूर्ण है क्योंकि सामाजिक वस्तुएँ जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य जो कि लागत से भी कम कीमत पर प्रदान की जाती है। ऐसी अवस्था में निजी उत्पादकों को इसे उत्पादित करने में कोई लाभ नहीं है। इसलिए सरकार को न्यूनतम कल्याण को ध्यान में रखकर इन वस्तुओं को प्रदान करने की जिम्मेदारी निभानी चाहिए।

बाजार साधनों के बँटवारे का भी सही ढंग से प्रयोग नहीं कर पाता। इसमें सकल माँग तथा सकल पूर्ति के संतुलन पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। इस प्रकार हम कह नहीं सकते कि बाजार की विकास की प्रक्रिया है क्योंकि बाजारों में अपूर्णता आसनी से देखने को मिलती है। बाजार हमेशा पूर्ण प्रतियोगी नहीं होते। यह सच्चाई है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में

बाजार अपूर्ण प्रतियोगी है। इन देशों में पूँजीवादी का एकाधिकार आसानी से देखने को मिलता है।

यद्यपि यह भी मान लें कि बाजार पूर्ण रूप से सही कार्य करता है फिर भी इसे विकास का सूचक नहीं कह सकते। क्योंकि सामाजिक व निजी लागत व लाभ में अंतर है। बाजारों की भूमि गरीब लोगों के प्रति सकारात्मक नहीं है क्योंकि जो उत्पादक वस्तु का उत्पादन करता है उसका मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना है। इसलिए इस बात से नकारा नहीं जा सकता कि आर्थिक विकास एक संरचनात्मक प्रक्रिया ही हो सकता है। बाजार साधनों का बँटवारा करने में सही हो तथा वह निश्चित उद्योगों को उभरने का मौका दे तथा कुछ उद्योगों को असफल कर दे तो ऐसी अवस्था में उत्पादन की रफ्तार टूट जाएगी जो कि अर्थव्यवस्था के लिए घातक है। इसलिए दीर्घकालीन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए सरकार को ऐसी अवस्था में हस्तक्षेप करना चाहिए जहाँ देश का विकास प्रभावित हो। इसलिए 1991 की WDR में कहा गया है कि राज्य देश के आर्थिक विकास मे अहम भूमिका अदा कर सकता है यदि इसका हस्तक्षेप कम हो। यह भी सही है कि राज्य के हाथों में अधिक नियंत्रण होने पर लालफीताशाही, देरी तथा नीतियाँ अर्थशास्त्रियों, विशेषज्ञों द्वारा नहीं बनाई जाती बल्कि राजनीतिज्ञ ही इनका निर्माण करते हैं। लेकिन फिर भी राज्य की महत्ता को नकारा नहीं जा सकता। भारत जैसे अल्पविकसित देश में राज्य की भूमिका भविष्य नीति निर्धारण के लिए महत्त्वपूर्ण है। इन सब सीमाओं के बावजूद भी राज्य की भूमिका देश के विकास के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण है। गरीबी, बेरोजगारी तथा असमानता, अज्ञानता, अपौष्टिकता भविष्य में आविष्कारिक भूमिका निभानी होगी। तभी देश का विकास संभव हो सकेगा।

# अध्याय-3

# आय असमानता, पर्यावरण, शिक्षा व स्वास्थ्य, जनांकिकी तथा आधारभूत संरचना

# (Income Inequalities, Environment, Education and Health, Demography and Infrastructure)

यह आमतौर पर सोचा जाता है कि आय की असमानता लोगों की क्षमता पर निर्भर करती है। यह सही नहीं है। भारत में आय असमानता के दो मुख्य कारण हैं-

1. वर्तमान आर्थिक पद्धति निजी संपत्ति संस्थाओं पर आधारित।
2. पैत क संबंधी कानून

1. **निजी मालिकाना संपत्ति (Private Ownership Property)** - भारत एक मिश्रित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था है। आर्थिक पद्धति में लोग सम्पत्ति के अधिकार का आनंद लेते है। इसलिए जमीन, इमारत आदि ही व्यक्ति के अधिकार में नहीं बल्कि उनके उत्पादन के साधन जैसे फैक्ट्री, बसें, खेत भूमि, खाने आदि पर निजी लोगों का अधिकार है। आमतौर पर देश में लोगों को दो वर्गों में बाँटा जाता है पहले में जिनके पास संपत्ति नहीं है वे अपने जीवन निर्वाह के लिए श्रम शक्ति पर निर्भर हैं। कुछ लोगों को छोड़कर अधिकतर लोग गरीब हैं। अब हम इनकी असमानता का वर्णन करेंगे।

   A. **भूमि मालिकाना में असमानता (Inequalities in Landownership)** - ग्रामीण क्षेत्र में इस तरह की असमानता काफी देखने को मिलती है। इसका मुख्य कारण ब्रिटिश शासन के दौरान जमींदारी प्रथा का होना है। यद्यपि स्वतन्त्रता के पश्चात् जमींदारी प्रथा खत्म कर दी गई थी लेकिन फिर भी भूमि मालिकाना हक को तोड़ा नही जा सका। NSS (नेशनल सैंपल सर्वे - 26वां राऊंड) के तहत 1971-72 में बड़े किसानों के पास कृषि का 39.43 प्रतिशत केवल 5.44 प्रतिशत किसानों के पास था। इस प्रकार के आँकड़े हम भूमि सुधार वाले अध्याय में भी बता चुके है। इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों मे आय असमानता का मुख्य कारण भूमि और संपत्ति के ऊपर कुछ लोगों का अधिकार होना है। अधिकतर छोटे व सीमांत किसानों के पास जिनके पास 2 एकड़ जमीन है वे काफी गरीब है। यद्यपि बड़े किसानों की आय ज्यादा नहीं थी लेकिन हरित क्रान्ति के बाद उनकी आय तेजी से बढ़ रही हे। अब बड़े किसानों के पास केवल बचत करने की क्षमता ही नहीं है बल्कि वे संस्थागत वित्त का भी प्रबंध करते है। हरित क्रान्ति से छोटे तथा सीमांत

किसानों की आय में ज्यादा व द्धि नहीं हो पाई क्योंकि उनके पास साधनों की कमी है।

B. **उद्योगों, व्यापार तथा इमारतों पर निजी अधिकार (Private Ownership of Industries, Trade and Building)** - भारत का सामाजिक ढांचा इन सबसे ऊपर निजी अधिकार रखने की इजाजत देता है। इसलिए अधिक संपत्ति पर कुछ ही लोगों का अधिकार है। इसलिए संपत्ति पर कुछ ही लोगों का एकाधिकार रहता है। सन् 1971-81 के बीच इन एकाधिकार ग्रुप का हिस्सा स्थिर रहा है। लेकिन फिर भी इन पर कुछ लोगों का एकाधिकार है। सरकार की नीतियाँ इस एकाधिकार को कम करने में नाकाम रही है। मन्दी के समय में भी इनकी संपत्तियाँ लगातार बढ़ी हैं।

शहरों में किए गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि 10 प्रतिशत लोगों के पास संपत्ति का 46.29 प्रतिशत था जबकि केवल 11.69 प्रतिशत निचले 60 प्रतिशत लोगों के पास था। इसका मुख्य कारण उत्पादन के साधनों पर इनका एकाधिकार है। शहरों में जो लोग नीचे तबके के है वे गरीब हैं।

C. **व्यवसाय की असमानता (Inequalities of Professionals)** - इंजीनियर, वकील, व्यावसायिक लोगों की आय ऊँची है। इसलिए यह धारणा गलत है कि व्यावसायिक क्षमता की कमी की वजह से आय असमानता है। भारत जैसे देश में प्रशिक्षण की सुविधा हर एक को उपलब्ध नहीं हो सकती। कृषि श्रमिकों के बच्चे तथा औद्योगिक श्रमिकों के बच्चे इस तरह की शिक्षा प्राप्त करने की आशा नहीं रख सकते। अमीर व्यक्तियों के बच्चे ही इस तरह की शिक्षा प्राप्त कर पाते हैं। इसलिए शिक्षा व प्रशिक्षण से भी आय की असमानता पनपती है।

2. **उत्तराधिकार कानून (Inheritance Law)** - वर्तमान उत्तराधिकार कानून भी आय की असमानता का कारण है। इस बात पर गहन विचार करना चाहिए कि पूँजीपति का बेटा पूँजीपति है। जबकि श्रमिक का बेटा श्रमिक है। क्योंकि इसका मुख्य कारण उत्तराधिकार कानून के अन्तर्गत माता-पिता की संपत्ति पर बच्चों (लड़के व लड़की) का अधिकार होगा। इसलिए वे बच्चे भाग्यशाली है जो अमीर परिवारों में जन्म लेते हैं।

आय असमानता के भी और कुछ कारण हैं जैसे-

A. **कीमतों में व द्धि (Rise in Price)** - कीमतों में व द्धि की मार गरीब लोगों पर ज्यादा पड़ती है क्योंकि इससे कामगार वर्ग की वास्तविक आय कम हो जाती है जबकि उद्योगपतियों, व्यापारियों और किसानों की कीमत बढ़ने से बाजार आधिक्य की अधिक कीमत मिलती है। यदि हम 50 के दशक से देखें तो वस्तुओं की कीमतों में लगातार व द्धि हुई है जो आय असमानता का कारण है।

B. **साख सुविधाओं में असमानता (Inequalities in Credit Facilities)** - भारत में साख सुविधाओं की असमानता का मुख्य कारण धन का असमान वितरण हैं क्योंकि अधिकतर श्रमिक व छोटे किसान अपनी जरूरतों के लिए जमींदारों

तथा पैसा उधार देनेवालों पर निर्भर करते हैं और ये पैसा उधार देनेवाले ऊँची ब्याज दर लेकर गरीब लोगों का शोषण करते हैं।

C. **निजी निवेश में शहरी पक्ष (Urban Bias in Private Investment)** - भारत में लगभग ७० प्रतिशत जनसंख्या गाँव में रहती है जबकि उद्योगों में निजी निवेश का लगभग ७० प्रतिशत शहरी क्षेत्रों से जाता है। शहरी क्षेत्र में अधिकतर मशीन आधारित प्रोजेक्ट पर काम किया जाता है। इसलिए पूँजी आधारित तकनीक वाले क्षेत्रों में रोजगार के अवसर काफी कम है इसलिए श्रमिक वर्ग के लिए रोजगार के अवसर सीमित हो जाते हैं। आखिरकार वही परिणाम निकलता है आय की असमानता।

यद्यपि सरकार ने आय की असमानता को कम करने के लिए सरकारी नीति बनाई है। योजनाओं के अन्तर्गत भी आय की असमानता तथा धन के समान वितरण पर विशेष ध्यान दिया है। सरकार ने इसके लिए निम्नलिखित उपाय किए हैं-

1. **भूमि सुधार लागू करना (To Implement Land Reforms)** - सरकार ने कृषि भूमि के वितरण के लिए तथा आय की असमानता कम करने के लिए भूमि सुधार कार्यक्रम लागू किया। जमींदारी प्रथा खत्म होने से पहले भूमि की अधिक मात्रा जमींदारों के पास थी। इस तरह के जमींदार जिनको हम अनुपस्थित जमींदारी की सूची में रखते हैं। यद्यपि इसका पूर्णरूप से वर्णन हम भूमि सुधार अध्याय में कर चुके हैं जैसे भूमि की सीमा निर्धारित करना तथा जमींदारों से जमीन लेकर कृषि, श्रमिक व भूमिहीनों को भूमि वितरण करना आदि।

2. **रोजगार के ज्यादा अवसर पैदा करना (To Generate more Employment)** - सरकार ने इस तरह के मजदूरी नीति लागू की जिसका मुख्य उद्देश्य रोजगार बढ़ाना था। सरकार ने स्वयं रोजगार स्कीम, कार्य के बदले अनाज स्कीम तथा विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रम चलाए जिससे रोजगार के अवसरों में बढ़ोत्तरी हो जैसे NREP, RLEGP, IRDP आदि ग्रामीण कार्यक्रम। इन सभी कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के अवसर जुटाना था।

3. **कराधान (Taxation)** - भारत में कर प्रणाली इस तरह से बनाई गई जो धन को कुछ हाथों में केन्द्रित होने पर रोकती है। जैसे सरकार ने आय कर, संपत्ति कर आदि का प्रवाधन भी किया है। हालांकि यह कहना सच नहीं होगा कि भारत की कर प्रणाली गरीबों के पक्ष में है। कर प्रणाली आय की असमानता के पहलुओं को भी नहीं छूती। इस तरह के सूचना तथा आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए इसके बारे में जानकारी देना मुश्किल है।

4. **गरीबों को ऊपर उठाने वाले कार्यक्रम (Programme to Uplift the Poor)** - ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी की मात्रा काफी है। गरीब परिवार भूमिहीन, ग्रामीण काश्तकार, छोटे व सीमांत किसान आदि तथा पिछड़े वर्ग के लोग हैं। सरकार ने इनकी आय बढ़ाने के लिए जैसे कार्य (रोजगार) बढ़ाने वाले कार्यक्रम क्षेत्र का विकास कार्यक्रम शुरू किए है। इसमें अधिकतर वही कार्यक्रम है जो ग्रामीण क्षेत्र में चलाए गए थे जैसे JRY, RLEGP, NREP कार्यक्रम आदि। इनके तहत सरकार ने ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए तथा गरीब लोगों को रोजगार प्रदान करने की पहल की। जिससे गरीब लोगों की आय का स्तर बढ़े तथा इससे आय की असमानता कम हो।

5. **एकाधिकार का नियंत्रण (To Control Monopoly)** - सरकार एकाधिकार का नियंत्रण के लिए मोनोपालिज एंड ट्रेड प्रेक्टिस (MRTP) शुरू किया। यह 1969 में शुरू किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य आर्थिक एकाधिकार को नियंत्रण करना था। यद्यपि इसके परिणाम संतोषजनक नहीं रहे। यद्यपि सरकार ने छोटे उद्योगपतियों को प्रोत्साहित करने के लिए औद्योगिक लाइसेंस नीति भी शुरू की। ताकि छोटे उद्योगों को असफल होने से रोका जा सके।

यद्यपि सरकार द्वारा किए गए उपायों से गरीबी पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा है। क्योंकि निजी संपत्ति नियंत्रण खत्म नहीं हो पाया। पैत क अधिकार भी समाप्त नहीं हुआ। इसलिए शासक ही देश मे आनन्द का जीवन जीते है।

## पर्यावरण
## (Environment)

समाज के विकास के लिए पर्यावरण की अहम भूमिका है। देश ने इसकी महत्ता को अच्छी तरह समझा है। भारत के प्राकृतिक साधन अच्छे, मौसमी हालत भी पक्ष में, भूमि उपजाऊ और पानी वाली है और ईंधन काफी मात्रा में उपलब्ध है। इस देश में पशुधन जंगल आदि भी काफी मात्रा में उपलब्ध है। यह देश के लोगों की आवश्यकताओं को काफी मात्रा में पूरा कर सकते हैं।

यद्यपि देश गरीबी व बेरोजगारी की वजह से पर्यावरण के क्षेत्र में काफी समस्याओं से जूझ रहा है। बढ़ती हुई जनसंख्या और निश्चित विकसित क्रियाओं की वजह से पर्यावरण को खतरा बढ़ा है। इसलिए देश के आर्थिक विकास के लिए पर्यावरण प्रबंधन आवश्यक है। इसलिए गत कुछ वर्षों में पर्यावरण प्रबंधन बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक तकनीकी, प्रबंधकीय तथा कानूनी प्रक्रिया में व द्धि हुई है।

पर्यावरण खराब होने का मुख्य कारण प्राकृतिक साधनों का सही तरह प्रयोग न होना है। पेडों की कटाई काफी मात्रा में हुई है। नदियों से पानी बाहर निकलना, गैर योजना निर्माण, उद्योगों का बेकार पानी में बहाना या जमीन पर फेंकना तथा आर्थिक क्रियाओं का विस्तार आदि है। यद्यपि कुछ वर्षों से योजनाओं के अन्तर्गत पर्यावरण पर विशेष ध्यान दिया है। 1972 में पर्यावरण संचालन कमेटी नियुक्त की गई जो पर्यावरण की समस्या सुलझाने संबंधी कार्य करेगी। दूसरी कमेटी 1980 में पर्यावरण सुधार के लिए बनाई गई। इस कमेटी की सिफारिश पर पर्यावरण विभाग 1980 में स्थापित किया गया। 1985 में इसे पर्यावरण मंत्रालय में तब्दील कर दिया गया। अब इस मंत्रालय ने पर्यावरण कार्यक्रम चलाने के लिए विभिन्न प्रबंधकीय प्रबंध किए हैं।

पर्यावरण दूषित होने के मुख्य कारण हरित क्रान्ति, पेड़ों की कटाई भी रहा है। इसके साथ भूमि तथा पानी का भी सही रूप से प्रबन्ध नहीं हो पाया। यद्यपि सरकार ने इसके लिए काफी उपाय किए है जो इस प्रकार है-

1. **प्रदूषण रोकना (Pollution Control)** - पानी को बचाने तथा नियंत्रित करने के लिए केन्द्रीय बोर्ड का गठन किया गया केन्द्र ने राज्य बोर्ड भी बनाए जो राज्य स्तर पर प्रदूषण को नियंत्रित रखेगा। विभिन्न प्रकार की लेबोरेट्री बनाई गई जो शोध का कार्य भी करेंगी। विभिन्न प्रशिक्षित कर्मचारियों की नियुक्ति की गई ताकि प्रदूषण समस्या से निपटा जा सके।

2. **पर्यावरण के प्रभाव का अंदाजा (Assessment of Impact of Environment)** - इस तरह के कार्यक्रम तथा प्रोजेक्ट चलाए गए जो पर्यावरण को अंदाजा लगाकर उनको

दूषित होने से रोक सके। दूसरे प्रोजेक्ट जो पर्यावरण से संबंधित भी नहीं है उन्हें भी पर्यावरण की सहमति लेना आवश्यक है गाड़ियों आदि के लिए भी सार्टिफिकेट लेना आवश्यक किया गया।

3. **पर्यावरण शिक्षा व प्रशिक्षण** **(Environment Education and Training)** - पर्यावरण जानकारी के लिए सरकार ने शिक्षा तथा प्रशिक्षण का विस्तार किया। स्कूलों की किताबों में पर्यावरण संबंधी अध्याय तथा विश्वविद्यालयों में भी पर्यावरण विभाग खोले गए ताकि पर्यावरण संबंधी समस्याओं पर शोध किया जा सके। गैर-सरकारी संगठनों को भी इस दिशा में काम करने के लिए प्रोत्साहित किया। विभिन्न संस्थाओं को इस तरह के प्रोजेक्ट पर काम करने के लिए सहायता प्रदान की।

इस प्रकार हम कह सकते है कि सरकार ने पर्यावरण के दूषित होने को रोकने के लिए पर्यावरण प्रबंध कार्यक्रम भी चलाए तथा शोध व विकास के लिए नए विभाग खोले गए। छठी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत बंगलौर में सेंटर फॉर इकोलॉजिकल रिसर्च एंड ट्रेनिंग स्थापित किया। अहमदाबाद में भी पर्यावरण शिक्षा के लिए सेंटर स्थापित किया और सातवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत धनबाद में सेंटर फॉर माइन्ड एनवॉयरमेंट स्टीज शुरू किया।

सरकार ने योजनाओं के अन्तर्गत बड़े पैमाने पर पेड़ लगाओं कार्यक्रम भी शुरू किए ताकि अधिक-से-अधिक पेड़ लगाकर पर्यावरण के दूषितपन को बचाया जा सके। विभिन्न सामाजिक जंगल कार्यक्रम भी चलाए गए जिनके तहत ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन की निर्भरता को कम करना था।

## भारत में शिक्षा और स्वास्थ्य
## (Education and Heath in India)

आर्थिक विकास में मानव संसाधन विकास की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। अर्थशास्त्रियों का मानना है कि देश के विकास में सबसे बड़ी रुकावट मानव संसाधनों का विकसित न होना है जिसमें आर्थिक तथा सामाजिक संसाधन महत्त्वपूर्ण है। आर्थिक व द्धि को बढ़ाने के लिए शिक्षा में निवेश आवश्यक है। क्योंकि यह उत्पादक श्रम शक्ति को बढ़ाने में सहायक है जो ज्ञान तथा दक्षता के साथ जुड़ी है। यह अध्यापको, स्कूलों तथा दूसरे उत्पादक वर्गों को रोजगार तथा आय के साधन जुटाने में मदद करती है। यह दक्षता प्रदान करने के साथ-साथ आधुनिक विचारधारा अपनाने में भी मदद करती हैं।

शिक्षा से आय असमानता में भी कमी आती है क्योंकि यह रोजगार के अवसर प्रदान कर पारिवारिक आय बढ़ाने में मदद करती है। यद्यपि इस बात को साबित करना काफी मुश्किल है क्योंकि सरकार ने कई शिक्षा नीति आरम्भ की हैं लेकिन यदि इनका फायदा देखा जाए तो इसका सबसे अधिक अमीर व मध्यम आय के लोगों को हुआ हैं गरीब बच्चों का बचपन निम्न पौष्टिकता, घरेलू परेशानी के माहौल के बीच गुजरता है और वे अपनी शिक्षा के पूरा करने में भी नाकाम रहते हैं। इस वजह से वे वो रोजगार प्राप्त करने में कठिनाई महसूस करते हैं जो अमीर वर्ग के लिए है क्योंकि उनका सामाजिक रहन-सहन तथा संबंध इसको प्रभावित करता है।

इसी प्रकार शिक्षा के साथ-साथ स्वास्थ्य की भी आर्थिक विकास में अहम भूमिका है। स्वास्थ्य सुविधाओं से उत्पादक क्षमता में व द्धि होगी और इससे मानव पूँजी में गुणात्मक व द्धि होगी। इसलिए श्रम की उत्पादक क्षमता बढ़ाने के लिए तथा उसे बनाए रखने के लिए स्वास्थ्य में निवेश

आवश्यक है। यद्यपि अल्पविकसित देशों में स्वास्थ्य में निवेश मेडिकल ज्ञान बढ़ाने, बीमारी रोकने तथा इलाज करने में किया जाता है। लेकिन अधिक मात्रा में गरीब जीवन निर्वाह स्तर से भी नीचे है जो अपौष्टिकता से पीड़ित है। इसलिए अल्पविकसित देशों में स्वास्थ्य कार्यक्रम गरीबों के ध्यान में रखकर चलाने चाहिए। इसलिए ये सब क्रियाएँ मनुष्य की उत्पादक क्षमता को बढ़ाने के लिए की जाती है जो मानव पूँजी निर्माण के अन्तर्गत आती है।

अब हम शिक्षा को मानव विकास से जोड़ने से संबंधित बातों का वर्णन करेंगे।

भारत में शिक्षा पर खर्च को निवेश का नाम नहीं दिया जाता। अधिकतर लोग जो सरकार में फैसले लेने वाले है वो सोचते हैं कि शिक्षा एक सामाजिक सेवा है जो मनुष्य का जीवन सुधारने के काम आता है। एक शिक्षित व्यक्ति की उपयोगिता समाज में ज्यादा है।

विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत भारत में शिक्षा सुविधाओ में विस्तार हुआ है, इससे न केवल साक्षरता दर बढ़ी है बल्कि स्कूल शिक्षा में बच्चों का प्रतिशत बढ़ा है। वर्तमान में देश में भारी मात्रा में ऊँचे और तकनीकी सेवाओं के लिए अपार सुविधाएँ हैं।

1991 के अनुसार राष्ट्रीय औसत साक्षरता दर 52.11 प्रतिशत थी जो 1951 में केवल 16.67 प्रतिशत थी। लेकिन अब भी आजादी के इतने सालों बाद भारत में लगभग 50 प्रतिशत जनसंख्या साक्षर नहीं है। लेकिन दूसरे एशियन देशों की बजाए भारत की साक्षरता दर काफी निराशाजनक है। भारत में वर्ल्ड डवलपमैंट रिपोर्ट (WDR) 1999/2000 के अनुसार किशोर पुरुष निरक्षता दर 33 प्रतिशत थी जो चीन में 9 प्रतिशत, श्रीलंका 5 प्रतिशत, फिलिपिन तथा 3 प्रतिशत थाईलैंड व अर्जेन्टीना थी। इन देशों में महिला निरक्षता दर भी भारत की बजाय कम है।

इसी प्रकार प्राथमिक, द्वितीय, ऊँची तथा तकनीकी शिक्षा में भी भारत की स्थिति ज्यादा अच्छी नहीं है। तकनीकी शिक्षा में प्रबन्धकीय शिक्षा शामिल है। लेकिन कुछ वर्षों से तकनीकी शिक्षा में विस्तार हुआ है। फिर भी विकसित देशों की अपेक्षा काफी कम है। यद्यपि नवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इसके आधुनिकीकरण पर काफी जोर दिया है।

## भारत में शिक्षा नीति
## (Education Policy in India)

आजादी के बीस साल बाद भी राष्ट्रीय सरकार ने ब्रिटिश सरकार की शिक्षा नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया। 1964 में सरकार ने महसूस किया कि शिक्षा नीति में परिवर्तन करना चाहिए। इसलिए प्रो० डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा कमीशन बनाया गया, जिसने 1966 में सरकार को अपनी रिपोर्ट पेश की। सरकार ने 1968 में इस कमीशन के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति का गठन किया। इसमें यह निश्चित किया कि 14 साल से पहले अथवा 14 साल की आयु तक हर एक बच्चे को शिक्षा जरूरी है। गरीबी की वजह से प्राथमिक शिक्षा मुफ्त दी जानी चाहिए। शिक्षा का स्तर सुधारने के लिए अध्यापकों की हालत में भी सुधार करना चाहिए।

लेकिन इस शिक्षा नीति में भी काफी समस्याएँ थीं जो इस प्रकार हैं- उच्च शिक्षा में गैर योजना तरीके से परिवर्तन किया गया। भारत में गरीबी की वजह से काफी लोग इसका फायदा नहीं उठा पाए। शिक्षा का स्तर भी नीचा था अधिकतर शिक्षित लोग बेरोजगार थे इसलिए मानव संसाधनों में निवेश अनुत्पादक था। प्राथमिक शिक्षा की तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इसको सुधारने के लिए सरकार ने शिक्षा के लिए नई राष्ट्रीय नीति शुरू की।

## शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति
## (National Policy on Education)

अगस्त 1985 में सरकार ने नई शिक्षा नीति बनाने की कोशिश की। 1986 में शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति शुरू की तथा 1990 तक प्राथमिक तथा द्वितीय शिक्षा को एक जैसा किया गया। 1992 में शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति को तबदील किया गया। इस प्रकार वर्तमान में तकनीकी विकास तथा आधुनिकीकरण को विकसित करने का काफी दबाव है। इस सकारात्मक विकास से यह आशा की जाती है कि इससे रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे। इस प्रकार दसवीं पास, उच्च शिक्षा पास और इंजीनियरिंग कोर्स वालों के लिए भी संगठित तथा असंगठित क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़ेगें। गत वर्षों मे तकनीकी शिक्षा के ऊपर विशेष ध्यान दिया गया है। यद्यपि बिजली उद्योग में तेजी से व द्धि हुई है। भविष्य मे भी बिजली, कम्प्यूटर पद्धति, सेटेलाईट संचार, पर्यावरण इंजीनियरिंग आदि पर भी विशेष ध्यान दिया जाएगा।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारत के विकास में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि यदि शिक्षित श्रम उपलब्ध होगी तो इससे उनकी उत्पादन क्षमता में व द्धि होगी। आय के स्रोत, पारिवारिक आय तथा तकनीकी विकास से विदेशों पर निर्भरता भी कम होगी। क्योंकि अल्प विकसित देशों में सबसे बड़ी समस्या परम्परागत तकनीक का प्रयोग करना है। इसका मुख्य कारण देश मे पूँजी की कमी जाए तो भविष्य में यह देश के लिए वरदान साबित होगा। अल्पविकसित देशों को अपनी मानसिकता बदलकर शिक्षा को सामाजिक कल्याण की इकाई न मानकर इसे एक ऐसा उद्योग बनाना होगा जो मानव पूँजी का पूर्ण रूप से प्रयोग कर सके।

## स्वास्थ्य व विकास
## (Health and Development)

श्रमिकों की दक्षता उनकी स्वास्थ्य पर भी निर्भर करती है। जो श्रमिक स्वस्थ नहीं है तथा अक्सर बीमार रहते हैं। अपना कार्य सही ढंग से नहीं कर पाते। श्रमिकों के स्वास्थ्य में सुधार से अपने आप ही राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ेगा। 1993 की WDR बताती है कि श्रमिकों का स्वास्थ्य निम्न रूप से उत्पादन को प्रभावित करता है। यह श्रमिकों की बीमारी से पैदा होनेवाले नुकसान को कम करता है। इसमे गरीब व्यक्ति के लिए आर्थिक लाभ ज्यादा हैं क्योंकि वह बीमारी की वजह से पूर्ण रूप से लाचार हो जाता है।

यद्यपि भारत में साधारण स्वास्थ्य स्तर नीचा है। यह कोई हैरानी की बात नहीं है कि लोगों का स्वास्थ्य कमजोर है तथा वे अक्सर बीमार रहते हैं। भारत मे गरीबी रेखा के नीचे रहनेवालों की तादाद लगभग 40 प्रतिशत है। यदि लोगों की आयु सीमा ज्यादा है तो हम मानकर चलते हैं कि स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार हुआ है गत वर्षों से आयु सीमा में भी बढ़ोत्तरी हुई है। लेकिन फिर भी लोगों का स्वास्थ्य काफी कमजोर है। इसका मुख्य कारण-पौष्टिकता की कमी, मेडिकल सुविधाओं की कमी तथा रहन-सहन की स्थिति साफ-सुधरी नहीं है। इसलिए देश में कमजोर स्वास्थ्य का मुख्य कारण गरीबी का फैलाव भी है। क्योंकि यह काफी मात्रा में फैली हुई है।

भारत सरकार ने देश में स्वास्थ्य स्तर को सुधारने के लिए अनेक कार्यक्रम तैयार किए हैं। इसका मुख्य उद्देश्य बीमारी का रोकना है। स्वास्थ्य सुविधाएँ इस प्रकार होनी चाहिए कि बीमारी नियंत्रण के साथ-साथ मरीज की देखभाल भी आवश्यक है। इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत स्वास्थ्य विभाग में कर्मचारियों को प्रशिक्षण भी दिया गया ताकि ग्रामीण क्षेत्र में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र

खोले जाएँ।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत, स्वास्थ्य विकास कार्यक्रम चलाए गए ताकि पारिवारिक कल्याण और पौष्टिकता पर विशेष ध्यान दिया जा सके। ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार किया गया आम बीमारियों तथा फैलनेवाली बीमारियों जैसे मलेरिया, चेचक, लकवा आदि पर विशेष ध्यान दिया गया।

गत वर्षों में सरकार ने नई स्वास्थ्य नीति की तरफ भी विशेष ध्यान दिया। इसके अन्तर्गत अस्पताल के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया। इसके अन्तर्गत अस्पताल के विकास पर विशेष ध्यान दिया। यद्यपि इन अस्पतालों के वास्तविक लाभ उठाने वाले शहरी है। इसका फायदा ग्रामीण क्षेत्रों तक नहीं पहुँच पाता। इसलिए इस नई स्वास्थ्य नीति के तहत गरीब लोगों के लिए स्वास्थ्य सेवाएँ मुहैया कराने पर विशेष ध्यान दिया गया। ग्रामीण क्षेत्र में अथवा ग्रामीण लोगों के लिए सामुदायिक आधारित स्वास्थ्य देखभाल कार्यक्रम चलाना तथा गरीबों को मेडिकल देखभाल सेवाएँ प्रदान करना इसका मुख्य उद्देश्य था।

यद्यपि भारतीय समाज में हमेशा ग्रामीण जनसंख्या की अनेदखी हुई है। भूमि पर जनसंख्या का दबाव इतना ज्यादा है कि कोई भी कृषि में मानव उत्पादकता को बढ़ाने के बारे सोच नहीं सकता। सातवीं पंचवर्षीय योजना में नई स्वास्थ्य नीति लागू की गई जिसका मुख्य उद्देश्य समाज के पिछड़े लोगों को स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करना था। यद्यपि अब भी योजना कमीशन की सोच में खास परिवर्तन नहीं आया है। ये अब तक भी यह मानने को तैयार नहीं है कि स्वास्थ्य सेवाओं में खर्च मानव संसाधन के विकास में निवेश है। यह बिल्कुल सही है कि ग्रामीण क्षेत्र में स्वास्थ्य सुविधाएँ सुधरने से कृषि में मनुष्य की उत्पादकता बढ़ेगी।

ग्रामीण स्वास्थ्य योजना के अन्तर्गत श्रमिकों की कुपोषण नीति का विस्तार करना चाहिए। यद्यपि यह कार्यक्रम पहले पूर्णरूप से सक्षम नहीं रहा। एक स्वास्थ्य कार्यकर्ता को भी शिक्षित करने की आवश्यकता है ताकि वह इस नीतियों के बारे में पूर्णरूप से जानकारी दे सके। भारत में कुपोषण की समस्या भी काफी है। इसका मुख्य कारण बड़े पैमाने पर गरीबी का होना है। औसत आधार पर प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 2415 कैलोरी मिलनी चाहिए। लेकिन औसत कैलोरी लेने की मात्रा केवल 1500 कैलोरी है। इसके पीछे भी आय की असमानता मुख्य कारण दिखाई देता है। भूमिहीन श्रमिक, छोटे व सीमांत किसान, असंगठित क्षेत्र में श्रमिक गरीबी की वजह से पौष्टिक आहार लेने के बारे में भी सोच नहीं सकते।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस तरह की कमी देश में कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र दोनों की उत्पादकता को प्रभावित करती है। सरकार को मानव संसाधन विकास के लिए शिक्षा तथा स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देना होगा ताकि देश में उत्पादकता का स्तर बढ़ सके। यदि उत्पादकता अधिक है तो हम यह सोचकर चलते हैं कि लोगों का दक्षता क्षमता भी ज्यादा होगी। इन सबको सुचारूरूप से चलाने के लिए भारत सरकार तथा राज्यों को स्वास्थ्य बजट में व द्धि करनी होगी। वर्तमान में भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च GDP का 1.3 प्रतिशत है। इसको कम-से-कम GDP का 2 प्रतिशत बढ़ाना चाहिए ताकि प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार किया जा सके। चीन में यह खर्च (स्वास्थ्य सेवाओं) GDP का 2.2 प्रतिशत है जो कि भारत से करीब दुगुना है। उत्पादन में मानव पूँजी की अहम भूमिका है तथा स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार मानव पूँजी का एक अंग है।

# भारतीय जनसंख्या की जनांकिकी विशेषताएँ
## (Demographic Features of Indian Population)

जनसंख्या के आकार में भारत का संसार में दूसरा स्थान है। भारत में क्षेत्र (भूमिक्षेत्र) संसार का 2.4 प्रतिशत है तथा जनसंख्या 16.6 प्रतिशत है। आजादी के पश्चात् म त्युदर में काफी कमी आई है। इसका मुख्य कारण मेडिकल सुविधाओं में सुधार हुआ है। इसके साथ-साथ अकाल, भुखमरी तथा जानलेवा बीमारियों में भी कमी आई है। इसकी मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं-

1. **जन्मदर व म त्युदर (Birth Rate and Death Rate)** - जन्मदर तथा म त्युदर के आँकड़े बताते है कि इन दोनों में कमी आई है। 1998 में म त्युदर 8-9 प्रति हजार थी जो पहले दशक में 42-6 थी। इसी प्रकार जन्मदर इसी समय में 26.4 प्रति 1000 थी जो पहले दशक में 49.2 थी। गत कुछ वर्षों में शिशु म त्युदर में कमी हुई है। 1998 में शिशु म त्युदर 72 प्रति 1000 जीवित तथा पहले दशक में यह 218 प्रति हजार जीवित थी। यद्यपि कुछ वर्षों में इसमें गिरावट आई है लेकिन फिर भी जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम लोगों की पसंद नहीं बन पाए।

2. **गरीबी (Poverty)** - जनसंख्या का अधिक दबाव की वजह से देश में गरीबी है। इसका कारण आर्थिक जरूरत जनसंख्या बढ़ने का कारण है। निम्न आय वर्ग यह सोचते हैं कि अधिक बच्चे पैदा होने पर परिवार की आय में भी अधिक व द्धि होगी। इनका मानना है कि जितने हाथ उतना काम। भारत में प्रति व्यक्ति आय कम है तथा अधिकतर लोग लगभग 40 प्रतिशत गरीबी रेखा से नीचे है। ये भी एक मुख्य विशेषता है।

4. **असाक्षरता (Illiteracy)** - भारत में असाक्षरता काफी फैली हुई है। 1991 की जनसंख्या के आँकड़ों के अनुसार जनसंख्या का 52.11 प्रतिशत साक्षर थे। महिलाओं की साक्षरता दर केवल 39.42 प्रतिशत तथा पुरुषों की 63.86 प्रतिशत थी। इस प्रकार आजादी के इतने वर्षों के बाद भी देश में पूर्ण साक्षरता नहीं है। इसका मुख्य कारण अज्ञानता तथा लड़के-लड़की में भेदभाव है। स्कूल भेजते समय भी लड़के-लड़की में अन्तर रखा जाता है। स्कूल से निकलने की दर लड़कियों की ज्यादा है।

5. **बेरोजगारी (Unemployment)** - अधिक मात्रा में महिलाएँ बेरोजगार है। गरीबी की अधिक मात्रा में भी महिलाओं की संख्या ज्यादा है। लेकिन फिर भारत 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँव में रहती है। कृषि क्षेत्र में सीमित अवसर तथा औद्यागिक विकास की कमी से जनसंख्या बढ़ने की अपेक्षा रोजगार के साधन कम उपलब्ध है। अल्पविकसित देशों में कौशल तथा प्रशिक्षण प्राप्त लोग भी रोजगार प्राप्त करने में असमर्थ है।

6. **महिलाओं का निम्न स्तर (Low Status of Women)** - यद्यपि भारत के संविधान में महिला व पुरुष में कोई भेदभाव नहीं है। फिर भी उनकी सामाजिक स्थिति में अन्तर अथवा भेदभाव तथा महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा आर्थिक व सामाजिक मामलों में नीची नजर से देखा जाता है। यही मुख्य कारण है कि महिलाओं में शिक्षा का स्तर कम है। पिछड़ी सोच की वजह से वे अपने अधिकारों का प्रयोग भी नहीं कर पाती। यद्यपि सामाजिक व धार्मिक विचारधारा के अन्तर्गत लड़के को लड़की की अपेक्षा दर्जा ज्यादा दिया गया है। अन्तिम संस्कार में भी लड़के की आवश्यकता महसूस की जाती है।

7. **लिंग अनुपात (Sex Ratio)** - भारत में सदियों से लिंग अनुपात विपरीत रहा है। आजादी के 57 सालों के बाद भी 1000 पुरुषों पर 933 महिलाएँ। यह इस बात का प्रतीक है कि समाज में महिलाओं के प्रति भेदभाव की स्थिति अपनाई जाती है। यद्यपि 1991 की जनसंख्या आँकड़े दर्शाते हैं कि भारत में लिंग अनुपात 927 प्रति हजार पुरुष था। यदि 0-6 वर्ष की आयु की लड़कियों का लिंग अनुपात देखा जाए तो यह 2001 में 927 था जो कि 1991 में 945 प्रति हजार था। इसका अभिप्राय बचपन से लेकर म त्यु तक महिला भेद-भाव की स्थिति में जीवित रहती है। जन्म के उपरांत ही उससे भेदभाव करना आरम्भ हो जाता है।

8. **उच्च जनसंख्या व द्धि तथा उच्च निर्भरता अनुपात (Rapid Population Growth and Higher Dependency Ratio)** - गत वर्षों से भारत की जनसंख्या की जनसंख्या 846 मिलियन थी जो 1961 में 439 मिलियन थी। अब यह 100 करोड़ से ऊपर है। गत वर्षों से म त्युदर मे जो कमी आई हैं लेकिन भूमि को बढ़ाना असंभव है। और दबाव तभी कम हो सकता है जब जनसंख्या को किसी दूसरे क्षेत्र की आर्थिक क्रियाओं में लगाया जाए। लेकिन यह भी संभव नहीं है क्योंकि पूँजी प्रधान तकनीक उद्योग में रोजगार के अवसर कम हैं। इसलिए उच्च जनसंख्या व द्धि से निर्भरता दर लगातार बढ़ रही है।

9. **मानव विकास का निम्न स्तर (Low Level of Human Development)** - मानव विकास को HDI द्वारा मापा जाता है जो UNDP ने 1990 में शुरू किया था। इसके अन्तर्गत तीन पहलू लिए गए है जन्म के समय आयु सीमा, ज्ञान और जीवन स्तर HDI निकालते समय इन सबका औसत लिया जाता है। इसका हम मानव विकास संबंधित बातों में वर्णन कर चुके है। जीवन के स्तर को प्रतिव्यक्ति वास्तविक GDP द्वारा मापा जाता है जो $ में दिखाई गई हैं। इस प्रकार हम यदि इन तीनों पहलुओं को देखें तो भारत का HDI रैंक 132 है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारत जानांकिकी विशेषताएँ विकसित देशों से भिन्न हैं तथा यदि ये विशेषताएँ अर्थव्यवस्था में मौजूद रहेंगी तो अर्थव्यवस्था को विकसित करने में काफी कठिनाइयाँ उठानी पड़ेंगी।

## आधारभूत ढाँचा और विकास
## (Infrastructure and Development)

आधारभूत ढाँचे के विकास को आर्थिक विकास का नाम नहीं दिया जा सकता। जिस प्रकार कृषि का विकास सिंचाई सुविधाओं पर निर्भर करता है उसी प्रकार उद्योगों का विकास व उन्नति शक्ति व बिजली प्रक्रिया, यातायात, संचार पर निर्भर करती है। यदि आधारभूत ढाँचे का विकास न किया जाए तो देश में आर्थिक विकास संभव नहीं। इस अध्याय में हम आधारभूत ढाँचे के महत्त्वपूर्ण अंग - यातायात, संचार व शक्ति का वर्णन करेंगे। आधारभूत ढाँचे से संबंधित सरकार की नीति का हम हरित क्रान्ति तथा औद्योगिक नीति वाले अध्याय में कर चुके हैं जैसे सिंचाई नीति आदि।

## ऊर्जा
## (Energy)

आर्थिक विकास में ऊर्जा महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। यद्यपि अल्पविकसित देशों में इसकी

माँग कम है। अर्थव्यवस्था में संव द्धि बढ़ने के साथ इसकी माँग भी बढ़ती है। अधिकतर अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास तथा ऊर्जा की माँग में सकारात्मक संबंध दिखाया है।

भारत में अधिकतर जनसंख्या अथवा 40 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी से नीचे है, तकरीबन आधी जनसंख्या की व्यापारिक ऊर्जा खरीदने की योग्यता नहीं है। यह वर्ग ऊर्जा गैर-व्यापारिक साधनों से पूरी की जाती है। बाकी व्यापारिक ऊर्जा, तेल, गैस, कोयला आदि से प्राप्त की जाती है। वाणिज्य ऊर्जा अधिकतर तेल पर निर्भर है।

## बिजली
## (Electricity)

वाणिज्य ऊर्जा का महत्त्वपूर्ण साधन बिजली है। भारत में 1996-97 में भारत में कुल वाणिज्य ऊर्जा का 17.1 प्रतिशत का उपभोग हुआ लेकिन फिर भी हमेशा बिजली की पूर्ति पूर्ण नहीं हो पाती। उत्पादन क्षमता के ऊपर ऊर्जा की कमी का नकारात्मक प्रभाव देखते हुए शक्ति विकास प्रक्रिया को बढ़ाने की कोशिश की। सातवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 22, 245.25 MW बिजली पैदा करने का प्लांट लगाया गया। बिजली विकास का भार अधिकतर राज्यों द्वारा वहन किया जाता था। अधिकतर राज्यों का मानना है कि यह पूँजीगत तकनीक काफी महँगी है तथा वे इसका भार उठाने में असमर्थ हैं। राज्य बिजली निगम भी धन की कमी से जूझ रहा है। अधिकतर राज्य राजनैतिक कारणों से भी इसे विकसित नहीं कर पाते। बिजली पर कमेटी (राज्याध्यक्ष कमेटी) इन समस्यों का निपटारा करती है और यह सलाह भी दी है कि अधिकतर बिजली क्षेत्र केन्द्र क्षेत्र में विकसित करने चाहिए। नवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत जरूरत का अधिकतर अतिरिक्त हिस्सा निजी क्षेत्र से आ चुका है।

बिजली के साधन विभिन्न है - हाईडल पावर, थर्मल पॉवर। थर्मल पावर प्लांट में कोयला, तेल व प्राकृतिक गैस द्वारा बिजली का उत्पादन किया जाता है। इसको बड़े पैमाने पर विकसित किया गया है।

## कोयला
## (Coal)

भारत में कोयले को ऊर्जा का महत्त्वपूर्ण साधन माना गया है। वर्तमान जरूरतों को देखते हुए इसके भंडार पूर्ण हैं। यह महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे बिजली, गैस व तेल भी बनता। इसको विकसित करने के लिए 1956 में राष्ट्रीय कोयला विकास कॉरपोरेशन की स्थापना की। 70 के दशक में कोयला खानों का राष्ट्रीयकरण किया गया। यद्यपि बाकी ऊर्जा की अपेक्षा इसकी खपत पिछले कुछ वर्षों में कम हुई है। यद्यपि कोयला उद्योग काफी समस्याओं से जूझ रहा है। सबसे बड़ी समस्या वित्त की है। यद्यपि नवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कोयला क्षेत्र में काफी तब्दीलियाँ की हैं। जैसे निजी क्षेत्र को इसमें सहयोग करने पर सहमति दी गई, ढाँचात्मक सुधार किए गए, सार्वजनिक क्षेत्र कोयला कंपनियों को ज्यादा उत्तरदायित्त्व दिए गए।

## तेल और गैस
## (Oil and Gas)

भारत में तेल रिजर्व काफी कम है। गत वर्षों में इस पर निर्भरता बढ़ी है। इस साधन से लगभग 47.7 प्रतिशत माँग पूरी की जाती है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए ऑयल एंड नेचुरल गैस कमीशन और ऑयल इंडिया लिमिटेड 1955 तथा 1959 में शुरू किए तथा इसके परिणाम

भी सकारात्मक रहे। यद्यपि वर्त्तमान में भारत में पेट्रोल उद्योग 40 प्रतिशत से कम की माँग पूरा कर पाता है।

इसके साथ-साथ भारत में एटॉमिक एनर्जी में भी उन्नति की है। इस तकनीकी में भारत आत्म-निर्भर है। यूरेनियम या पोटियम का प्रयोग करे इसे उत्पादित किया जाता है। इसी प्रकार बायोगैस (पशुओं की बेकारी को गैस में तबदील करना), सोलर ऊर्जा (सौर ऊर्जा) तथा हवा ऊर्जा का प्रयोग भी बढ़ा है।

ऊर्जा क्षेत्र के अन्तर्गत यातायात का भी विकास हुआ है। यह औद्योगिक क्षेत्र के लिए बहुत जरूरी है। यातायात से व्यापारिक क्षेत्रों के बीच संबंध रहता है। सबसे महत्त्वपूर्ण यातायात के साधन रेल, सड़क, पानी तथा वायु यातायात है। साथ-साथ सूचना प्रसारण तथा संचय व्यवस्था भी इसका महत्त्वपूर्ण स्रोत है। ये सब साधन देश के विकास मे अहम भूमिका निभाते हैं।

# अध्याय-4
# ग्रामीण-शहरी स्थानान्तरण
# (Rural-Urban Migration)

1951-91 के दौरान भारतीय जनसंख्या 2.2 प्रतिशत की दर से प्रतिवर्ष बढ़ी जबकि उसी समय शहरी (नगरीय) जनसंख्या 3.2 प्रतिशत, प्रतिवर्ष की दर से बढ़ी और 1.9 प्रतिशत प्रतिवर्ष ग्रामीण जनसंख्या में बढोत्तरी हुई। भारत में ग्रामीण क्षेत्र में जन्म दर शहरी क्षेत्र की अपेक्षा ज्यादा थी। 1991 में शहरी जन्म दर 24.3 प्रति 1000 संख्या के विरुद्ध ग्रामीण क्षेत्र में 30.9 थी। इसलिए शहरी क्षेत्र में जनसंख्या व द्धि दर ग्रामीण जनसंख्या का शहरों में जाना था। यह अंदाजा लगाया गया है कि लगभग शहरी जनसंख्या का 45 प्रतिशत वार्षिक बढ़ोत्तरी स्थानान्तरण की वजह से है।

स्वतन्त्रता के पश्चात बड़े शहरों में विस्फोटक व द्धि जनसंख्या के स्थानान्तण से हुई है। उदाहरण के तौर पर पश्चिम बंगाल की जनसंख्या 1971-81 के दौरान 75.6 प्रतिशत बढ़ी। हरियाणा में फरीदाबाद में 85.5 प्रतिशत की व द्धि हुई। इस प्रकार शहरों में जनसंख्या बढ़ोत्तरी का मुख्य कारण ग्रामीण क्षेत्र से जनसंख्या का माइग्रेसन है। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि क्यों ग्रामीण लोग शहरी क्षेत्र में जाना पसंद करते हैं। इसके मुख्य कारण हैं जो निम्नलिखित दिए हुए है।

पुराने समय में गाँवों से शहरों की तरफ जाने के पीछे गैर-आर्थिक कारण दिखाई देते हैं जैसे सामाजिक रीतिरिवाज। भूतकाल में सामाजिक संगठन काफी पुराने विचारों के रहे हैं इसलिए किसी को भी गाँव के रीतिरिवाज तोड़ने पर गाँव छोड़ना पड़ता था। इसके साथ बाढ़ अकाल आदि के प्रकोप का प्रभाव तथा शिक्षा की वजह से भी शहर से ग्रामीण हस्तांतरण हुआ है। जवान लोग शहरों में नौकरी ढूढ़ने के लिए यहाँ आते हैं।

आज भी ये गैर-आर्थिक तत्त्व शहरों में जनसंख्या बढ़ने का कारण है। यद्यपि अब अर्थशास्त्री तथा गैर-अर्थशास्त्रियों के बीच समन्वय की स्थिति है और वे मानते हैं कि हस्तांतरण आमतौर पर आर्थिक तत्त्वों के द्वारा ही पनपता है। जो इस प्रकार है-

1. **कृषि की जीवन-निर्वाह प्रकृति** (Subsistence Nature of Agriculture) - भारत में कृषि, मजदूर, छोटे व सीमांत के पास कम भूमि है तथा वे इसका प्रयोग जीवन निर्वाह के लिए करते हैं तथा भूमि घर के जवान व्यक्तियों को रोजगार प्रदान करने की अवस्था में नहीं हैं। कृषि क्षेत्र में छुपी हुई बेरोजगारी देखने को मिलती है। कृषि क्षेत्र मे काम की प्रकृति भी मौसमी है। इसलिए ये लोग काम की तलाश में शहर में औद्योगिकीकरण तथा रोजगार की वजह से पलायन कर जाते हैं। यद्यपि अब पशुपालन डेयरी, मुर्गी पालन आदि व्यवसाय उभरने लगे हैं। गाँव संस्थागत सुधार भी हुए हैं। इसलिए इसका मुख्य बड़ा कारण भारतीय अर्थव्यवस्था की कृषि पर निर्भरता है।

2. **ग्रामीण-शहरी मजदूरी अंतर** (Rural-Urban wage Difference) - यदि दोनों प्रकार

की तुलना की जाए तो शहरी मजदूरी ग्रामीण मजदूरी की अपेक्षा ज्यादा है। कृषि क्षेत्र की बजाय औद्योगिक क्षेत्र में मजदूरी की दर ज्यादा है। संगठित क्षेत्र में रोजगार मिलने पर व्यापार यूनियन द्वारा मजदूरों के अधिकारों की रक्षा भी की जाती है। इसलिए जवान तबका ग्रामीण क्षेत्र की बजाय शहरी क्षेत्र मे जाना पसंद करता है इसलिए ये क्षेत्र जनसंख्या दबाब से पीड़ित रहते हैं।

3. **कई बार ग्रामीण क्षेत्र की तरफ वापसी (Sometimes push back toward rural area)** - यद्यपि शहरी क्षेत्र में रोजगार के अवसर अधिक हैं लेकिन कई बार जो ग्रामीण क्षेत्र से आते हैं उन सबको रोजगार प्रदान करना मुश्किल है। यद्यपि योजना के बाद औद्योगिकीकरण, वित्त क्षेत्र का फैलाव तथा प्रबन्धकीय सुधार के बाद शहरों में रोजगार के अवसर बढ़े हैं लेकिन ये पहले ही लोगों को अधिक मात्रा में रोजगार प्रदान कर चुके हैं। इसलिए अधिक संख्या मे इन श्रमिकों को शहरों में काम न मिलने से ये वापिस गावों की तरफ भी जाने को मजबूर हो जाते हैं। इसी प्रकार ग्राम से शहरी स्थानान्तरण से आए लोगों में कुछ समाहित हो जाते हैं तथा कुछ गाँव वापिस चले जाते है।

## शहरीकरण
## (Ubranisation)

शहरीकरण विकास प्रक्रिया का एक हिस्सा है। पिछड़े समाज में शहरीकरण की प्रक्रिया धीरे होती है क्योंकि शहर, देश में रहनेवाले लोगों को रोजगार अवसर देने में नाकाम रहते है।

भारत में 1991 की सेन्सस के जनसंख्या आँकड़े बतो हैं कि शहरी जनसंख्या में व द्धि हुई है। 1991 में देश की शहरी जनसंख्या 22.72 थी जो 1981 में केवल 23.34 प्रतिशत थी। यद्यपि शहरीकरण प्रक्रिया धीरे हुई है लेकिन फिर भी शहरी जनसंख्या में व द्धि हुई है।

वर्तमान में भारत की शहरी जनसंख्या चीन की बजाय सभी देशों से ज्यादा है। भारत में शहरीकरण को मापने के लिए विभिन्न उपाए किए गए। सबसे आसान तरीका है शहरी जनसंख्या के स्तर में परिवर्तन का निरीक्षण करना है। लेकिन शहरीकरण की परिभाषा अलग से परिभाषित नहीं की गई। यद्यपि शहरी व द्धि दर कम है लेकिन फिर भी शहरी जनसंख्या में ज्यादा व द्धि हुई है उसका मुख्य कारण ग्रामीण-शहरीकरण स्थानान्तरण दिखाई देता है। लेकिन औद्योगिकीकरण का विकेन्द्रीकरण होने पर अथवा इसके तहत ग्रामीण क्षेत्रों अथवा पिछड़े राज्यों अथवा कम विकसित क्षेत्रों में भी शहरी जनसंख्या में व द्धि हुई है।

लेकिन शहरीकरण अथवा शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या का दबाब बढ़ने पर पानी, शौचालय, मकान आदि की समस्या भी विकरालरूप ले लेती है। यदि हम गौर करें तो शहरीकरण की इन समस्याओं के साथ फिर भी लोग गाँव छोड़ कर शहर चले जाते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है, उद्योगों में सार्वजनिक निवेश या कृषि में व द्धि का परिणाम। दोनों ही कारणों से क्षेत्रीय आय में व द्धि से शहरी (नगरीय) वस्तुओं तथा सेवाओं में व द्धि होगी। इससे शहरी क्षेत्रों में श्रम की माँग बढ़ेगी।

इस प्रकार सरकार को शहरीकरण से उत्पन्न होनेवाली समस्याओं को भी ध्यान में रखना होगा। यह सही बात है कि शहरीकरण विकास का प्रतीक है अथवा एक हिस्सा है लेकिन यह तभी

विकास का हिस्सा बन सकता है जब तक इससे उत्पन्न होनेवाली समस्याओं को नियंत्रण में रखा जा सके। क्योंकि शहरों का क्षेत्र भी सीमित है। यदि इन पर दबाब की स्थिति बढ़ेगी तो लोगों के लिए आवास आदि की समस्या विकराल रूप ले लेगी।

## भारत में गरीबी
## (Poverty in India)

अधिकतर सभी अर्थ-विकसित देशों में, जहाँ प्रति व्यक्ति आय कम, आय की असमानता से बहुत सी बुराइयाँ पनपती है, जिनमें गरीबी एक बहुत गम्भीर समस्या है। भारत में विकास होने के बावजूद भी, पिछले चार दशक से गरीबी मौजूद है। भारत में लगभग चालीस प्रतिशत जनसंख्या अब भी गरीब है और अधिकतर समय इस जनसंख्या को इससे भी बुरे दौर से गुजरना पड़ता है। यह कोई भी नहीं कह सकता है कि आय का समान वितरण के बावजूद प्रत्येक अमीर होगा, लेकिन इस तथ्य को भी झुठलाया नहीं जा सकता है कि प्रत्येक को या सभी को न्यूनतम उपभोग स्तर प्राप्त होगा।

## गरीबी की अवधारणा
## (The Concept of Poverty)

इस देश में साधारणतया इस बात पर सहमति जताई जाती है कि यदि व्यक्ति निश्चित न्यूनतम उपभोग प्राप्त न कर सके, जो कि आवश्यक है उसे गरीब कहते हैं। लेकिन विशेषज्ञ जिन्होंने गरीबी के प्रश्न का निरीक्षण किया है वह इस बात से सहमत नहीं है कि एक निश्चित आय का एक ग्रुप एक निश्चित समय में न्यूनतम उपभोग स्तर प्राप्त कर सकता है। 1962 में नियोजन कमीशन (भारत सरकार) द्वारा ग्रुप अध्ययन किया गया था कि कैसे या किसे राष्ट्रीय तौर पर उपभोग खर्च को निश्चित किया जाए। इस अध्ययन ग्रुप ने निजी उपभोग खर्च स्तर 20 रुपये (1960-61 की कीमत पर) को प्रति महीना प्रतिव्यक्ति निर्धारित किया जो कि बिल्कुल न्यूनतम है। गरीबी रेखा को निर्धारित करने के लिए इस अध्ययन ग्रुप ने आय गरीबी तरीका प्रयोग किया। यद्यपि यह साफ नहीं है कि देश के लिए किस आधार पर इस न्यूनतम रहन-सहन के स्तर को निर्धारित किया है। आगे ग्रामीण और शहरी निर्वाह लगात के बीच भी अन्तर नहीं किया। भारत में जिसने भी गरीबी प्रश्न का अध्ययन किया है, प्रत्येक ने इस अप्रोच के ऊपर प्रश्न चिह्न लगाया। शहरी क्षेत्र में निर्वाह लागतें ज्यादा होती है। इसलिए नहीं कि शहरी क्षेत्रों में कीमते ज्यादा है बल्कि शहरी क्षेत्रों में शहरी (नगरीय) गरीब को कुछ इस प्रकार के खर्चे करने पड़ते, जो ग्रामीण जनसंख्या नहीं करती। यद्यपि, नियोजन कमीशन ने अध्ययन ग्रुप को दोनों शहरी और ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी के निर्धारण के तत्त्व को स्वीकार किया है। व्यक्तिगत शोधकर्ता जैसे बी०एस०मिंहास और ए०विद्यानाथन ने अपने ग्रामीण गरीबी के अध्ययन में इस गरीबी रेखा को प्रयोग किया है, पी०के० बर्द्धन, दंडेकर, रथ और एम०एस० आहलूवालिया ने गरीबी रेखा निर्धारित की है।

नियोजन कमीशन ने अब 'Task Force on Projection of Minimum Needs' और Effective Consumption Demand के द्वारा दी गई गरीबी की परिभाषा को अपनाया है। आय गरीबी तरीका प्रयोग करते हुए, टास्क फोरस ने गरीबी रेखा प्रतिमाह, प्रतिव्यक्ति, खर्च का मध्य बिन्दु है जो ग्रामीण क्षेत्र में प्रति व्यक्ति 2400 कैलोरी और शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्राप्त करने से है। इस आधार पर 1973-74 की कीमतों पर ग्रामीण क्षेत्रों में 49 रुपए व शहरी क्षेत्र में 57 रुपए आय का 'Cut-off' बिन्दु निर्धारित है। बी०ओजलर, जी०दत्ता और एम० रेवेलियन और एस०डी० तेंदुलकर और एल० आर० जैन ने भी इस गरीबी रेखा को प्रयोग किया है।

# गरीबी के घटक
## (Incidence of Poverty)

भारत में या भारत के पास गरीबी की सीमा को मापने के बारे मे सही आँकड़े नहीं है, क्योंकि आय वितरण के संबंध में सांख्यिकीय सूचना प्राप्त करने के बारे में कोई उपाय नहीं किया गया। यद्यपि उपभोग खर्च पर NSS आँकड़े इस तरह की सूचना देते हैं जो शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी के स्तर को माँपने में प्रयोग किए जा सकते हैं। भारत में गरीबी का अध्ययन करने के लिए, अर्थशास्त्री इन आँकड़ो पर विश्वास करते हैं।

भारत में गरीबी के माप के बारे में दंडेकर और रथ, मिन्हास, बर्द्धन और आहलुवालिया द्वारा दिए गए विचार बहुत पुराने हैं और गरीबी के घटक के बारे में समान रूप से नहीं दर्शाते है। मिंहास के अनुसार, 1967-68 में ग्रामीण क्षेत्र में केवल 37.1 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे है, इसके विरुद्ध उसी वर्ष में 56.5 प्रतिशत का आहलुवालिया का अन्दाजा, और बर्द्धन का 54 प्रतिशत है और 1968-69 के लिए दंडेकर और रथ का अंदाजा 40 प्रतिशत है। आहलुवालिया, बर्द्धन और दंडेकर और रथ ने गरीबी रेखा को, मिंहास द्वारा ली गई गरीबी रेखा से थोड़ा नीचे लिया है। इस बात की भी हैरानी नहीं होनी चाहिए कि इन अर्थशास्त्रियों ने अपने अध्ययन के लिए समान आँकड़े प्रयोग किए हैं, लेकिन उनकी पद्धति (Methodology) समान नहीं है। जो विशेषज्ञ नहीं हैं वो भी मानते हैं कि 1960 के दौरान देश में गरीबों की संख्या ज्यादा ही नहीं थी बल्कि देश की कुल जनसंख्या में उनका (गरीब) हिस्सा (भाग) भी ज्यादा था।

नियोजन कमीशन ने सत्र के प्रथम से गरीबी से संबंधित आँकड़े दिए हैं। ग्रामीण जनसंख्या के लिए 49 रूपये (1973-74 की कीमतों पर) प्रति व्यक्ति प्रतिमाह पर गरीबी रेखा निर्धारित करते हुए पाया कि 1972-73 में जो 54.09 प्रतिशत थी उसकी अपेक्षा 1977-78 में ग्रामीण जनसंख्या का 51.2 प्रतिशत भाग गरीब था। नियोजन कमीशन के पैमाने के अनुसार, यह पाया गया कि 1972-73 में 42.22 प्रतिशत के विरुद्ध 1977-78 में शहरी जनसंख्या 38.2 प्रतिशत गरीब थी। यदि शहरी तथा ग्रामीणों गरीबों के अनुपात को इकट्ठा किया जाए तो यह कुल जनसंख्या का 1977-78 में 48.3 प्रतिशत था। सातवीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण गरीबी 40.4 प्रतिशत, शहरी गरीबी 28.1 प्रतिशत और यदि इन दोनों को इकट्ठा लिया जाए तो यह 1983-84 में 37.4 प्रतिशत थी। यह आँकड़े NSS द्वारा किए गए सर्वेक्षण पर आधारित है सातवीं पंचवर्षीय योजना के पेपर के तहत 40.4 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे रहते हैं जो ग्रामीण जनसंख्या का हिस्सा है। 1987-88 के आँकड़े बताते हैं कि गरीबी में कमी आई है जो 1983-84 में ग्रामीण क्षेत्र में 40.4 प्रतिशत से घटकर 1987-88 में ग्रामीण क्षेत्र में 33.3 प्रतिशत और शहरी क्षेत्र में 28.1 प्रतिशत से घटकर 20.1 प्रतिशत रह गई। इकट्ठे तौर पर देखा जाए तो उसी समय में 37.7 प्रतिशत से घटकर कुल गरीबी 29.9 प्रतिशत रह गई। यह दावा नियोजन कमीशन में पेश किया था। नियोजन कमीशन का मुख्य दावा केवल आर्थिक संव द्धि दर होने से है। इसका मुख्य कारण यह भी है कि कृषि उत्पादन में व द्धि और साथ-साथ इंटिगरेटिज रूरल डेवलपमेंट प्रोग्राम (IRDP), नेशनल रूरल अम्पलायमेंट गारंटी प्रोग्राम (NERP) के तहत ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार प्रदान करने से भी। यह भी माना जाता है विकसित कार्य जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, आधारभूत सुविधाएँ प्रदान करना जलपूर्ति कार्य तथा दूसरे कार्यक्रम जैसे महिलाओं, बच्चों आर्थिक तथा सामाजिक तौर पर पिछड़ा वर्ग के लिए कार्य से गरीबी रेखा से नीचे रहनेवाली जनसंख्या के भाग में कमी आई है। यद्यपि कुछ अर्थशास्त्रियों ने नियोजक कमीशन द्वारा प्रस्तुत

आँकड़ों पर शोक जाहिर किया है।

वी०एम० दंडेकर के अनुसार ''नियोजन कमीशन ने 1973-74 से देश में अधिक मात्रा मे गरीबी में कमी होने को गलत तरीका प्रयोग करना बताया है। इसमें नेशनल सैम्पल सर्वे (AISS) तथा नेशनल अकाउंटिंग स्टैटिस्टिक्स (NAS) के द्वारा दिए गए उपभोग खर्च की तुलना की गई है जबकि NAS के अंदाजे NSS की बजाय कम हैं। जो कि NSS का उपभोग खर्च वितरण व NAS का उपभोग खर्च वितरण के अनुसार 1987-88 में शहरी व ग्रामीण भारत में 19.7 व 32.7 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे है। प्रो० मिंहास, जैन व तेंदुलकर ने ठीक पद्धति का अनुसरण किया है। उनके अनुसार गरीबी तरीकों को कीमत के साथ जोड़ा गया है, जिस वर्ष में NSS के खर्च के आँकडें उपलब्ध है। यदि कीमतों के बारे में सही अंदाजा न लगाया जाए तो उपभोग खर्च को निकालना या उसका मूल्यांकन करना मुश्किल है तथा इससे आँकड़े भी प्रभावित होंगे।

उनके अंदाजों के अनुसार यह साफतौर पर दर्शाता है कि 1977-78 और 1987-88 के बीच गरीबी का कम होना जो नियोजन कमीशन द्वारा दर्शाया गया है, महज एक इत्तफाक है न कि पूर्णरूप से गरीबी में कमी आना।

गरीबी का निर्धारण करने के लिए नियोजन कमीशन ने जो पद्धति प्रयोग की है, उसकी आलोचना करते हुए कहा गया है कि गरीबी अंदाजों के सभी पहलुओं का दुबारा निरीक्षण करने की आवश्यकता है। यद्यपि नियोजन कमीशन इसके पूर्व निरीक्षण के लिए विशेषज्ञ कमेटी गठित की है जो गरीबों की संख्या या भाग के बारे में सही पता लगा सके। विशेषज्ञ ग्रुप ने 'टास्क फोर्स' द्वारा निर्धारित गरीबी रेखा का ही अनुसरण किया है। इसने सलाह दी है कि कीमत परिवर्तन से पिछले सालों की गरीबी रेखा को दुरुस्त किया जा सकता है। प्रो० मिन्हास, तेंदुलकर और जैन की तरह, विशेषज्ञ ग्रुप ने भी राज्य कीमत तत्त्वों को लिया है जो गरीबी रेखा के साथ रहनेवाले लोगों के उपभोग खर्च में होनेवाले परिवर्तन की सही जानकारी दे सके। इसने गरीबी के लिए पूर्ण तौर पर NSS द्वारा दिए गए उपभोग खर्च आँकड़ो पर भरोसा जताया है। यह एक रोचक पहलू है कि विशेषज्ञ ग्रुप ने 1983-84 और 1987-88 (ग्रामीण 46.6 शहर 42.2 इकट्ठा 44.8 प्रतिशत); (ग्रामीण 39.1, शहरी 40.1, इकट्ठा 39.3 प्रतिशत) में जो गरीबी दिखाई गई वह प्रो० मिंहास, जैन व तेंदुलकर द्वारा दिए गए आँकड़ों से काफी कम है, हालाँकि दोनों (नियोजन कमीशन, प्रो० मिंहास, जैन व तेंदुलकर) ने एक जैसी पद्धति प्रयोग की है।

भारत में अभी-अभी गरीबी के अंदाजें, वर्ल्ड बैंक के पावर्टी व ह्यूमन रिसोर्स डिविजन ने भी इकट्ठा किया है, अथवा समाहित किए है। इसमें भी NSS के आँकड़े प्रयोग में लाए गए हैं। यह साधन 1951 से अब तक की लंबी कतार प्रदान करता है। इसके अनुसार 1950-51 से 1973-74 के लंबा अंतर नहीं है। उसके बाद 1989-90 तक गरीबी में तेजी से गिरावट आई है। इन अंदाजों के अनुसार 1993-94 में ग्रामीण जनसंख्या का 38.7 प्रतिशत तथा शहरी जनसंख्या का 30.3 प्रतिशत गरीबी रेखा से नीचे था।

गरीबी को मापने के लिए विभिन्न-विभिन्न विधियाँ प्रयोग मे लाई गई हैं जितने भी ऊपर लिखित गरीबी के बारे में अंदाज **''हैड कॉऊंट नोन-डिस्कवरीमीनेटरी अप्रोच''** के तहत किए गए हैं लेकिन फिर भी इसमें काफी कमियाँ या इसकी सीमाएँ हैं। जिस प्रकार गरीबी रेखा जो एक बार निर्धारित की गई है, (चाहे कोई भी तरीका अपनाया हो) गरीब जो विभिन्न स्तरों से गुजरते हैं उसके बारे में वर्णन नहीं करती। जैसे उदाहरण के तौर पर 1979-80 की कीमतों पर ग्रामीण जनसंख्या के लिए 77 रुपए प्रतिमाह पर गरीबी रेखा खींची गई है। यह गरीबी रेखा पूर्ण रूप

से अप्रत्यासित है कि क्या एक आदमी को 76 रुपए या 25 रुपए मिल रहे हैं। लेकिन यदि उस मनुष्य को दोनों ही स्थितियों में रखकर देखा जाए तो उसकी स्थिति समान नहीं है। यह साफतौर पर दिखाई देता है कि यदि गरीबी रेखा को लिया जाए दोनों गरीबी रेखा से नीचे है लेकिन 25 रुपए लेनेवाले व्यक्ति की तकलीफ 76 रूपये प्रतिमाह लेनेवाले से ज्यादा होगी।

प्रो० अमर्त्य सेन ने कहा है ''गरीब एक आर्थिक वर्ग नहीं है, न ही सामाजिक व आर्थिक हलचल को वर्गीकृत करने की एक सुविधाजनक प्रकार (Category) है।

गरीबी आर्थिक हालातों से निकलने का एक जरिया है और गरीबी को हटाने या उससे संबंधित नीति गरीबी के Concept से परे होनी चाहिए। भेदभाव करने की अहम आवश्यकता है। गरीबी के वर्गीकरण को दो भागों में संचालित करना चाहिए। पहले स्तर में यह पता लगाना चाहिए किसे कितना प्राप्त हो रहा है और फिर प्रति व्यक्ति आय का कुछ हिस्सा प्रयोग कर गरीब की पहचान करनी चाहिए। दूसरे स्वर में, हमें कोशिश करनी चाहिए कि वास्तव में स्थिति कितनी बुरी है, और क्या एक स्थिति दूसरी स्थिति से बुरी है। इस संदर्भ में अमर्त्य सेन कहते हैं केवल यही जानना जरूरी नहीं है कि कितने लोग गरीब हैं बल्कि यह आवश्यक है कि वे कितनी गरीबी में है।

भारत में गरीबी को मापने के लिए ग्रुप के आकार को गरीब का आकार दिया गया है, लेकिन यह नहीं बताया गया अथवा यह नहीं दर्शाता कि गरीबी रेखा से गरीबों की आय कितनी कम है। इससे आगे गरीबों में वितरण की कमी के बारे में जानकारी का अभाव है। प्रो० सेन के अनुसार सही मायने में गरीबी की समस्या को हल करने में यह सूचना अहम् योगदान करती है। वर्तमान में प्रो० ओजलर, दत्त और रेवेलियन ने विश्व बैंक के लिए अपने अध्ययन मे पावर्टी गैप रेसो व स्कूयेरड पावर्टी गेप रेसो 1951-94 समय के लिए प्रयोग किया है। ये माप गरीबी के घटक के साथ-साथ, गरीबी की गहराई तथा गरीबी को भी मापते हैं।

दूसरा माप पावर्टी गैप इंडैक्स लिया गया है जिसके तहत पावर्टी गैप सूचकांक (इंडैक्स) को गरीबी रेखा से नीचे औसत फासला को उस रेखा के अनुपात के रूप में परिभाषित किया है (जहाँ औसत (mean) को पूरी जनसंख्या के ऊपर बनाया है, गैर-गरीबों की संख्या करने के लिए उनके प्रॉपर्टी गैप को शून्य दिखाया है) यह गरीबी अन्तर (gap) उस हस्तांतरण को मापता है जो प्रत्येक गरीबी व्यक्ति की आय को गरीबी रेखा तक लाती है ताकि गरीबी खत्म की जा सके। इस तरह से गरीबी अंतर गरीबी की गहराई को दर्शाता है और साथ-साथ गरीबी के घटक को भी। यद्यपि गरीबी गैप गरीबों के बीच की असमानता की सीमा के बारे में नही बताता। यदि आय गरीब आदमी से किसी दूसरे आदमी से हस्तांतरित कर दी जाए तो कौन गरीब है, गरीबी अंतर सूचकांक में परिवर्तन नहीं होगा। यह सीमा यदि ज्यों कि त्यों रहे तो तब भी गरीबी गैप (Poverty gap) माप साधारण हैड काउंट इंडैक्स से अच्छा और यही कारण है हैड काउंट इंडैक्स को आम प्रयोग में ही प्रयोग किया जाता है।

प्रो० ओजलर, दत्त और रेवेलियन ने इन अंदाजों (मापों) को विश्व बैंक के ह्यूमन रिसोर्स डिवीजन तथा गरीबी के लिए इकट्ठा किया है। इन अंदाजों के आधार पर 1950-51 से 1973-74 से जिसमें समय का ज्यादा अंतर नहीं है, गरीबी गैप सूचकांक 1989-90 तक लगातार घट रहा है। नब्बे के पहले यह स्तर उल्टा था तथा 1993-94 में गरीबी गैप सूचकांक ग्रामीण जनसंख्या के लिए 9.1 तथा शहरी जनसंख्या के लिए 7.62 था।

तीसरा गरीबी को ''स्कूयेरड पावर्टी गैप इंडैक्स' द्वारा मापा गया है। स्कूयेरड पावर्टी गैप इंडैक्स

का अभिप्राय है। स्कूयेरड परोपोरस्नेट पावर्टी गैप का औसत (Mean) लेना)। यह माप गरीबी की दशा को प्रभावित करता है क्योंकि यह गरीबों के बीच असमानता को दर्शाता है। इस पर शक नहीं किया जा सकता कि यह आय गरीबी को मापने को अधिक उपयुक्त है।

स्कूयेरड पावर्टी गैप का आंकलन प्रो० ओजलर द्वारा दिया गया है, प्रो० दत्त व रेवेलियन बताते हैं कि 1973-74 तक 1950-51 से ग्रामीण तथा शहरी जनसंख्या का स्कूयेरड पावर्टी गैप इंडैक्स में कमी आई है। 1993-94 में ग्रामीण जनसंख्या के लिए 3.27 स्कूयेरड पावर्टी गैप इंडैक्स था जो 1973-74 में 7.13 था। इसी तरह ग्रामीण जनसंख्या के लिए स्कूयेरड पावर्टी गैप इंडैक्स 1973-74 में 5.22 था जो 1993-94 में घटकर 2.76 रह गया।

## गरीब का वर्ग आधार
## (Class Base of Poor)

कृषक समाज में गरीबी को हटाने के लिए उच्च प्राथमिकता दी गई है। लेकिन किसी भी सरकार को नीति निर्धारण से पहले, इसे गरीबों को पहचानना या परिभाषित करना चाहिए। दुर्भाग्यवश, भारत में इस संदर्भ में सरकार द्वारा कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। NSS आँकड़ों को प्रयोग करते हुए प्रो० मिंहास, बर्द्धन, दंडेकर व रथ ने गरीबों को पहचानने (परिभाषित) करने में कुछ उपाय किए हैं। उनके परिणामों से अधिकतर गरीब इससे संबंधित हैं:

1. बगैर भूमि के कृषक श्रमिक घर जो लगभग श्रमिक घर (परिवार) का 60 प्रतिशत है।
2. कृषक श्रम परिवार जिनके पास छोटे जोत हैं कृषक श्रम परिवार का 40 प्रतिशत है।
3. गैर कृषि ग्रामीण मजदूर परिवार जिनके पास जोत नहीं है-कारीगर जो धीरे-धीरे परम्परागत रोजगार से खत्म हो रहे हैं।
4. छोटे भूमिदार, जो भूमि नहीं जोतते तथा 2 एकड़ या आमतौर पर एक एकड़ से कम जमीनवाले हैं। शहरी गरीब के बारे में प्रो० दंडेकर और रथ कहते हैं ''शहरी गरीब केवल ग्रामीण गरीबी का ज्यादा भाग है, जो शहर में चले जाते हैं या रहते हैं। पूर्ण रूप से वे भी ग्रामीण गरीब की तरह ही हैं यद्यपि वे नगरीय गरीबी में रहते हैं, उनकी अपनी विशेषता है। बढ़ते शहरीकरण में उनकी श्रम व जीवन के बारे में कम जानकारी है।''

## मानव गरीबी
## (Human Poverty)

गत वर्षों में विकसित अर्थशास्त्रियों ने बहस की है कि यद्यपि आय गरीबी के अहम पहलुओं को दर्शाती है, यह केवल मानव जीवन के बारे में आँशिक तस्वीर पेश करती है। मानव विकास रिपोर्ट, 1997 में बताया गया है कि कोई अच्छा स्वास्थ्य का आनंद ले सकता है, अच्छी तरह रह सकता है, लेकिन वह अशिक्षित और समाज के बाकी हिस्सों से कटा हुआ है। दूसरी तरफ, दूसरा व्यक्ति शिक्षित व पूर्णरूप से ज्ञानी लेकिन प्राकृतिक कारणों से समय से पहले म त्यु हो गई है। यद्यपि तीसरा रास्ता उसको अहम निर्णयों में भूमिका अदा करने से रोकना जो उसके जीवन को प्रभावित करता है। यह साफ है कि इस तरह का भेदभाव, केवल आय के स्तर के द्वारा नापा नहीं जा सकता। इस तरह के गरीबी के विचार को पूर्ण करने के लिए, इसका आय के संबंध में अध्ययन ही नहीं, बल्कि लोगों के प्रति भेदभाव के बारे में भी जानना

आवश्यक है। इसी को मानव गरीबी कहा गया है। इसका अभिप्राय लोगों को अवसर व चुनाव से वंचित रखना जो मानव जीवन के लिए आवश्यक है। जैसे लंबा, स्वस्थ, रचनात्मक जीवन और अच्छा जीवन स्तर, आजादी, आत्म व दूसरों की इज्जत करना।

## मानव गरीबी सूचकांक
## (Human Poverty Index)

मानव विकास रिपोर्ट, 1997 में मानव गरीबी सूचकांक का प्रतिपादन किया है जो विभिन्न गरीबी को तथा मानव को प्रभावित करनेवाले तत्त्वों का सूचकांक है। रिपोर्ट बताती है कि मानव गरीबी सूचकांक की अपेक्षा मानव गरीबी ज्यादा विस्त त है। यह बहुत से जीवन को प्रभावित करने वाले पहलू-जैसे-आजादी की कमी, फैसलों में शामिल होने की अयोग्यता, आत्म सुरक्षा की कमी इत्यादि है जिसको मापा नहीं जा सकता। यद्यपि विकासशील देशों में गरीबी में भूख, अनपढ़ता, स्वास्थ्य सेवाओं की कमी, महामारी, साफ पानी की कमी को शामिल किया जाता हैं। लेकिन मानव गरीबी सूचकांक में निम्न बातों को शामिल किया गया है जैसे दीर्घ आयु, ज्ञान, ठीक जीवन स्तर और बच्चों का स्वास्थ्य।

1. इस सूचकांक को निकालने के लिए 40 वर्ष की आयु से पहले म त्यु होनेवाले व्यक्तियों का प्रतिशत।
2. दूसरा ज्ञान-किशोरों का प्रतिशत जो कि अनपढ़ हैं।
3. जीवन का रहन-सहन इसमें तीन चीजें ली गई हैं- लोगों का प्रतिशत जो बगैर साफ पानी के है, अथवा साफ पानी उपलब्ध नहीं, स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता नहीं और उनका प्रतिशत जो संडास सेवाओं से वंचित है।
4. पाँच साल की आयु से कम बच्चों का वजन कम हो।

मानव गरीबी सूचकांक चारों चरों का साधारण औसत लेकर निकाला जाता है।

## मानव गरीबी सूचकांक तालिका

| | पिछड़ापन | | मूल्य |
|---|---|---|---|
| 1. | उन लोगों का प्रतिशत जिनकी 40 वर्ष की आयु से पहले म त्यु हुई 1997 | | 16.1 |
| 2. | किशोर निरक्षरता प्रतिशत 1997 | | 46.5 |
| 3. | (i) साफ पानी सुविधा नहीं 1990-97 | 19 | |
| | (ii) स्वास्थ्य सेवाओं की कमी 1981-92 | 25 | |
| | (iii) संडास की कमी | 71 | 38.3 |
| 4. | पाँच वर्ष की आयु से कम बच्चों के वजन में कमी | | 53.0 |
| | **मानव गरीबी सूचकांक मूल्य** | | **35.9** |

साधन : यू०एन०डी०पी०, मानव विकास रिपोर्ट, 1999 तालिका बताती है कि भारत में मानव गरीबी काफी ज्यादा है। सबसे अहम पहलू जीवन का छोटा होना। भारत में 40 वर्ष की आयु पहले जनसंख्या के 1/5 भाग की म त्यु हो जाती है। यद्यपि चीन, मलेशिया, श्री लंका, अर्जेंटिना व क्यूबा में लोगों का 8% संख्या जो 40 वर्ष की आयु से पहले मर जाती है जो भारत में

16 प्रतिशत है। बाकी आँकडे भी अधिक मात्रा को दर्शाते हैं। भारत में किशोर अनपढ़ता 46.5 प्रतिशत जो विकासशील देशों में 28.4 प्रतिशत है। 1997 की रिपोर्ट के अनुसार भारत में पुरुष असाक्षरता 33.6 प्रतिशत व महिला असाक्षरता 33.6 प्रतिशत व महिला असाक्षरता 60.4 प्रतिशत थी।

मानव गरीबी सूचकांक रिपोर्ट, 1999 ने 99 देशों में मानव गरीबी सूचकांक निकाला जिसमें भारत का स्थान 59 है जो बहुत नीचे है। यह साफतौर पर देश से मानव गरीबी हटाने में देश की असफलता को दर्शाता है।

## ग्रामीण गरीबी
## (Rural Poverty)

अधिकतर लोग प्रो० दंडेकर व रथ के विचारों से सहमत होंगे कि भारत में नगरीय गरीबी, ग्रामीण गरीबी का अधिक वाला हिस्सा है। ये लोग ग्रामीण क्षेत्र से हस्तांतरित होकर गरीबी रेखा को लाँघते हैं, जो औद्योगिक विकास, की वजह से ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्रों में चले जाते हैं। लेकिन यह भी अपने आप सम्पूर्ण नहीं है, कुछ नगरीय गरीब लम्बे समय से शहरों में रहते हैं तथा इनकी विशेषताएँ भी अलग हैं। यद्यपि भारत में गरीबी का ढाँचा सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को दर्शाता है। इसका कारण यही है कि अधिकतर नीतियाँ ग्रामीण गरीबी को हटाने के लिए बनाई जाती हैं।

भारत में ग्रामीण मजदूरी अधिकतर कृषि में उत्पादन के साथ सामंतवाद का संबंध होने की वजह से उभरकर आती है। भूमि सुधार जो स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शुरू हुए थे कृषकात्मक संबंध में ज्यादा अंतर नहीं दर्शाती है। यद्यपि अधिकतर सभी कृषि श्रमिक, छोटे व सीमांत किसान और भूमिहीन गैर कृषि ग्रामीण मजदूर सभी गरीब हैं। ग्रामीण गरीब जनसंख्या में तीव्र गति से भूमि पर प्रभाव डालती है जिससे श्रमिक की वास्तविक प्रति व्यक्ति आय कम हो जाती है जिससे श्रम उत्पादकता तथा रोजगार में गिरावट तथा खाने की वस्तुओं की कीमतें भी बढ़ जाती हैं। यह तर्क भारत के संदर्भ में सही है। यद्यपि भारत के राजनीतिक ढाँचे की वजह से जो सही नहीं है, न तो जनसंख्या व द्धि दर में कमी आई है न ही रोजगार में व द्धि हुई है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए कृषि तकनीकी परिवर्तन से उत्पादकता में व द्धि हुई है तथा खाद्य वस्तुओं की कीमतों मे भी परिवर्तन हुआ है। जो वर्तमान समय में ग्रामीण गरीबी को प्रभावित करते हैं। प्रो० कैथ ग्रीफीन ने कहा है कि आँकड़े दर्शाते हैं कि असमान धन की उपलव्धि नई कृषि तकनीक जैसे नए खाद, बीज तथा जोतों के आकार की वजह से आय की असमानता बढ़ी है जो लोगों में गरीबी की सीमा को और बढ़ाती है।

प्रो० जॉन डब्लू० मैलर के विचार में नई तकनीक ने खाद्य उत्पादन की लागतों को कम किया है और इससे खाद्यान्न कीमतों में कमी की वजह से श्रम की माँग में बढ़ोत्तरी हुई है। क्योंकि भोजन श्रमिकों के लिए महत्त्वपूर्ण उपभोग वस्तु है जिस पर वे आय का अधिकतर हिस्सा खर्च करते हैं। उनके अनुसार नई तकनीक का प्रयोग उनके पक्ष में जाता है। प्रो० धीमन नारायण ने भी यही कहा है कि भारत में आँकड़े दर्शाते हैं कि कृषि उत्पादन में व द्धि से खाद्यान्न वस्तुओं की कीमत में कमी आई है जिससे गरीबी में कमी आई है।

ऐसी स्थिति में इस बात को भी नहीं झुठलाया जा सकता कि नई तकनीक के आरम्भ से गरीबी में कमी आई है लेकिन साथ-साथ यह भी कहना आवश्यक है कि यह उन्हीं क्षेत्रों मे लागू है जहाँ जनसंख्या तीव्र गति से नहीं बढ़ी है। ऐसे क्षेत्र जहाँ गैर कृषि रोजगार तेजी से नहीं

बढ़ा है, जनसंख्या व द्धि ने तकनीक के प्रभाव को कम कर दिया है। जो श्रमिकों के पक्ष में नहीं जाता। प्रो० मैलर के अनुसार ऐसी अवस्था में तेजी से परिवर्तन की आवश्यकता है। जो जनसंख्या व द्धि के प्रभाव को सामान्य कर सके। ऐसी स्थिति में, भारत में हर क्षेत्र में कृषि विकास संभव नहीं है इसलिए कृषि की दिशा को मोड़ना होगा। जैसे पशुपालन, वन-वानिका आदि संबंधित क्षेत्रों को विकसित करना होगा। ग्रामीण उद्योगों को भी शहरी उद्योगों की तरह उच्च प्राथमिकता देनी चाहिए जो कि हम भूतकाल में न कर सके।

## ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी तथा उसमें चतुरता से कमी
## (Poverty and Trickle down in the Rural Sector)

इसके अन्तर्गत प्रतिव्यक्ति आय की तेजी से व द्धि दर के साथ गरीबी में कमी होने को जोड़ा जाता है। भारत में कृषि विकास के संदर्भ में 'ट्रिकल डाऊन सिद्धान्त' में बताया गया है कि कृषि उत्पादन में व द्धि वह भी संस्थागत सुधार के बिना, गरीबी के घटक को कम करती है। प्रो० मोटेक एस० आहलुवालिया ने भी इस संदर्भ में विचार प्रस्तुत किए हैं कि कृषि उत्पादन बढ़ने के साथ श्रमिक आय में भी व द्धि होती जिससे गरीबी में कमी आती है। यह इस बात को भी दर्शाता है कि समय के साथ आय का वितरण स्थिर है और कोई भी विपरीत व्यापार की शर्त कृषि को प्रभावित नहीं करती। प्रो० आहलुवालिया के इस संदर्भ में अलग विचार हैं। उनका कहना है कि यह सही है कि संव द्धि उतनी तेज नहीं है जिससे इच्छात्मक तौर पर गरीबी में कमी की जा सके। वास्तविक कृषि आय जो कुल सकल उत्पाद (NDP) के संदर्भ में मापी जाती है 1956-57 से 1977-78 तक केवल 2 प्रतिशत बढ़ी जो जनसंख्या व द्धि से थोड़ी सी ज्यादा है। इसका यह परिणाम है कि ग्रामीण जनसंख्या में प्रतिव्यक्ति कृषि सकल उत्पादन के कोई अंतर नही आया है। इन विचारों को ध्यान में रखते हुए प्रो० टी० एन० श्रीनिवासन ने कहा है कि 'ट्रिकल डाऊन प्रभाव' के लिए यह व द्धि काफी नहीं है जो गरीबी के घटक पर प्रभाव डाल सके। यह प्रभाव तभी संभव है जब कृषि उत्पादन में जनसंख्या व द्धि की अपेक्षा अधिक व द्धि हो।

इस नए ट्रिकल डाऊन प्रभाव को भी बहुत से अर्थशास्त्रियों ने चुनौती दी है। प्रो० प्रणव के० बर्द्धन ने यह वर्णन करने की कोशिश की है कि कैसे भारत मे कृषि की नई तकनीक इस तरह से प्रभाव डालती है कि जिससे छोटे व सीमांत किसान तथा कृषि श्रमिकों की आय में व द्धि हो। उनका यह भी विचार है कि नई तकनीक ने कुछ मापदंड बताए जिससे सत्र के मध्य में ट्रिकल डाऊन का असर हुआ।

1. श्रम को कम करनेवाली तकनीक के प्रयोग मे कमी।
2. बड़े किसानों द्वारा स्वयं खेती करने से उनके लाभ में व द्धि जिससे छोटे काश्तकार बाहर हो जाते हैं।
3. कृषि का इन्पुट खरीदने पर निर्भर रहना सिंचाई प्रबंध छोटे किसानों के साधनहीन बना देता है। कुछ समय के बाद यही किसान कृषि मजदूर की श्रेणी मे आ जाते हैं।
4. हरित क्रान्ति के बाद अमीर किसानों की जमात पैदा हुई है जो ग्रामीण कास्तकारों से साधन नहीं लेते जिससे वे बेकार हो जाते हैं।
5. कुछ हिस्सों में कृषि विकास होने से कृषि श्रमिक पिछड़े क्षेत्रों से दूसरे क्षेत्रों में चले

जाते हैं।

6. अमीर किसानों द्वारा पम्प सैट के प्रयोग करने से पानी का स्तर नीचे चला गया है और परिणामस्वरूप गरीब किसान परम्परागत सिंचाई तकनीक का ही प्रयोग कर रहे हैं जो कि कम प्रभावित है। बड़े किसान परम्परागत सिंचाई साधनों के प्रयोग में रुचि नहीं रखते और छोटे किसानों के पास नई पद्धति के लिए धन का अभाव है।

7. नई तकनीक के प्रयोग से महिलाओं के रोजगार में कमी आई है जिससे गरीब परिवार प्रभावित हुए है।

8. अमीर किसानों की राजनैतिक मोल-भाव शक्ति बढ़ने से खाद्यान्न कीमतो में तो व द्धि हुई है लेकिन इसकी अपेक्षा मजदूरी में व द्धि नहीं हुई।

प्रो० बर्द्धन सहमत हैं कि ऊपरलिखित कारण हमेशा विद्यमान नहीं रहते हैं। उनका मानना है कि बगैर संस्थागत सुधार के नई तकनीक के प्रयोग से गरीबों की स्थिति में सुधार नहीं होगा।

प्रो० बर्द्धन इस बात से भी सहमत हैं कि कुछ राज्यों जैसे हरियाणा, पंजाब में क षि में प्रति व्यक्ति वास्तिवक आय में व द्धि हुई हैं लेकिन इन राज्यों में गरीबी के घटकों में ज्यादा कमी नहीं आई है। यह सबूत, उनकी राय में ट्रिकल डाऊन प्रभाव से विपरीत है। गरीबी के घटकों में कमी तभी संभव है जब गरीबी को कम करने के लिए प्रभावीरूप से गरीबी हटाओ तथा ग्रामीण कार्यक्रम क्रियात्मक रूप से लागू किए जाएँ। यह तभी संभव है जब सरकार इस ओर धनात्मक रूप से पहल करें।

सरकार ने गरीबी को कम करने के लिए विभिन्न कदम उठाए हैं जैसे स्माल फारमर्स डेवलपमेंट एजेंसी, मारजिनल फारमर्स डेवलपमेंट एजेंसी, डटोट परोन एरिया प्रोग्राम, क्रेस स्कीम फॉर रूरल एम्पलायमेंट प्रोग्राम, फुड फोर वर्क्स प्रोग्राम लेकिन इनमे से कोई भी कार्यक्रम पूरे देश को कवर नहीं कर पाया। कुछ कार्यक्रम अलग-अलग रूप से लागू हुए जिसका उदेश्य सिर्फ एक ही था। इन सब सीमाओं के बावजूद ये कार्यक्रम सिर्फ अनुदान देनेवाले कार्यक्रम बनकर रह गए। ये गरीबों को काम करने या गरीबों की आय बढ़ाने में सार्थक सिद्ध नहीं हुए। इसलिए जरूरत महसूस हुई कि वही कार्यक्रम शुरू करने चाहिए जो गरीबी को खत्म कर सकें। इसलिए सरकार ने अलग तरह के कार्यक्रम शुरू किए जिनका उद्देश्य सिर्फ गरीबी खत्म करना था।

इंटिग्रेटिड रूरल डेवलपमेंट प्रोग्राम (IRDP), नेशनल रूरल एम्पलायमेंट गारंटी प्रोग्राम (NREP) गरीबी खत्म करने के लिए शुरू किए गए। इनका उद्देश्य 1983 तक अधिक-से-अधिक रोजगार प्रदान करना था इसलिए इन दोनों कार्यक्रमों को मिलाकर एक कर दिया गया। इससे ये और भी अधिक प्रभावी हो सके। कुछ और अधिक कार्यक्रम जो महिलाओं को अपना टारगेट बना सकें, शुरू किए गए। छटी-पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत तकनीकी ज्ञान प्रदान करने के लिए युवाओं के लिए ट्रेनिंग आफ यूथ फॉर सेल्फ एम्पलायमेंट (ट्राइसेम) शुरू किया गया। इस कार्यक्रम में रिजर्व बैंक, नाबार्ड के तहत धन मुहैया कराया गया। कुछ अध्ययनों में पाया गया कि इन कार्यक्रमों के तहत 55 से 90 प्रतिशत की संख्या फायदा लेने वालों की थी। इंटिग्रेटिड प्रोग्राम फार रूरल डेवलपमेंट ज्यादा सफल कार्यक्रम नहीं रहा। यह कार्यक्रम गरीबी हटाने के लिए भी सार्थक नहीं हो पाया। इसलिए इसका ढाँचा दोबारा तैयार करके, इसे नया नाम 'स्वर्णिम ग्राम स्वरोजगार योजना' दिया। इसके अन्दर ट्राइसेम को भी मिला दिया गया।

इसके बाद पिछड़े वर्ग को उठाने के लिए भी विभिन्न कार्यक्रम चलाए जैसे जवाहर ग्राम संव द्धि योजना, एम्पलायमेंट इंश्योरेंस स्कीम, नेहरू रोजगार योजना नगरीय गरीब को लाभ पहुँचाने के

लिए और आखिरी ये भी कार्यक्रम स्वर्ण जयन्ती शहरी योजना में 1997-98 में मिला दिए गए।

यदि फिर भी गरीबी हटाओं कार्यक्रमों का अवलोकन किया जाए तो इन सभी ने गरीबों को एक ही ग्रुप माना। उनके बीच कोई भी अंतर नहीं किया। योजनाकारों ने उनकी आम विशेषताओं तथा जरूरतों की तरफ कोई भी ध्यान नहीं दिया।

प्रो० इंदिरा हारवे के अनुसार गरीबों की दो सूची बनानी चाहिए। एक वह जो कुछ कुशल (Skill) रखते है तथा स्वयं रोजगार शुरू कर सकते हैं। दूसरी जो मजदूरी संबंधी रोजगार प्राप्त कर सकते हैं। दोनों को अलग-अलग तरह से लेना चाहिए न कि एक ही वर्ग बनाकर उनके ऊपर समानरूप से एक ही कार्यक्रम सौंप दिया जाए। इंदिरा हारवे के अनुसार गरीबी हटाते समय स्वयं रोजगार कार्यक्रमों या स्वयं रोजगार की अनदेखी नहीं करनी चाहिए। इसलिए सही दिशा यही है कि स्वयं रोजगार तथा मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों को साथ-साथ चलाना चाहिए ताकि हर ग्रुप इसका फायदा उठा सके। ऐसी अवस्था में हम महसूस कर सकते हैं कि गरीबी की दर में निश्चित तौर पर कमी आएगी। वर्तमान समय ऐसी स्थिति कम दिखाई देती है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में भी गरीबी हटाओं प्रमुख मुद्दा था। योजनाकारों का मानना है कि रोजगार संबंधी संव द्धि लागू करने से भी गरीबी कम हो सकती है। नवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत गरीबी हटाने के लिए आर्थिक संव द्धि के बारे में सोचा गया। इस योजना के अन्तर्गत गरीबी हटाने वाले कार्यक्रमों को ज्यादा पहचान नहीं मिल पाई। वर्तमान समय में गरीबी हटाओ कार्यक्रमों के ऊपर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। इस योजना के अन्तर्गत रोजगार देने के साथ-साथ आर्थिक संव द्धि को भी माना गया है।

# अध्याय-5
# आर्थिक नियोजन
# (Economic Planning)

समाजवादी अर्थव्यवस्थाएँ विदेशी जनसंख्या का लगभग एक-चौथाई हिस्सा कवर करती हैं जो पूर्ण रूप से नियोजित अर्थव्यवस्था है। यह सच है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में नियोजन मौजूद नहीं है बल्कि यह समाजवादी अर्थव्यवस्था मौजूद है। इस बात से भी नकारा नहीं जा सकता कि अब विकसित देशों में भी राज्य आर्थिक कार्यों को संचालन करने के लिए कुछ मुख्य उद्देश्यों या पहले से परिभाषित उद्देश्यों को महसूस करती है। यही कारण है कि क्यों कुछ पश्चिम अर्थशास्त्री जोर देते हैं कि अर्थव्यवस्था में किसी-न-किसी प्रकार का आर्थिक नियोजन आवश्यक है। कुछ अर्थशास्त्री अलग तरह का महसूस करते हैं। उनकी राय में राज्य के अधिकार के बिना आर्थिक नियोजन का कोई औचित्य नहीं है। इस अध्याय में हम भारत में वास्तव में आर्थिक नियोजन का क्या अभिप्राय है, के बारे में वर्णन करेंगे क्या इसका कोई औचित्य है, नियोजन किस प्रकार कार्य करता है और इसकी क्या विशेषताएँ हैं।

## आर्थिक नियोजन का अर्थ
## (Meaning of Economic Planning)

हर एक देश में आर्थिक नियोजन अलग-अलग हैं, आर्थिक नियोजन के तत्त्व पर अर्थशास्त्रियों के बीच कम सहमति है। पिछले रिकार्ड से पता चलता है कि पिछले कुछ दशकों में आर्थिक नियोजन को चार पहलुओं से देखा गया है।

आर्थिक नियोजन में उस आर्थिक पद्धति की व्याख्या की गई जिसमें वह उन्हीं साधनों का प्रयोग कर सकता है जो उसे प्रदान किए गए हैं और केन्द्रिय अथोरिटी के निर्देशानुसार वह अपने उत्पादन को वितरित या खत्म करती है। आर्थिक नियोजन का यह मतलब संकुचित है तथा यह केवल वही कवर करती है जिसे प्रायः सामूहिक आर्थिक नियोजन का नाम दिया गया है जो समाजवादी अर्थव्यवस्था में अपनाया गया है। दूसरी सूरत में आर्थिक नियोजन का मतलब है केवल सरकारी व निजी इंटरप्राईजिंग का टारगेट लेना है। इस तरह की नीतियाँ कई बार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में भी पाई जाती है। ऐसी अर्थव्यवस्था में राज्य अर्थव्यवस्था का पूर्णरूप से अवलोकन नहीं कर पाती इसलिए इस प्रकार की अर्थव्यवस्था को आंशिक नियोजन कहा जाता है। तीसरे, नियोजन, सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए टारगेट निश्चित करती है और देश के साधनों को अर्थव्यवस्था की विभिन्न संस्थाओं को प्रदान करती है। भारत इस तरह के नियोजन को अपनाता है। चतुर्थ श्रेणी में सरकार निजी संस्थानों पर निश्चित टारगेट पूरा करने पर दबाब डालती है जो उनके लिए निर्धारित किए गए हैं।

भारत में आर्थिक नियोजन तथा विकसित योजना बनाने के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखा गया है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी तथा सरकारी दोनों क्षेत्रों को लिया जाता है।

निजी क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को लिया गया है।

1. जीवन निर्वाह खेती व हस्तशिल्पकार
2. छोटे पैमाने तथा परिवार द्वारा अपनाए गए वाणिज्य उद्योग
3. मध्यम आकार के औद्योगिक क्षेत्र जैसे यातायात, व्यापार और कृषि।
4. बड़े व्यावसायिक उद्योग जैसे-खान, पौधारोपण इत्यादि।

ऊपरलिखित नियोजन की विशेषताओं से पता चलता है कि भारत मे आर्थिक नियोजन बाजार को पूर्णरूप से बदल नहीं सकी। वास्तव में बाजार तथा आर्थिक नियोजन एक दूसरे के परिपूर्ण हैं।

विभिन्न कारणों से आर्थिक नियोजन को, भारत में, विकास यंत्र के तौर पर देखा गया है। इन सबमें कुछ महत्त्वपूर्ण हैं। जो इस प्रकार हैः-

1. **बाजार प्रक्रिया की सीमाएँ (Limitations of Market Mechanism)** - बाजार की सीमाओं को देखते हुए आर्थिक नियोजन की आवश्यकता को महसूस किया गया। समाजवादियो में यह धारणा है कि बाजार प्रक्रिया कामवर्ग के प्रति भेदभाव की भावना रखती है। इसलिए जब वे राज्य शक्ति को काबू में कर लेते हैं तो वे उत्पादन के साधनों के निजी मालिकाना हक को खत्म करके नियोजन के लिए बाजार को इसका सहायक बनाती है अथवा नीचे रखती है। बाजारी अर्थव्यवस्था दोनों विकसित तथा विकासशील देशों - नियोजन का बाजार की सीमाओं पर काबू करने के लिए प्रयोग किया जाता है। विकसित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में, यह कोई भी विश्वास नहीं कर सकता कि बाजार प्रक्रिया पूर्ण रोजगार पर आर्थिक व्यवस्था या इकाई देने के लिए बाध्य करे। इन देशों में प्रभावी माँग की कमी की वजह से कुछ हद तक मंदी की अवस्था पैदा करती है। यह केवल राज्य के हस्तक्षेप या तो निजी क्षेत्र में निवेश करके या सरकारी क्षेत्र अपने आप कुछ निश्चित प्रोजेक्ट ले, तभी इस मंदी को खत्म किया जा सकता है। भारत में आर्थिक नियोजन की आवश्यकता साधारणतया आर्थिक पिछड़ेपन की वजह से हुई है।

2. **सामाजिक न्याय की जरूरत (Need for Social Justice)** - दूसरे देशों की तरह भारत ने भी सोचा कि आर्थिक व द्धि अपने आप गरीबी की समस्या को दूर कर देगी। पिछले चार दशकों के आँकड़े बताते हैं कि अर्थव्यवस्था में आर्थिक व द्धि से होनेवाले लाभ भी इसे नीचे नहीं ला सके। वास्तव में बाजारू ताकतें इस प्रकार से काम करती हैं कि यह आर्थिक शक्तियों पर केन्द्रित होकर, व द्धि उन लोगों को एक तरफ छोड़कर आगे निकल जाता है जिसकी उनको बहुत आवश्यकता है। यही कारण है कि देश में गरीबी हटाओ कार्यक्रमों की आवश्यकता महसूस हुई। भारत यदि बाजारी ताकतों पर निर्भर करेगा तो बेरोजगारी को खत्म करने मे बहुत मुश्किल होगी। इस देश में श्रम बाजार बहुत-सी अपूर्णता से प्रभावित हैं। आगे मौसमी रोजगार, बढ़ती जनसंख्या, भूमि पर जनसंख्या का दबाव, इस प्रकार के तत्त्व बेरोजगारी की समस्या को दूर करने में काफी कठिनाई पैदा करते हैं। यदि मानव संसाधनों को प्रयोग करना लाभकारी है तो सरकार को वैज्ञानिक मानव नियोजन अपनाना चाहिए।

3. **साधन प्रेरित और सम्पूर्ण विकसित उन्नति के लिए उनका बँटवारा (Resource Mobilization and allocation in the context of overall development programme)**- भारत में साधनों की काफी कमी है। इसलिए साधनों का सही प्रयोग

करना आवश्यक है। इस देश मे निजी लाभ के आधार पर प्रोजेक्ट का चुनाव नहीं करना चाहिए। अधिक निवेश सामाजिक निम्न प्राथमिक क्षेत्रों में करनी चाहिए, जैसे- अमीरों के लिए उपभोग वस्तु। ऐसा समाज जहाँ आय का वितरण असमान है, प्रतियोगी बाजार निवेश करने के तरीके के बारे निर्देश देंगे, जो देश के दीर्घकालीन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए समर्थ नहीं होंगे। विकासशील देशों में प्रोजेक्ट का चुनाव सामाजिक लाभ के लिए, न कि निजी लाभ के लिए होना चाहिए। इसलिए सामाजिक लाभ के लिए साधनों को प्रयोग में लाने के लिए राज्य को हस्तक्षेप करना चाहिए। यद्यपि साधनों को क्रियाशील बनाने में निजी संस्थानों की बजाय राज्य ज्यादा प्रभावी है। इसलिए इस देश में किसी भी कारण से आर्थिक नियोजन का अपनाना मजबूत स्थिति है। इसी बात पर 1965 में नियोजन पर यू० एन० कॉफ्रेंस ने जोर दिया था कि विकासशील देशों में समान मुद्दों पर आधारित आर्थिक नियोजन अपनाना चाहिए।

## नियोजन की प्रक्रिया
## (Process of Planning)

भारत में बाजार प्रक्रिया की बजाय आर्थिक नियोजन को ज्यादा महत्त्वपूर्ण माना गया है। यह देश में नियोजन प्रक्रिया का अनुसरण करने के लिए आवश्यक है। यहाँ हम इस बात का वर्णन करेंगे कि क्यों आर्थिक नियोजन महत्त्वपूर्ण है तथा इसकी क्या प्रक्रिया है।

1. **नियोजन आकार** **(Planning Body)** - सबसे पहली शर्त है कि सरकार नियोजन का आकार तय करे। भारत में नियोजन आकार को नियोजन कमीशन कहा जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य साधनों का वर्गीकरण कर, उद्देश्य निर्धारित कर, प्राथमिक तैयार कर, उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ढाँचा तैयार करना है। इसके साथ-साथ विभिन्न कार्यक्रमों को लागू करने के लिए भी साधनों को प्रेरित करना है।

2. **साधनों का वर्गीकरण और आवश्यक आँकड़े इकट्ठा करना** **(Survey of Resoutces and Collection of Necessary data)** - आर्थिक नियोजन के लिए साधनों का सर्वेक्षण तथा आँकड़ों की उपलब्धता, दो महत्त्वपूर्ण पहलू है। योजना का आकार साधनों की उपलब्धता की वजह से सीमित रहता है। इसलिए नियोजन आकार को मानव और पूँजी साधनों की उपलब्धता के बारे में पहले जानकारी होना आवश्यक है। विकसित देशों में साधनों का सर्वेक्षण तथा आँकड़ों की उपलब्धता व सार्थकता सही होती है जबकि भारत जैसे देश से यह बात कोसों दूर है। जहाँ आँकड़े उपलब्ध हैं वहाँ उसकी विश्वसनीयता पर प्रश्न चिह्न है। इसलिए सरकार ने इस समस्या से निजात पाने के लिए केन्द्रीय साँख्यिकी संगठन स्थापित किया है।

3. **नियोजन उद्देश्य** **(Planning Obectives)** - आर्थिक नियोजन के निश्चित उद्देश्य होते हैं। इन उद्देश्यों को साफतौर पर परिभाषित करके इनको पूरा करने के निर्देश दिए जाते हैं। यदि नियोजन में राष्ट्रीय उद्देश्य नहीं है तो यह बेकार है। अधिकतर विकासशील देशों में नियोजन उद्देश्य तथा उसके लागू करने के बीच अंतर देखने को मिलता है। शासक इन उद्देश्यों से हटकर कार्य करना चाहते हैं। लेकिन यदि उद्देश्यों की पूर्ति न हो तो नियोजन बेकार है।

4. **प्राथमिकता** **(Priorities)** - नियोजन में सरकारी निवेश कार्यक्रम के लिए प्राथमिकता आवश्यक है। विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न निवेश प्रक्रिया कोई भी देश पूरा नहीं कर सकता

है। हम सभी जानते है कि बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था में इन्फ्रास्ट्रक्चर विकसित होना बहुत आवश्यक है, साथ-साथ, स्वास्थ्य, कृषि उत्पादन ताकि खाद्य वस्तुओं की पूर्ति हो, मशीन निर्मित उद्योग भी विकसित करने की आवश्यकता है जिससे विकास की प्रगति तेज हो, भारत जैसे देश में धन की कमी से प्राथमिकता परिभाषित की जाती है ताकि पूरे देश में इन साधनों का समानरूप से असर पड़े और संव द्धि प्रक्रिया न रुके।

5. **विकसित ढाँचा** **(Development Structure)** - आर्थिक नियोजन बड़े उद्देश्य प्राप्त करने के लिए नीति निर्धारित करता है। भारत ने विकास के स्तर को बढ़ाने के लिए यह फैसला किया है कि यह दीर्घकालीन विकास को तब तक कायम रख सकती है जब उपभोग उद्योग तथा पूँजी उद्योग दोनों में साथ-साथ विकास हो। अब यह स्थापित है कि व द्धि दर निर्यात प्रोत्साहन या आयात प्रतिस्थापन के द्वारा प्राप्त की जाए।

6. **नियोजन में समानता** **(Balancing in the Planning)** - भारतीय योजनाकार इस बात का ध्यान रखते हैं कि बचत तथा निवेश में समानता, वस्तुओं की माँग व पूर्ति, मानव साधनों की उपलब्धता तथा आवश्यकता, आय और विदेशी विनिमय की उपलब्धता को बनाया रखा जाए। योजनाकारों का मानना है कि समन्वय के बाद भी उत्पादक साधनों की कमी तथा आधिक्य हो सकता है। पहले हम बचत व निवेश के समन्वय के बारे में वर्णन करते हैं। अधिकतर बचत उन्हीं लोगों द्वारा की जाती है जो निवेश में योगदान नहीं करते। इसलिए निवेश तथा बचत में असमन्वय हो सकता है। इसको रोकने के लिए सरकार द्वारा इन दोनों के बीच समन्वय रखना आवश्यक है। क्योंकि यदि खपत क्षमता की अपेक्षा बचत ज्यादा है तो इससे मंदी की समस्या उत्पन्न होगी। वस्तुओं की माँग व पूर्ति के बीच अंतर अथवा असमन्वय को रोकना आवश्यक है। श्रम वस्तुओं की कमी से उनकी कीमतो में व द्धि होगी जो अर्थव्यवस्था के लिए घातक भी हो सकती है। अर्थशास्त्रियों का मानना है कि यदि गरीबी तथा आय की असमानता की समस्या को रोकना है तो बेरोजगारी दूर करना आवश्यक है क्योंकि मानव संसाधनो की माँग तथा पूर्ति में अंतर से बेरोजगारी बढ़ती है।

   भारतीय नियोजक इस तरह से योजना में समन्वय बनाकर रखते हैं। पहला है मौद्रिक या वित्तीय समन्वय जो योजना के खर्च को उठाता है। यदि इसके बीच में समन्वय न हो तो स्फीति तथ भुगतान संतुलन की समस्या उत्पन्न होती है।

7. **साधन प्रेरित तथा प्रबन्धकीय दक्षता** **(Resource Mobilisation and Administrative Efficiency)** - भारतीय योजना दोनों सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में निवेश लक्ष्य को पूरा करने की कोशिश रखती है। निजी क्षेत्रों की पूरी जिम्मेदारी निजी कंधो पर रहती है। ये संस्थान अपनी पूँजी क्षमता को बढ़ाने या बैंक व दूसरी संस्थाओं से ऋण लेते हैं। यहाँ पर राज्य की भूमिका गौण रहती है, क्योंकि यह केवल बचत व निवेश को बढ़ाने के लिए प्रेरित करती है। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सरकार बाहरी व घरेलू क्षेत्रों से धन जुटाती है। कर, सार्वजनिक उधार, बाजार इत्यादि से साधन जुटाए जाते हैं। वर्तमान में विकसित देशों तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों से भी धन उपलब्ध कराया जाता है।

दूसरी योजनाएँ सरकारी मशीनरी द्वारा लागू की जाती है इसलिए प्रबंधकीय दक्षता आवश्यक

है। भारत में प्रबंधन में भ्रष्टाचार और अदक्षता दोनों मौजूद है। कभी-कभी यह नियोजन के उद्देश्य पूरे करने में रुकावट डालते हैं। इसलिए नियोजन प्रक्रिया के लिए आवश्यक है देश में दक्ष प्रबंधन व भ्रष्टाचार का न होना।

## आर्थिक नियोजन के उद्देश्य
## (Objectives of Economic Planning)

देश में आर्थिक नियोजन के दीर्घकालीन उद्देश्य हर प्लान पेपर में दिए गए हैं। विस्त त तौर पर उद्देश्य है जैसे आर्थिक व द्धि (लगभग कुल राष्ट्रीय उत्पादन में प्रतिवर्ष 5 प्रतिशत की व द्धि)। इस प्रकार विभिन्न उद्देश्य दिए गए हैं। लेकिन 1991 में सरकार ने इन उद्देश्यों को रोककर, अपना ध्यान वित्तीय संसाधनो द्वारा विस्तार से आर्थिक स्थिरता का कार्यक्रम लागू करने की तरफ किया। आर्थिक नियोजन के दीर्घकालीन उद्देश्य इस प्रकार हैं।

1. **आर्थिक संव द्धि (Economic Growth)** - भारतीय पंचवर्षीय योजनाओं का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक संव द्धि प्राप्त करना रहा है। यह माना गया है कि आर्थिक संव द्धि से गरीबी तथा असमानता में कमी आएगी। इसके साथ-साथ आर्थिक व द्धि और योजना के दूसरे उद्देश्यों में समन्वय स्थापित नहीं होता। अधिकतर देशों में आर्थिक संव द्धि का फायदा केवल अमीर वर्ग को प्राप्त होता है। लेकिन भारत में आर्थिक संव द्धि बहुत जरूरी है क्योंकि भूतकाल में काफी निरन्तरता रही है।

   (A) **पहला पड़ाव 1951-80 (The Earlier Phase 1951 to 1980)** - भारतीय योजनाओं का सत्र 1951 से शुरू हुआ। पहली पंचवर्षीय योजना 1951 से 1956 तक और इसका लक्ष्य 2.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष राष्ट्रीय आय में व द्धि करना था। इस योजना की उपलब्धि अच्छी रही तथा राष्ट्रीय आय में 3.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष बढ़ोत्तरी दर्ज की गई। हालांकि जनसंख्या में भी 1.9 प्रतिशत प्रतिवर्ष की बढ़ोत्तरी हुई। प्रतिव्यक्ति आय भी 1.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष बढ़ी। दूसरी पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य 4.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष राष्ट्रीय आय में बढ़ोत्तरी करना था। हालांकि पहली पंचवर्षीय तथा दूसरी पंचवर्षीय योजना के उद्देश्यों में अंतर था। इसका ढाँचा महालोनोबिस के मॉडल पर आधारित था जिसने भारी उद्योगों को उच्च प्राथमिकता दी। इस नीति को लागू करने का मतलब सार्वजनिक क्षेत्र को शक्तिशाली बनाना था। यद्यपि वास्तविक व द्धि दर वास्तविक लक्ष्य से थोड़ी कम थी। राष्ट्रीय आय में 3.9 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से व द्धि तथा प्रति व्यक्ति आय में प्रतिवर्ष केवल 1.9 प्रतिशत की व द्धि हुई।

   त तीय पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य 5.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष राष्ट्रीय आय में व द्धि करना था। योजनाकारों का विश्वास था कि निवेश का स्तर बाकी योजनाओं की तरह व द्धि को उच्च प्राथमिकता दी गई। सम्पूर्ण विकास की तर्ज पर दूसरी योजना की तरह इस्पात व द्धि, मशीनी यंत्र और भारी मशीनी उद्योगों को भी महत्ता दी गई। इस योजना में विकास का तरीका भी दूसरी योजना के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय केवल 2.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष ही बढ़ी और प्रतिव्यक्ति आय में केवल 1.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष की व द्धि हुई। आर्थिक व द्धि की दशा में यह असफल रही और अर्थव्यवस्था गहरे पानी में जाकर खड़ी हो गईं। केवल शक्तिशाली नियोजन ही देश को बचा सकता था। यद्यपि, समय की जरूरत को देखते हुए, दीर्घकालीन योजना को तीन साल के लिए आगे बढ़ाना पड़ा और चतुर्थ पंचवर्षीय

योजना 1966 की बजाय 1969 में शुरू हो पाई।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की प्राथमिकता देश को स्थिरता प्रदान करना था। भारतीय अर्थव्यवस्था में दो महत्त्वपूर्ण पहलू कृषि उत्पादन में उतार-चढाव व विदेशी सहायता के बारे में अनिश्चितता से अस्थिरता। इस योजना के अन्तर्गत कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाए गए, साथ-साथ खाद्यान्न पूर्ति के लिए बफर स्टॉक बनाए गए। नियोजन कमीशन ने कीमत स्थिरता पर भी जोर दिया। योजना के लिए साधन जुटाने के बारे में विदेशी निर्भरता को कम किया गया। इन बातों के साथ योजनाकारों ने इस योजना के अन्तर्गत 5-7 प्रतिशत प्रतिवर्ष राष्ट्रीय योजना मे व द्धि का लक्ष्य रखा। लेकिन वास्तव में विकास दर 3.3% प्रतिवर्ष पर अटक कर रह गई। सबसे महत्त्वपूर्ण ऊर्जा तथा यातायात को प्राथमिकता दी गई जिससे व द्धि दर बढ़ने में रुकावट आई।

पाँचवीं-पंचवर्षीय योजना का ड्राफ्ट, सकल घरेलू उत्पाद में 5.5% प्रतिवर्ष की व द्धि करना था। अन्तिम दौर में इस योजना के अन्तर्गत 4.4% प्रतिवर्ष की सकल घरेलू उत्पाद में व द्धि का लक्ष्य रखा जबकि यह पहले 5.5% था। उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उत्पादकता स्तर बढ़ाने के साथ-साथ निवेश बढ़ाने पर भी जोर दिया गया। इस योजना (1974-79) के दौरान सकल घरेलू उत्पाद में 4.8% प्रतिवर्ष की व द्धि हुई जो ठीक थी अथवा जिस पर संतुष्ट हुआ जा सकता था। योजना की बाकी योजनाओं से तुलना की जाए तो यद्यपि यह योजना उद्देश्यों के अनुसार ज्यादा सफल नहीं हुई और 1979-80 मे अर्थव्यवस्था को भारी धक्का लगा और सकल घरेलू उत्पाद गिरकर 5.2 प्रतिशत पर आ गया।

यदि पिछले चार दशकों का अवलोकन किया जाए तो सकल घरेलू उत्पाद में 3.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से व द्धि हुई है।

(B) **बाद का पड़ाव 1981 से 1999 (The Later Phase : 1981 to 1999)** - अन्तिम पड़ाव में तीन योजनाएँ पूरी हुई और सकल घरेलू उत्पाद (GDP) 5.5 प्रतिशत जो 3.4 प्रतिशत व द्धि से ज्यादा था।

छठी पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य 5.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष GDP में व द्धि करना था। इस योजना में विभिन्न पहलुओं पर खासतौर से ध्यान दिया। (i) वर्तमान पूँजी की दक्षता स्तर में सुधार, (ii) निवेश दर में व द्धि, (iii) निवेश दर मे परिवर्तन, (iv) वित्तीय घाटा निश्चित मात्रा तक रखना ताकि विदेशी विनिमय संकट को रोका जा सके। इस योजना के व द्धि लक्ष्य को भी प्राप्त किया गया। यह केवल कृषि क्षेत्र में अच्छी परफॉरमेंस तथा सेवा क्षेत्र में सुधार से संभव हुआ। इस योजना के अंतर्गत कृषि उत्पादन में 4.3% प्रतिवर्ष की व द्धि हुई जबकि लक्ष्य केवल 5.8% प्रति वर्ष था। हालाँकि बचत का स्तर अपना लक्ष्य प्राप्त नही कर सका।

सातवीं पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य GDP में 5.0% प्रति वर्ष व द्धि करना था। पिछले दशक से यह व द्धि दर ज्यादा थी। इस योजना के प्रथम तीन वर्षो में GDP 3.8% प्रति वर्ष की दर से बढ़ा। यद्यपि 1988-89 और 1989-90 के दौरान फसल अच्छी होने से संव द्धि दर एकदम बढ़कर 5.8% प्रतिवर्ष हो गई जबकि लक्ष्य केवल 5.0% प्रति वर्ष था। यदि इस योजना की व द्धि दर अलग-अलग

देखी जाए तो यह दिखाई या महसूस नहीं होता कि व द्धि दर बढ़ी है। क्योंकि सातवीं पंचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष में संव द्धि दर 4.1 प्रतिशत थी। हालांकि दो वर्ष सूखा-पीड़ित रहे जिससे व द्धि दर को धक्का लगा। योजना के चतुर्थ वर्ष में अच्छी कृषि से अंदाजा था कि GDP में 10.5 प्रतिशत की व द्धि होगी। इसी वर्ष कृषि में अधिक उत्पादन से GDP में रिकार्ड तोड़ व द्धि हुई जो 21.0 प्रतिशत थी। यह सिर्फ अच्छी मानसून का ही नतीजा था।

1980 में व द्धि प्रक्रिया का, GDP में व द्धि होने के बाद भी आलोचना की गई। सबसे अहम कारण था वित्तीय घाटा का बढ़ना तथा दूसरा साधनों का सही रूप में प्रयोग न करना।

1990-91 वर्ष की व द्धि दर के हिसाब से बुरा नहीं था लेकिन इस वर्ष में आर्थिक संकट उभरने शुरू हो गए तथा 1991-92 में यह गहराते चले गए। आरम्भ में 1990-91 में GDP में व द्धि दर 5.4 प्रतिशत रिकार्ड की गई लेकिन 1991-92 में यह आर्थिक संकट के कारण स्थिर नहीं रही। इस वर्ष GDP में केवल 0.8 प्रतिशत और कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र ऋणात्मक व द्धि दर 2.8 व 0.1 प्रतिशत दर्ज की गई। आठवी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत GDP में प्रतिवर्ष 5.6 प्रतिशत का लक्ष्य था। इसके विपरीत GDP में इस योजना के अन्तर्गत वर्ष 6.8 प्रतिशत की व द्धि दर्ज हुई। यद्यपि यह व द्धि दर नवीं-पंचवर्षीय योजना के प्रथम दो वर्षो में कायम नहीं रह सकी। 1997-98 में GDP में गिरावट 5.0 प्रतिशत दर्ज की गई जो 1996-97 में 7.5 प्रतिशत था। अर्थव्यवस्था ने 1998-99 में आँकलन के हिसाब से 6.8 प्रतिशत की व द्धि वापिस प्राप्त की।

2. **आत्म निर्भरता (Self -Reliance)** - लगभग पाँच दशक पहले, पहली पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारत विदेशों पर निर्भर था। कारण था कृषि प्रधान देश होते हुए भी कृषि क्षेत्र खाद्यान्न वस्तुओं की पूर्ति नहीं कर पाया। नतीजा यह हुआ कि खाद्यान्न के लिए अमरीका आदि देशों पर निर्भर होना पड़ा। आधारभूत उद्योगों का न होना, यातायात, मशीनी औजार, बिजली, प्लांट आदि न होने पर भी दूसरे देशों पर निर्भर होना पड़ा। विकसित देश, विकासशील देशों के साथ जरूरत की वस्तुओं की पूर्ति करते समय अपनी मोलभाव शाक्ति का पूर्ण प्रयोग करके अपनी वस्तुओं की अधिक कीमत लेते हैं। प्रायः आवश्यक वस्तुओं की अधिक कीमत लेते हैं। प्रायः आवश्यक वस्तुओं का निर्यात करने के लिए ये देश विकासशील देशों को ब्लैकमेल करने के लिए राजनैतिक हथियार की तरह प्रयोग करते हैं। इसलिए यदि गरीब देश अपने आपको दूसरे देशों के राजनैतिक दबाब से बचना चाहते हैं तो उन्हें खाद्यान्न व पूँजी साधनों में आत्मनिर्भर होने के सिवाय कोई चारा नही है। दूसरे देशों और दूसरे संस्थान जैसे IMF और विश्व बैंक के ऊपर अपनी निर्भरता कम करनी पड़ेगी।

इसलिए भारत में नियोजन के अन्तर्गत आत्मनिर्भर होने का उद्देश्य अपनाया गया। पहली दो पंचवर्षीय योजनओं में आत्मनिर्भरता के ऊपर कोई ध्यान नहीं दिया गया। सबसे पहले तीसरी पंचवर्षीय योजना में आत्मनिर्भरता को अहम स्थान दिया गया। यद्यपि आत्मनिर्भरता का अर्थ संकुचित तौर पर लिया गया मतलब आत्मनिर्भरता से अभिप्राय केवल बाहरी सहायता के ऊपर काबू पाना ही लिया गया। सरकार ने विदेशी सहायता की निर्भरता को कम ही नहीं किया, बल्कि कम दर पर PL 480 के तहत अमरीका से खाद्यान्न को आयात करने का भी निर्णय लिया। यद्यपि योजनओं के

अन्तर्गत व द्धि दर बढ़ी है लेकिन फिर भी भुगतान संतुलन की स्थिति काफी खराब हुई है। यद्यपि पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भुगतान संतुलन की समस्या में कुछ सुधार हुआ। इसका मुख्य कारण निर्यात प्रोत्साहन व आयात प्रतिस्थापन था। 1980 में विदेशी क्षेत्र में उदारीकरण से भुगतान संतुलन गड़बड़ा गया और विदेशी मुद्रा भंडार $2.236 मिलियन तक कम हुए। सरकार ने आर्थिक सुधारों को दोबार नए सिरे से शुरू करके अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने की कोशिश की।

अब हम दो बातों पर सहमत हो सकते हैं - देश खाद्यान्न में आत्मनिर्भर है। लौह व इस्पात मे व द्धि, मशीनी औजार, भारी उद्योग आदि ने देश को पूँजी साधनों मे आत्मनिर्भर होने के लिए भी कदम बढ़ाया है। यद्यपि पेट्रोल की अन्तर्राष्ट्रीय कीमत ज्यादा होने पर भी भारत में भुगतान की समस्या पैदा करती है।

3. **बेरोजगारी को खत्म करना (Removal of Unemployment)** - गरीबी को खत्म करने के लिए एक ही उपाय है बेरोजगारी समस्या पर काबू करना। यह महसूस किया गया है कि बेरोजगारी बढ़ने से गरीबी भी बढ़ती हैं। इसलिए पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत बेरोजगारी खत्म करना एक मुख्य उद्देश्य रखा गया और इसे प्राथमिकता दी गई। लेकिन प्रो० अशोक रुद्र का कहना है कि सरकार ने एक ही रोजगार नीति नहीं बनाई। सरकार ने यह भी लक्ष्य निश्चित नहीं किया कि कब यदि कोई व्यक्ति ईमानदारी से काम करना चाहता है तो उसे अवश्य काम मिले। इसी वजह से इतने सालों में भी बेरोजगारी में कमी नहीं आई। यद्यपि नियोजन कमीशन अब महसूस करता है कि बेरोजगारी किसी भी नीति का सीधा लक्ष्य होना चाहिए।

नियोजन कमीशन की पद्धति में अब तक निवेश कार्यक्रमों को बेरोजगारी के प्रश्न को अलग से महसूस नहीं किया। अब तक यह महसूस किया गया कि निवेश बढ़ने से रोजगार में व द्धि होती है। लेकिन निवेश बढ़ने से अपने आप रोजगार में व द्धि नहीं हुई। रोजगार में व द्धि से निवेश में व द्धि करने के साथ, तकनीक का चुनाव भी आवश्यक है। सब जरूरतों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न क्षेत्र, प्रदेश और आर्थिक वर्ग के लिए अलग से रोजगार योजना का निर्माण करना आवश्यक है।

(1) **पूर्ण संख्या में नए कार्यों का पैदा करना (Creation of Fresh Jobs in an Adequate Number)** - आर्थिक नियोजन का पहला पड़ाव दर्शाता है कि सरकार ने नए कामों की संख्या नहीं बढ़ाई। उदाहरण के तौर पर छठीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 12 मिलियन लोग बेरोजगार थे (NSS का 32वाँ चक्र) सातवीं पंचवर्षीय योजना में यह संख्या 13.9 मिलियन थी। यद्यपि यह संख्या कम होने की बजाय बढ़ती गई और अप्रैल 1994 में यह बेरोजगारी का अनुपात 2.03 प्रतिशत व अर्धबेरोजगारी 8.43 प्रतिशत था।

(2) **रोजगार और उत्पादन के बीच समन्वयता की कमी (Lack of Capability between employement and output)** - पहले भी बताया जा चुका है कि योजनाओं का लक्ष्य उत्पादन बढ़ाना था। बेरोजगारी की समस्या, साधारणतया वैसे ही नाम के तौर पर वर्णित की गई। रोजगार का केवल यही उद्देश्य था कि देश में व द्धि होने के साथ-साथ रोजगार में अपने आप व द्धि होगी। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। देशों में सालों से बेरोजगारी व द्धि होना सरकार की पद्धति में कमी को दर्शाता है। प्रो० अरुण घोष ने कहा है कि प्रतिवर्ष 3 प्रतिशत

की दर से रोजगार उपलब्ध होना चाहिए। यह निवेश के स्तर पर ढाँचे को दोबारा बनाना और निश्चित क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाना ताकि उत्पादन प्रक्रिया के साथ रोजगार क्षमता भी बढ़े।

(4) **आय असमानता में कमी (Reduction in Income Inequalities)** - भारतीय आर्थिक नियोजन का उद्देश्य आय की असमानता को कम करना भी रहा है। यद्यपि, इसको कम प्राथमिकता दी गई है। यह इसी बात से अंदाजा लगाया जा सकता है कि नियोजन कमीशन के किसी भी प्रकाशन में आय व धन के वितरण की असमानता के बारे में आँकलन नहीं किया गया। इसका भी मुख्य कारण यही है कि रोजगार बढ़ने तथा आर्थिक व द्धि से अपने आप आय की असमानता कम होगी। छठीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत गरीबी को हटाने की आवश्यकता पर जोर दिया, लेकिन आय की असमानता कम करने पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। योजना प्रपत्र यह मान कर चलते हैं कि वित्तीय नीति, औद्योगिक लाइसेंस, एकाधिकार नियंत्रण के माप आदि से अपने आप आय का असमान वितरण कम होगा। सातवीं योजना की तरह आठवीं योजना में भी आय की असमानता को कम करने का कोई उद्देश्य नहीं रखा।

(5) **आय वितरण पर असफल (Failure on Income Distribution)** - आय की असमानता का पहलू आय के वितरण से सीधा संबंध रखता है। NSS (26वां चक्र) के अनुसार 1971-72 में 5.44 प्रतिशत कृषक परिवारों के पास लगभग 39.43 प्रतिशत कृषि भूमि थी, इसके विपरीत लगभग 40 प्रतिशत लोगों के पास 1.58 प्रतिशत भूमि थी। आय में असमानता का मुख्य कारण भूमि अथवा दूसरे औद्योगिक क्षेत्रों की संपत्ति का असमान बँटवारा है। कृषि मजूदरों के पास कोई भूमि नहीं है इसलिए वह नीचे तबके से संबंधित है। छोटे किसान थोड़ी भूमि की वजह से केवल उतनी ही पैदावार कर पाते हैं जो केवल उनका गुजर-बसर कर सके।

शहरों में एकाधिकार खत्म करने के लिए MRTP Act बनाया गया। लेकिन यह भी अप्रभावी साबित हुआ। दत्त कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि राज्य की उधार नीति छोटे औद्योगिक इकाइयों के प्रति भेदभाव रखती है और एकाधिकार को बढ़ावा देती है।

(6) **गरीबी खत्म करना (Elimination of Poverty)** - आर्थिक नियोजन के उद्देश्य में गरीबी उन्मूलन को अहम स्थान दिया गया है। नियोजन की अधिक अवधि में लगभग आधी जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे रही है जिसको न्यूनतम जीवन निर्वाह का नाम दिया गया है। यद्यपि 1970 तक योजनाकार यही मानते थे कि व द्धि का 'ट्रिकल डाऊन प्रभाव' आनेवाले देशों में गरीबी का उन्मूलन करेगा। छठीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत महसूस किया गया कि गरीबी अब भी अधिक मात्रा में है। 1977-78 में 48.8 लोग गरीबी रेखा से नीचे थी जो घटकर 1987-88 में 29.9 प्रतिशत रह गए। कई अर्थशास्त्रियों ने इस पर प्रश्नचिह्न लगाए हैं कि गरीबी रेखा का माप सही नहीं था जिसे हम भारत में गरीबी के अध्याय में वर्णित कर चुके हैं। आँकड़ों इत्यादि की जानकारी हम वहाँ से प्राप्त कर सकते हैं। विशेषज्ञ ग्रुप पद्धति को अपनाते हुए नियोजन कमीशन ने गरीबी रेखा से नीचे रहनेवालों की संख्या 1992-93 में 40.7 प्रतिशत और 1993-94 में 36.0 प्रतिशत का आँकलन किया है।

(7) **आधुनिकीकरण (Modernisation)** - भारतीय योजनाकारों ने हमेशा देश के विकास

में विज्ञान व तकनीक की भूमिका को महसूस किया है। विज्ञान व तकनीक प्रयोग करने से उत्पादन में व द्धि से आर्थिक संव द्धि को बढ़ावा मिलता है। स्वतन्त्रता के समय देश में तकनीकी ज्ञान की कमी थी। उत्पादन तकनीकें भी पुरानी थी। देश को आयातित तकनीक पर निर्भर रहना पड़ा यद्यपि छठीं पंचवर्षीय योजना तक किसी योजना में आधुनिकीकरण का कोई नाम नहीं था।

पहली बार छठी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत आधुनिकीकरण के उद्देश्य को लिया गया। यद्यपि आधुनिकीकरण का मतलब काफी विस्त त दिया गया है जो इस प्रकार है संस्थागत आविष्कार व प्रगति, तकनीकी उन्नति इत्यादि। गत वर्षों में राष्ट्रीय आय की बनावट में काफी अंतर आया है। निर्मित वस्तुओं, खान आदि का भाग राष्ट्रीय आय में 20 प्रतिशत से 30 प्रतिशत हो गया है। आज के संदर्भ में देश में तकनीकी ज्ञान की काफी क्षमता है जो 1950 में नहीं थी। उदाहरण के तौर पर कृषि व उद्योग क्षेत्र के लिए विकसित बैंक स्थापित किए हैं, क्षेत्रीय बैंकों का आविष्कार और सहकारी समितियों का फैलाव जहाँ इनकी उपलब्धता नहीं थी, इससे देश में संस्थागत साख में काफी परिवर्तन हुआ है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत आधुनिकीकरण के अर्थ को संकुचित कर दिया। अब योजनाकारों का मानना है कि आधुनिकीकरण का अभिप्राय तकनीकी विकास है। कृषि क्षेत्र में नए खाद व बीज, सिंचाई के लिए सिंचाई सुविधाओं में बढ़ोत्तरी, पानी प्रबंधन में सुधार और मशीनीकरण मे व द्धि हुई है। औद्योगिक क्षेत्र में भी तकनीकी बढ़ोत्तरी हुई है - (1) कम्प्यूटर का प्रयोग बढ़ना, (2) नए साधनों का प्रयोग। लेकिन इसके बावजूद आधुनिकीकरण भेदभाव का खतरा है। एक श्रम प्रधान देश में जहाँ श्रम की उपलब्धता ज्यादा है। औद्योगिकीकरण का ज्यादा मशीनीकरण होने से श्रमिकों को अपनी नौकरी जाने का खतरा रहेगा। इसी तरह कृषि क्षेत्र में भी आधुनिकीकरण श्रमिकों के लिए रोजगार के साधन (अवसर) संकुचित होने का भी खतरा है। ऐसी अवस्था में नियोजनकर्त्ता इस बात को मानने से मना करते हैं कि क्या वास्तवरूप में भारत आधुनिकीकरण का लक्ष्य प्राप्त करेगा या गरीबी और बेरोजगारी खत्म करने के। इस बातों के बीच असमंजस स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

इसलिए उद्देश्य प्राप्ति से अथवा उद्देश्य निर्धारण से पहले योजनाकारों को उनसे होनेवाले प्रभावों के बारे मे तत्पर रहना होगा। सही मायने में उनका निवारण का उपाय भी ध्यान में रखना होगा। भारत में नीतियाँ प्रभावीरूप से लागू की जाती है लेकिन देश के विकास में पूँजी की कमी बड़ी रुकावट है।

# अध्याय-6
# विकास के लिए पंचायत और एन०जी०ओ० की भूमिका
# (Role of Panchayats and NGOs for Development)

योजनाओं के अन्तर्गत भारत सरकार ने निचले स्तर (गाँव) का विकास करने के लिए पंचायतों के अधिकारों में बढ़ोत्तरी की है। पंचायत राज संस्थान का मुख्य उद्देश्य पिछड़े वर्ग के लोगों तथा कमजोर वर्ग को शक्ति प्रदान करना था ताकि वह भी फैसलों में अपनी भागीदारी कर सकें। इससे संबंधित संविधान में बदलाव करने से पहले बलवंत राय मेहता कमेटी ने गाँवों में पंचायतों के गठन पर जोर दिया था ताकि गाँव से संबंधित झगड़े या समस्या गाँव स्तर पर ही निपटाई जा सके। लेकिन 1992 में संविधान का पुनर्गठन करके पंचायती राज इंस्टीट्यूशनर्स की स्थापना थी। इसको संविधान की 73वीं व 74वीं संशोधन भी कहते हैं। इसलिए गाँव स्तर पर संरचनात्मक ढाँचे में परिवर्तन करने के लिए पंचायतों को अधिक सुविधाएँ मुहैया कराई गई। इसके अन्तर्गत सशक्तिकरण पर भी जोर दिया गया। सशक्तिकरण को हम तीन भागों में बाँटते हैं- सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक सशक्तिकरण। PRIs का उद्देश्य मुख्यरूप से राजनैतिक सशक्तिकरण था लेकिन इसके साथ-साथ सरकार ने पंचायतों के आर्थिक अधिकारों में भी व द्धि की। विकास की इस सीढ़ी को तीन भागों में बाँटा - (1) गाँव स्तर, (2) ब्लॉक स्तर, (3) जिला स्तर। यद्यपि PRIs का गठन भारतीय इतिहास में एक अहम घटना है। यह इसलिए क्योंकि निचले स्तर पर यह सभी जगह महिलाओं को सीटों का 1/3 भाग पर हिस्सेदारी मिलेगी। इस बदलाव ने महिला के सशक्तिकरण के लिए संघर्ष में एक नया अध्याय जोड़ दिया है। इसके तहत अब गाँव में विकास के लिए खर्च की जिम्मेदारी सरपंच (गाँव के मुखिया) पर निर्भर है। इसके लिए पंचायत को सरकार से धन मुहैया कराया जाता है। इसलिए गाँव, ब्लॉक तथा जिला स्तर पर समन्वय स्थापित करने के लिए सरकार ने शक्ति का विकेन्द्रियकरण कर दिया ताकि गाँव स्तर पर ही लोग अपनी समस्याओं का निपटारा कर सकें।

पंचायतीराज के तहत फंड के प्रयोग की जिम्मेदारी भी पंचायत पर है। यद्यपि पंचायत महसूस करती है कि जो फंड गाँव को दिए जाते हैं वे काफी नहीं हैं। इन संस्थाओं के अन्तर्गत दक्षता बढ़ाने के लिए पंचायत सदस्यों को प्रशिक्षण भी दिया जाता है। विभिन्न ग्रामीण कार्यक्रमों से संबंधित जानकारी भी पंचायत को मुहैया कराई जाती है। ग्रामीण विकास तथा शिक्षा को सुचारू रूप से फैलाने के लिए स्कूलों के प्रबंधन संबंधी अधिकार भी अब पंचायतों के पास है। यद्यपि इसके सामने लोगों की साक्षरता दर कम होना एक विकट समस्या है। कई राज्यों में तो सरकार ने चुनाव लड़ने के लिए देवनागरी लिपि को अनिवार्य किया है।

यद्यपि आर्थिक विकास बढ़ाने के लिए सरकार ने पंचायतों के अधिकारों में व द्धि की है लेकिन फिर भी लालफीताशाही, भ्रष्टाचार प्रबंधकीय कमियों का बोल-बाला अब भी है। साक्षरता की कमी से इन पंचायतों को फंडों की जानकारी की भी कमी रहती है। यद्यपि इनके प्रशिक्षण के लिए सेमिनार तथा प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की है। जोकि गाँव, ब्लॉक व जिला स्तर पर अंतर

अथवा समन्वय की कमी से इनके बीच संचालन की व्यवस्था की कमी है। यदि सरकार इनकी भूमिका को विकास के लिए महत्त्वपूर्ण बनाना चाहती है तो उसे इनकी कार्यप्रणाली का पूर्ण से अवलोकन करना होगा। यह भी देखने की आवश्यकता है कि जो फंड इन्हें प्रदान किए गए है क्या उनका गाँव के विकास के लिए प्रयोग या सदुपयोग किया है। गाँव के अन्दर भी अब भ्रष्टाचार अपनी जड़ें फैला चुका है इसलिए इसको खत्म करने के लिए पंचायतों की कार्यप्रणाली में सुधार करना होगा।

यद्यपि 1992 में संविधान में परिवर्तन एक अहम कदम है। लेकिन यह कदम भविष्य में तभी फलदायी होगा जब पंचायत का योगदान अथवा इसकी भागीदारी विकासात्मक कार्यों में बढ़ेगी। गाँव के स्तर पर ही समस्याओं का निपटारा, ऊँच-नीच का भेदभाव तथा सरपंच को प्रबन्धकर्त्ता की तरह काम करना होगा। तभी पंचायतें विकास में अपनी भूमिका निभा पाएँगी। NGOs (नॉन गवर्नमेंट ऑरगेनाइजेशन) अथवा गैर सरकारी संगठन। ये संगठन स्वतन्त्ररूप से कार्य करते हैं तथा इन पर सरकार का कोई अधिकार नहीं है। यद्यपि सरकार इनकी कार्यप्रणाली पर नजर रखती है। इनका मुख्य उद्देश्य सामाजिक कल्याण तथा पिछड़े क्षेत्रों को ऊपर उठाना है। ये प्रोजेक्ट के तहत गाँव में केन्द्र स्थापित करके स्वयं रोजगार के लिए लोगों को प्रोत्साहित करते हैं। NGOs सामाजिक कल्याण तथा आर्थिक कल्याण पर विशेष जोर देते हैं। सामाजिक कल्याण में - बच्चों, महिलाओं की पौष्टिकता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। ये NGOs महिलाओं की शिक्षा पर भी विशेष ध्यान देते हैं। लोगों को स्वावलम्बी बनाने के लिए ये सिलाई, कढ़ाई आदि प्रशिक्षण की व्यवस्था करते हैं। इनकी स्थापना का मुख्य कारण था कि योजनाओं के अन्तर्गत सभी वर्गों की समस्याओं का निवारण नहीं हो पाया। हालांकि योजना के अन्तर्गत ग्रामीण विकास तथा पिछड़े वर्ग के लोगों को ऊपर उठाने के लिए लक्ष्य रखा गया। लेकिन बढ़ती जनसंख्या, गरीबी, बेकारी तथा अकाल जैसी समस्याओं से निपटने के लिए सरकार पूरी तरह से इनकी (गरीबों) समस्याओं को कम नहीं कर पाई। इन सब बातों को ध्यान में रखकर यह महसूस किया गया कि एक ऐसी संख्या की स्थापना की जाए जो स्वतन्त्र रूप से अथवा किसी के दबाव में न काम करके सामाजिक कल्याण की तरफ विशेषरूप से ध्यान दे। ये इस तरह की संस्थाएँ अमीर, गरीब तथा पिछडे वर्ग के बीच भेदभाव की स्थिति नहीं रखती। यदि NGOs की उपलब्धियाँ देखें तो पिछड़े क्षेत्रों, अकाल ग्रसित प्रदेशों तथा स्वयं रोजगार प्रणाली के लिए इन्होंने काफी काम किया है।

# इकाई-2

# अध्याय-7
# भूमि सुधार
# (Land Reforms)

स्वतन्त्रता से पहले कृषि की दशा अच्छी नहीं थी। स्वतन्त्रता के समय तीन तरह का भूमि प्रबन्ध तरीका था। जमींदारी प्रथा, महलवारी प्रथा तथा रोयटवारी प्रथा। जमींदारी प्रथा के अन्तर्गत जमींदार द्वारा किसानों से भूमि कर इकट्ठा किया जाता था। इसलिए जमींदार किसानों और राज्य के बीच मध्यस्थ का काम करते थे। सरकार का कुल आय में हिस्सा, जो जमींदारों द्वारा इकट्ठा किया जाता था उसका 10/11वाँ हिस्सा सरकार के पास तथा बाकी जमींदार को दिया जाता था जिससे वह अपना गुजर-बसर करता था। स्वतन्त्रता के समय यह वैस्ट बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश व मध्य प्रदेश में लागू था।

इस जमींदारी प्रथा से किसानों का बहुत शोषण हुआ, क्योंकि जमींदारों को असीमित अधिकार दे दिए गए थे। गैर-तरीके द्वारा भूमि कर का इकट्ठा करना भी एक कारण था। भवानी सेन के अनुसार लगभग उत्पादन का 25 प्रतिशत हिस्सा भूमि कर के रूप में इकट्ठा किया जाता था।

महलवारी के अन्तर्गत सम्पूर्ण गाँव को एक यूनिट में रखा गया तथा कर इकट्ठा करना गाँव के मुखिया की जिम्मेदारी थी। रेतवारी के अन्तर्गत कोई मध्यस्थ नहीं था। कर देना प्रत्येक की अपनी जिम्मेदारी थी यह अधिकार जमींदारी प्रथा के अन्तर्गत नहीं था।

## भूमि सुधार के उद्देश्य
## (Objectives of Land Reforms)

जैसा ऊपर कहा गया है जमींदारी प्रथा के तहत किसानों का शोषण हुआ है। इसकी वजह से एक नया वर्ग जमींदार पनप गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भूमि सुधार लागू करने के लिए आवश्यक था कि भूमि की तथा कृषक की स्थिति में सुधार किया जाए, तथा किसानों के शोषण को रोका जाए। इसलिए भूमि सुधार प्रक्रिया लागू की गई जिसका उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. जमींदारी प्रथा खत्म करना।
2. काश्तकार सुधार।
3. कृषि का दोबारा संगठित करना।

काश्तकार सुधार में-

1. लगान को नियमित करना।
2. काश्तकार की सुरक्षा।
3. काश्तकार को मालिकाना हक।

इसके साथ कृषि को सुसंगठित करने के लिए विभिन्न तरीके अपनाए गए-

i. भूमि का द्विवितरण।

ii. भूमि अथवा जोतों की चकबन्दी।

iii. सहकारी खेती।

## मध्यस्थों को खत्म करना
## (Abolition of Intermediaries)

यद्यपि स्वतंत्रता से पहले भी यह महसूस किया गया था कि कृषि में सतत्ता का मुख्य कारण कृषकों का शोषण होने से संबंध रखता है। सबसे मुख्य कारण जमींदारी प्रथा का होना था इसलिए महसूस किया गया कि भूमि सुधार नीति को लागू किया जाए।

लगभग भूमि का 57 प्रतिशत हिस्सा जमींदारी प्रथा के अन्तर्गत था। कुछ राज्यों में 1951 में ही इस तरीके को खत्म करने के लिए कानून बना दिया गया। कुछ राज्यों जैसे बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश इत्यादि में संभव था क्योंकि भूमि का रिकार्ड उपलब्ध था लेकिन यहाँ भूमि रिकार्ड उपलब्ध नहीं था। कारण यह था कि मध्यस्थों की पहचान कैसे की जाए। इसलिए पहली पंचवर्षीय योजना में देश के छोटे हिस्से को लेकर इस प्रथा को खत्म करने की पहल की। यह भी अंदाजा लगाया गया कि 173 एकड़ भूमि मध्यस्थों से वापिस ली जाएगी तथा लगभग 2 करोड़ काश्तकारों का राज्य के साथ सीधा संबंध स्थापित किया जाएगा।

आखिरकार काफी जद्दोजहद के बाद तथा लंबे विचार-विमर्श के साथ जमींदारी प्रथा को खत्म करने संबंधी बिल पास किया गया। तथा कानून को पास करने में लगभग साढ़े चार साल लगे। सरकार ने पहली पंचवर्षीय योजना खत्म होने से पहले बहुत से राज्यों ने इस प्रथा को खत्म करने के लिए एक्ट बना लिया। एक बार जब संविधान की स्टेज पूरी हुई तो जमींदारों ने इस कानून के प्रति आवाज उठानी शुरू कर दी क्योंकि उन्हें अपने अधिकार छिनने का डर था जिसकी वजह से उन्होंने किसानों का शोषण करके अपार भूमि अर्जित कर ली थी। इसकी वजह से सरकार तथा जमींदारों के बीच युद्ध शुरू हो गया। जब जमींदारों ने देखा कि वे इस युद्ध में हार रहे हैं तो उन्होंने भूमि से संबंधित रिकॉर्ड व कागजात देने में देरी करनी आरम्भ कर दी।

इस देरी के साथ-साथ जमींदारी कानून में भी बहुत कमियाँ थी। शायद सबसे बड़ी कमी थी स्वयं जोत के लिए भूमि लेने की अनुमति। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए जमींदारों ने काश्तकारों को जमीन से बाहर करना आरम्भ कर दिया। स्वयं जोत भूमि का अभिप्राय तथा अपने तथा अपने परिवार के पास जमीन रखने की अनुमति यदि वे स्वयं खेती करते हैं। पहली पंचवर्षीय योजना में जमींदारी कानून के प्रति यह नीति बनाईं गई थी कि वे सीमा से निर्धारित अथवा जमीन रखने की जो सीमा थी उतनी जमीन अपने पास रख सकते हैं। इसलिए दूसरी पंचवर्षीय योजना में सभी राज्यों में एक जैसी प्रक्रिया लागू करने के लिए स्वयं जोत की परिभाषा में बदलाव लाया गया। इसके अन्तर्गत तीन चीजें शामिल की गई-(i) जोत का खतरा, (ii) स्वयं देखभाल तथा (iii) श्रम।

सरकारी रिकॉर्ड बताता है कि जमींदारी प्रथा को पूर्णरूप से खत्म कर दिया है। लेकिन इसका सिर्फ स्वरूप बदला है। पहले जमींदार श्रम को किराए पर लेकर खेती करते थे और अधिकतर हिस्सा अपने प्रयोग के लिए रखते थे। लेकिन अब वे बड़े भूमिदार बन गए हैं और इसके साथ-साथ अमीर किसानों के साथ एक नई क्लास (वर्ग) उभरकर आया है जिससे ग्रामीण पूँजीवाद का नाम दिया गया है। कुछ राज्यों में भूमि सीमा इतनी अधिक है कि जमींदारी प्रथा

अथवा जमींदार उसकी पहुँच से बाहर है। उदाहरण के तौर पर डेनियल थोरनर ने पाया कि बिहार में भूमि सुधार के बाद भी 500, 700 तथा 1000 एकड़ की एस्टेट हैं।

इन सबके बावजूद भी, यह भी नहीं नकारा जा सकता कि काश्तकारों के शोषण में कमी आई है तथा ग्रामीण जमींदार वर्ग में कमी आई है। अधिकतर फसल बटाई (Share Cropper) को जमीन खरीदने का अधिकार मिला है। जमींदारों का 10 एकड़ से अधिक स्वयं के जोत के लिए भूमि रखने पर मनाही की गई है। सीमा से अधिक भूमि को लेकर किसानों के बीच बाँटा गया है। भूमि के लिए अथवा उस पर काम करनेवाले फसल बटाई लोगों के लिए अपनी भूमि को सुरक्षित रखने का अधिकार दिया गया है।

## काश्तकारी सुधार
## (Tenancy Reforms)

काश्तकारों को विभिन्न भागों में बाँटा गया है। (i) व्यवसायिक काश्तकार, (ii) स्वेच्छा काश्तकार, (iii) सब-काश्तकार। व्यवसायिक काश्तकार भूमि के लिए मालिकाना हक का अधिकार रखते हैं तथा उन्हें अपनी भूमि को खाली देते हैं। यद्यपि स्वेच्छा काश्तकार तथा सब-काश्तकार भूमि के लिए मालिकाना हक का अधिकार रखते हैं तथा उन्हें अपनी भूमि को खाली करने का कोई खतरा नहीं है और वे समय पर लगान (कर) देते हैं। यद्यपि स्वेच्छा काश्तकार तथा सब-काश्तकार की स्थिति अलग है। वे जमींदारो या भूमिदारों की दया का पात्र रहते हैं इससे उनका शोषण भी होता है। इसी प्रकार इन लोगों (काश्तकारों) के शोषण को रोकने के लिए कानून बनाया गया। NSS द्वारा (आठवाँ चक्र) किए गए आँकड़ों में पाया गया कि 1953-54 में लगभग 20 प्रतिशत भूमि इस प्रथा के तहत थी।

मध्यप्रदेश में 6.7 प्रतिशत, से 27 प्रतिशत पंजाब में प्रो० के०एन० राज के तहत लगभग 50 प्रतिशत भूमि किसी-न-किसी काश्तकार तरीके के अन्तर्गत आती है।

काश्तकारी सुधार के अन्तर्गत तीन तरह के माप लिए गए - (i) कर नियमित करना, (ii) काश्तकारों की सुरक्षा, (iii) काश्तकारों को मालिकाना हक।

### कर नियमत करना
### (Regulation for Rent)

स्वतंत्रता से पहले कोई खासकर सीमा नहीं थी। जमींदार मनचाहे रूप से कर इकट्ठा करते थे। ब्रिटिश सरकार अपने हिस्से में ही रूची रखती थी और उन्होंने जमींदारों को अपार हक प्रदान किए थे। प्रो० ब ज नारायन के आंकलन के अनुसार उत्पाद का 80 प्रतिशत से भी अधिक भाग कर के रूप में जमींदारों द्वारा इकट्ठा किया जाता था। बम्बई में 40 से 60 प्रतिशत के बीच था।

इस ऊँचे शोषण ने काश्तकारों की स्थिति को दयनीय बना दिया और वे अपनी जरूरतों भी पूरी नहीं कर पाते थे। इसलिए 1947 के बाद कर की सीमा निर्धारित करने के लिए तथा काश्तकारों का भार कम करने के लिए कानून बनाया गया। पहली पंचवर्षीय योजना में दिया गया कि कर उत्पाद का 1/4 या 1/5 हिस्से से ज्यादा नहीं होगा और यह सभी राज्यों मे लागू होगा। इसमें हरियाणा, पंजाब, जम्मू-कश्मीर, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश का आंध्र क्षेत्र शामिल नहीं किया गया। हरियाणा तथा पंजाब मे उत्पाद का 1/3 हिस्सा कर के रूप में, तमिलनाडु, सकल उत्पाद का 40 प्रतिशत सिंचाईवाली भूमि के लिए, 35 प्रतिशत जहाँ लिफ्ट सिंचाईवाली भूमि के लिए, 30 प्रतिशत और जहाँ सिंचाई व्यवस्था नहीं है वहाँ उत्पाद का 25 प्रतिशत भाग कर के रूप में

निश्चित किया गया। यद्यपि न्यूनतम सीमा निर्धारण के लिए बनाए गए कानूनों का उल्लंघन हुआ। क्योंकि सामाजिक-आर्थिक तथा राजनैतिक स्थिति अच्छी होने की वजह से ये भूमि-मालिक किसानों से अधिक मात्रा में कर लेते थे उदाहरण के तौर पर बिहार में अधिकतम सीमा कुल उत्पाद का 25 प्रतिशत है बल्कि बँटाई पर लगभग 50 प्रतिशत भाग काश्तकारों से लिया जाता है। इसी तरह के उदाहरण दूसरी जगह (राज्यों) में भी देखने को मिलते हैं।

## काश्तकार की सुरक्षा
## (Security of Tenure)

भूमि से बेदखल तथा काश्तकारों को नियमित मालिकाना हक प्रदान करने के लिए, अधिकतर राज्यों में कानून बनाया गया। जिसके अन्तर्गत बहुत अधिकार प्रदान किए गए। (i) सिर्फ स्वयं खेती के लिए ही काश्तकार से भूमि ली जा सकती है, (iii) जमीन वापिस लेने की सूरत में कुछ हिस्सा काश्तकार के पास छोड़ा जाएगा।

यद्यपि इन सबके बावजूद यह मुश्किल था कि काश्तकार को किस प्रकार परिभाषित किया जाए। भूमि रिकॉर्डों की क्या स्थिति है, स्वयं जोत के लिए भूमि रखने की क्या परिभाषा है। इस तरह के सवाल उभरकर आने लगे।

सभी काश्तकारी नियमों के अन्तर्गत यदि किसान किसी की भूमि को बँटाई या नकद देकर उसके बदले भूमि का प्रयोग करता है तो उसे काश्तकार कहते हैं। यद्यपि कुछ राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश। वेस्ट बंगाल में बँटाई पर जमीन जोतनेवालों को काश्तकार की श्रेणी में नहीं रखा गया। इसी प्रकार स्वयं जोत की स्थिति भी कुछ राज्यों में अलग है।

इन सब कमियों के बावजूद भी दूसरी सबसे बड़ी समस्या भूमि मालिकों ने जबरदस्ती काश्तकारों को अपने-आप जमीन वापिस करने की दबाव डालना आरम्भ कर दिया। ऐसी स्थिति में कोई भी कानून काश्तकारों की मदद नहीं कर सकता। इसलिए चतुर्थ-पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत अपने-आप जमीन वापिस करनेवाला कानून सभी राज्यों द्वारा लागू करना चाहिए तभी इस स्थिति में काश्तकारों को जमीन वापिस करने पर बचाया जा सकता है। अधिकतर जगह भूमि रिकॉर्डों का उपलब्ध न होना भी मुख्य कारण था कि यह कानून पूर्ण रूप से काश्तकारों को फायदा नहीं पहुँचा पाया।

काश्तकारों की सुरक्षा से संबंधित कानून तभी प्रभावी हो सकते हैं। यदि भूमि रिकॉर्डों का पूर्ण रूप से होना हो। एक आदमी तभी काश्तकार होने का दावा कर सकता है जब रिकॉर्ड में उसका नाम काश्तकार के रूप में दर्ज हो। यद्यपि अधिकतर राज्यों जैसे हरियाणा, गुजरात, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश में हर साल रिकॉर्ड को दुरुस्त किया जाता है फिर भी काश्तकार अपना नाम दर्ज करवाने में रुचि नहीं रखते। सातवीं-पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भी रिकॉर्ड को दुरुस्त या सही रूप से रखने के लिए योजना बनाई गई है।

## काश्तकारों का मालिकाना हक
## (Owership Rights of Tenants)

यह भी योजना के अन्तर्गत लिया गया है कि काश्तकारों को मालिकाना हक प्रदान किए जाएं। इसके अन्तर्गत जो काश्तकार भूमि जोतते हैं उनको मालिकाना हक प्रदान हो। इसके अन्तर्गत कुछ राज्यों ने मालिकाना हक के लिए कानून भी बनाए हैं। हालांकि कुछ राज्य इस कानून को नहीं मानते हैं। केरल में 24 लाख काश्तकारों की मालिकाना हक के लिए निवेदन स्वीकार किए जा चुके हैं। छठीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सभी राज्यों में काश्तकारों के मालिकाना हक

के लिए काननू बनाए गए हैं।

इसके बावजूद बहुत से काश्तकार जमीन खरीदने के लिए पैसे का प्रबंध नहीं कर सकते जो जमीन खरीदने के लिए इच्छुक नहीं होते। जमीन खरीदने के काश्तकारों की अनिच्छा के पीछे भी भूमि-मालिकों का दबाव नजर आता है। अधिकतर मामलों में भूमि-मालिक काश्तकारों को जमीन न खरीदने के लिए अनिच्छा जाहिर करने पर दबाव डालते हैं।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सरकार द्वारा इस तरह की समस्या का निदान करने के लिए इनका पुनर्निरीक्षण किया गया। लेकिन फिर भी अपने आप काश्तकारों द्वारा जमीन वापिस करने की प्रक्रिया चालू है।

## कृषि जोतों की सीमा
## (Ceilings of Agriculatural Tholding)

जोतों की सीमा का अभिप्राय है भूमि की मात्रा को निश्चित करना। 1972 के अन्तर्गत सभी मुख्यमंत्रियों का सम्मेलन हुआ जिसमें इस तरह के मुद्दों पर विचार हुआ। इसके अन्तर्गत नई नीति बनाई गई-

i. सिंचाईवाली भूमि की सीमा 18 एकड़ तथा बगैर सिंचाई की 54 एकड़।

ii. परिवार के केवल पाँच सदस्यों तक को परिवार का दर्जा दिया गया।

iii. कुछ को इससे मुक्त किया गया।

iv. बेनामी जमीन को अयोग्य घोषित करने के लिए अथवा खत्म करने के लिए कानून बनाना।

इन सबके बावजूद गोऊ और उत्तर-पश्चिम का हिस्सा छोड़कर सभी राज्यों में यह नीति लागू की गई। सितम्बर 1998 तक 304 मिलियन हेक्टेयर भूमि सरप्लस घोषित की गई तथा इसका 2.15 मिलियन हेक्टेयर 5.54 मिलियन लोगों में बाँटा गया। लेकिन ये जो जमीन बाँटी गई है इसमें अधिकतर भूमि बंजर है तथा इसकी उपयोगिता भी कम है। इसके लिए जिनको यह दी गई है, अधिक मात्रा में सुधार के लिए, निवेश की आवश्यकता है तभी यह जोतने लायक हो सकती है। यद्यपि इनको सरकार द्वारा सहायता दी गई है फिर भी इन्हें काफी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

नवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इस संदर्भ में नई समस्या उभरकर आई है। उदारीकरण के दौर में सरकार ने कारखानों इत्यादि के लिए, सरकार से अनुमति लेने के बाद, सीमा निर्धारण में किसानों को छूट दे दी है। यह कुछ राज्यों में किया है जैसे कर्नाटका प्रमुख है। इस तरह का कदम निश्चित तौर पर गरीबों के विरुद्ध जाएगा जिनको जमीन की अहम् आवश्यकता है।

### सीमा के लिए तर्क
### (The Case of Ceilings)

1. **सामाजिक संदर्भ (The Social Rationale)** - सीमा निर्धारण करते समय यह सवाल भी उभरकर आता है कि कमजोर अर्थव्यवस्था में जहाँ भूमि की पूर्ति सीमित है ऐसी अवस्था जमीन का बड़ा हिस्सा यदि छोटे किसानों के हाथ में दे दिया जाए और इन हाथों की संख्या बहुत ज्यादा है, ऐसी अवस्था में सभी को जमीन देना संभव

नहीं है। यदि कुछ ही लोगों को जमीन मिले तो बाकि लोग जो कृषि मजदूर अथवा गैर-कृषि मजदूर हैं उनको भूमि न मिलने पर अन्याय होगा। अधिकतर लोग ऐसे भूमि मालिक हैं जो अपने आप न जोतकर दूसरे लोगों जैसे भूमिहीन तथा छोटे किसानों को भूमि जोतने के लिए देते हैं। इसलिए सामाजिक असमानता तथा शोषण को तब तक भी खत्म नहीं किया जा सकता जब तक बड़े किसानों से जमीन लेकर छोटे किसानों के हाथ में न दी जाए। क्योंकि आधारभूत उद्देश्य यही था कि अधिक मात्रा में जो भूमि जमींदारों के पास है उसे वापिस लिया जाए।

2. **गरीबों की स्थिति में सुधार (Improving the Position of Poor)** - वितरण के समय गरीबों को भूमि मिलने से उनकी आय में व द्धि होगी तथा वे गरीबी रेखा से ऊपर उठेंगे। प्रो० आर० सिन्हा का अध्ययन बताता है कि वितरण के बाद ग्रामीण गरीब की आय में कमी हुई है। यह इस बात का प्रतीक है कि भूमि वितरण से ग्रामीण की स्थिति में वैधानिक सुधार हुआ है।

3. **सहकारिता की शक्ति (The Spirit of Co-operation)** - अधिक भूमि का अधिग्रहण करने के बाद यदि भूमिहीनों में बांटा जाए तो वे भूमि प्रबंधन तथा सहकारिता के लिए प्रेरित होंगे। यह अभ्यास उन्हें इकट्ठा खेती करने की भावना पैदा करेगा और नई तकनीकों को सीखने तथा बड़ी खेती के लिए भी प्रेरित करेगा।

4. **सीमा के विरूद्ध तर्क (Case Aginst Ceilings)** - सीमा निर्धारण के संदर्भ में जो तर्क दिए गए हैं उसके विरुद्ध तर्क केवल मनोवैज्ञानिक द ष्टि दर्शाते हैं ये वास्तविकता से बिल्कुल दूर हैं। इनका कहना है कि भूमि वितरण से बड़े खेत छोटे खेतों मे तबदील हो जाएंगे जिससे खेतों की आर्थिक योग्यता प्रभावित होगी। उत्पाद व द्धि व रोजगार धीरे हो सकते हैं जिससे दीर्घकाल बचत व निवेश में कमी क्योंकि बड़े किसानों की अपेक्षा छोटे किसान अपनी आय का अधिक भाग उपभोग करते हैं। लेकिन प्रो० हनुमंता राव का मानना है कि भूमि वितरण से यह भी संभव है कि गरीब वर्ग का हिस्सा बढ़े जो भूमि वितरण से पहले नहीं था। इससे उनका उपभोग बढ़ने से कुशलता बढ़े और इससे पूँजी उत्पाद अनुपात में भी व द्धि हो सकती है। इसलिए बचत की कमी पूँजी उत्पाद अनुपात में सुधार से पूरी की जा सकती है। इसलिए उत्पादन में तेजी से व द्धि हो सकती है। इस प्रक्रिया से लगता है कि विकास का फल गरीब को भी मिलने की संभावना है।

## जोतों की चकबन्दी
## (Consoledation of Holding)

इस पद्धति के द्वारा जोतों के छोटे आकार की समस्या का निवारण करना था। चकबन्दी का अभिप्रायः किसानों में बिखरी हुई जमीन को एक जगह इकट्ठा करना था। पहले यह कार्यक्रम लोगों द्वारा अपने आप ही अपनाया गया लेकिन इसकी गति धीमी थी। भूमि का केवल 60.2 मिलियन हैक्टेयर ही इसके अन्तर्गत आया। हरियाणा, पंजाब तथा महाराष्ट्र जैसे राज्यों में चकबन्दी की रफ्तार तेज थी। पहले केवल 15 राज्यों मे ही चकबन्दी का कानून लागू किया गया। तमिलनाडु, पांडिचेरी तथा आंध्र प्रदेश के कुछ हिस्से से इस काननू को लागू नहीं किया गया।

यद्यपि भूमि के जोतों के आकार को छोटा होने से रोकने के लिए यह एक प्रभावी कदम है। लेकिन इसको रोक पाना तभी संभव है जब इसके लिए कड़े कानून बनाए जाएं तथा भविष्य

में छोटे होते हुए जोतों के आकार को रोका जाए। इसके लिए सरकार ने कानून पास किया है जिसके तहत् न्यूनतम सीमा निर्धारित करके भूमि के आकार को कुछ विभिन्न स्तर पर इकट्ठा किया जा सके।

लेकिन इसके बावजूद भी चकबन्दी देश के कुछ भागों में ही संपन्न हो पाई गई है जो कुल क्षेत्र का केवल 1/3 भाग है। इसका मुख्य कारण -

(i) मिट्टी की गुणवत्ता का अलग-अलग जगह अलग-अलग होना।

(ii) दूसरा किसान मानवीय तौर पर जमीन से जुड़े हुए हैं इसलिए चकबन्दी अधिकारी से सहयोग नहीं करते।

(iii) अधिकतर राज्यो में पहले ही भूमि-सुधार कार्यक्रम चलाए गए हैं इसलिए चकबन्दी पर विस्थापित करना उनके लिए मुश्किल है।

(iv) बहुत से राज्यों में सम्पूर्ण भूमि रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं है।

(v) काफी राज्यों में इस कार्यक्रम के लिए विशेषज्ञ कर्मचारी उपलब्ध नहीं है।

इन सब कारणों के बावजूद गाँव में यह शिकायत सुनने को आती है कि प्रभावशाली व अमीर व्यक्ति अच्छी पैदावार भूमि को लेने के लिए अपने साधनों का इस्तेमाल करते हैं बल्कि गरीब व कमजोर किसानों के बँटवारे में खराब किस्म की भूमि बँटवारे में आती है।

## सहकारी खेती
## (Co-operative Farming)

सहकारी खेती सुधार कार्यक्रम भी जोतों के छोटे होते हुए आकार की समस्या को रोकने के लिए प्रयोग किया गया था। विचार यह था कि छोटे-छोटे किसान एक-दूसरे से हाथ मिलाकर अपनी भूमि को इकट्ठा करके उसका प्रयोग जोतने के लिए करें, छोटे जोतों पर खेती करने को लाभदायक नहीं माना जाता है। ये केवल किसानों को जीवन-निर्वाह ही प्रदान करती है। यदि ऐसे छोटे व सीमांत किसान अपने साधन, भूमि तथा औजारों को इकट्ठा करके खेती इकट्ठी करे तो वे भी बड़े-पैमाने पर की गई खेती पर लाभ कमा सकते हैं।

सहकारी खेती के द्वारा दूसरा लाभ यह भी है कि किसान खाद्यान्न की मात्रा को इकट्ठा करके बाजार के अन्दर आसानी से पहुँचा सकते हैं। बड़ी सहकारी खेतों से आंकड़े इकट्ठा करना भी आसान है।

इन सबके बावजूद सहकारी-खेती आपसी भाईचारे तथा मेल-जोल को भी बढ़ावा देती है। इसके साथ-साथ सामाजिक, राजनैतिक तथा गाँव के कार्यों में भी सहकारी खेती करने से प्रजातन्त्र विकसित होगा।

लेकिन इस सब फायदों के बावजूद भी यह कार्यक्रम सफल नहीं हो पाया। आपसी भेद-भाव तथा मतभेद की वजह से भी ये सहकारी समिति पनप नहीं पाई। 1969 के अंत तक देश में केवल 8160 समितियाँ थी जिनमें 220,047 सदस्य तथा कुल क्षेत्र 420,0783 हेक्टेयर था जो खेती भूमि का 0.38 प्रतिशत था।

सहकारी समितियों की कार्यप्रणाली में भी कुछ कमियाँ थी। इसके प्रबंधन में कुशल व्यक्तियों का न होना, भ्रष्टाचार संलिप्त होना आदि की वजह से ये समितियाँ बिखर गई और वापस व्यक्तिगत खेती पर आ गई।

# भारत में भूमि सुधारों का मूल्यांकन
# (Evaluation of Land Reforms in India)

हम पहले ही भारत में किए गए सुधारों के बारे में बता चुके हैं। पहले भी भूमि सुधार की खामियों का वर्णन किया गया है लेकिन हम यहाँ इनको इकट्ठा करके बता रहे हैं जो इस प्रकार है- (i) **कानून में खामियाँ** (Snags in legislation), (ii) **राजनैतिक इच्छा की कमी** (Lack of poltical will), (iii) **अफसरशाही की मार** (Adathy of Beauracy)।

## कानून में खामियाँ
## (Snags in Legislation)

1. **स्वयं खेती करने की परिभाषा (Defination of Personal Cultivation)** - जमींदारी खत्म करनेवाले कानून में स्वयं खेती करने की परिभाषा में काफी कमियाँ हैं। स्वयं जोत का अभिप्राय स्वयं श्रम से है। अथवा क्या वह वास्तव में खेती करता है। अधिकतर राज्यों में स्वयं जोत का अभिप्राय केवल देखभाल से है यद्यपि इससे भूमि-मालिक की भी देखभाल भी आवश्यक नहीं है। बल्कि गाँव में भूमि-मालिक की उपस्थिति भी जरूरी नहीं है। इस तरह की कमियों से काश्तकारों की उपस्थिति भी जरूरी नहीं है। इस तरह की कमियों से काश्तकारों को जमीन से बेदखल होना पड़ा और वे कानून होते हुए भी उसके मालिक नहीं बन पाए।

2. **स्वयं जोत के लिए भूमि अधिग्रहण की सीमा (Limit for Retention of Land for Personal Cultiration)** - स्वयं जोत की परिभाषा में कमी ही नहीं, बल्कि मध्यस्थों को कुछ भाग अपने जोत के लिए रखने की अनुमति भी थी। इससे जमींदार काफी मात्रा में हिस्सा अपने पास रख पात थे। इससे जमींदारी प्रथा से केवल नाम का ही परिवर्तन हुआ है। पहले उन्हें जमींदार कहा जाता था अब उन्हें 'अबसेन्टी लैंडलोरड' का नाम दिया गया है।

3. **परिवार के सदस्यों को भूमि का हस्तांत्रण (Transfer of Land to Family Member)**- भूमि सीमा निर्धारण से बचने के लिए जमींदारों ने काफी मात्रा में भूमि अपनी परिवार के सदस्यों को हस्तान्त्रित कर दी। काफी समय तक, राज्यों में इस संबंध में कोई कानून नहीं था। जिन राज्यों में कानून बने हुए थे। वहाँ स्वयं खेती करने के बारे में अथवा स्वयं खेती प्रयोग से जमींदारों को काफी फायदा हुआ।

4. **काश्तकार की परिभाषा अधूरी (Definition of Tenant Inadequate)** - कुछ राज्यों में फसल बँटाई की वजह से काश्तकारों को काश्तकार का दर्जा प्राप्त नहीं हुआ यद्यपि वे भूमि का कुछ भाग पर खेती करते थे। इसलिए काश्तकार संबंधी कानून इसके अधिकारों के हनन को रोक नहीं पाया। यह भी पाया गया है कि भारत में अधिकतर काश्तकारों का कोई भी रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं है। इस तरह के काश्तकार जो खेती करते उनको साबित करना कि वे काश्तकार हैं मुश्किल है। रिकॉर्ड वास्तविक भूमि मालिक के ही नाम दर्ज है।

5. **सीमा निर्धारित कानूनों का पूर्ण रूप उपलब्ध न होना (Inadquacies of Caling Laws)** - जैसे पहले भी बताया गया है कि सीमा निर्धारित कानून हर एक राज्य में अलग-अलग हैं। यद्यपि एक ही राज्य के विभिन्न भागों में भी अलग-अलग कानून हैं। ऐसी अवस्था मे झगड़े होना आम बात है तथा यह किसानों के लिए परेशानी का

कारण है। सरकार ने 1972 में सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों की बैठक में सभी राज्यों में एक समान कानून बनाने पर जोर दिया गया ताकि इस सुधार को पूर्ण रूप से लागू किया जाए।

## राजनैतिक इच्छा की कमी
## (Lack of Political will)

प्रभावी तौर पर किसी कानून को लागू करने के लिए राजनैतिक इच्छा होना भी आवश्यक है। आँकड़े दर्शाते हैं कि सरकार भूमि सुधारों की प्रक्रिया को लागू करने में कम रुचि रखती थी। राजनैतिक इच्छा की कमी की वजह से साफ दिखाई देता है कि सरकार इसको लागू करने की बजाय केवल सामाजिक व राजनैतिक जामा पहनाना चाहती है। सबसे मुख्य कारण भूमि सुधार कार्यक्रमों से केवल अमीर तथा बड़े किसानों को ही फायदा हुआ है। इसलिए सभी भूमि सुधार कार्यक्रमों को यदि देखा जाए तो इसकी सफलता कम ही दिखाई देती है।

## अफसरशाही की मार
## (Adathy of Beauracy)

राजनैतिक इच्छा की कमी के साथ-साथ अफसरशाही भी भूमि सुधारों पर भारी पड़ी है। यह इस बात से अंदाजा लगाया जा सकता है कि प्रबन्धकीय तौर पर भूमि सुधार कार्यक्रम कमजोर रहे हैं क्योंकि राजनैतिक इच्छा की कमी की वजह से यदि कोई अफसर भूमि सुधार को लागू करने की चेष्टा भी करता था तो उसे एक जगह से बदलकर दूसरी जगह भेज दिया जाता था। महाप्रबंधकों ने भी अपनी सुख सुविधा व एक जगह से दूसरी जगह बदलने से बेचैन के लिए राजनीतिज्ञों से हाथ मिला लिया। साथ-साथ जो भूमि सरप्लस की गई थी उसे हड़पने के लिए इन्होंने राजनीतिज्ञों का साथ दिया।

यद्यपि नियोजन कमीशन के अनुसार भूमि सुधारों को बहुत महत्त्व दिया गया और इसका दोबारा ढाँचा तैयार करने के बारे में भी प्रयत्न किए गए। नवीं-पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भी यह प्रावधान था कि राज्य कृषि उत्पादन तथा रोजगार बढ़ाने में विशेष ध्यान दें। इस योजना के अन्तर्गत विभिन्न पहलुओं पर विशेष ध्यान दिया गया - (i) काश्तकारी प्रथा में सुधार, (ii) सरप्लस भूमि का पता लगाना तथा उसे बाँटना अथवा वितरण करना, (iii) जोतों की चकबंदी, (iv) ट्राइबल भूमि को खत्म होने से रोकना, (v) भूमि वितरण के अन्तर्गत महिलाओं को प्राथमिकता प्रदान करना, (vi) भूमि रिकॉर्डों को दुरुस्त करना, (vii) बेकार पड़ी भूमि का प्रयोग करना। नवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इस बात पर भी दबाव डाला गया कि भूमि रिकॉर्डों को परम्परागत तथा कम्प्यूटर तरीकों द्वारा दुरुस्त किया जाए तथाा इसकी प्रति माँगने पर फीस जमा करवाने के बाद व्यक्ति को दी जाएँ।

# अध्याय-8
# कृषि आगत और हरित क्रान्ति
# (Agricultural Inputs and Green Revolution)

यहाँ हम अपने विचार कृषि आगत से शुरू करेंगे - सिंचाई, खाद, नई किस्म के बीज, और कीटनाशक। इसके बाद हम हरित क्रान्ति के बारे में वर्णन करेंगे जिसने इन कृषि आगतों का प्रयोग किया।

## सिंचाई
## (Irrigation)

कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता पानी की उपलब्धता पर निर्भर करती है। इसलिए सिंचाई की महत्ता है। यद्यपि भारत में सिंचाई सुविधाओं की काफी कमी है। उदाहरण के तौर पर 1950-51 में सकल सिंचाई क्षेत्र जो सकल बिजाई क्षेत्र का 17 प्रतिशत था। सिंचाई प्रोजेक्ट में अधिक मात्रा में निवेश करने के बाद भी 1995-96 में बिजाई क्षेत्र 38.3 प्रतिशत था। अब भी 60 प्रतिशत बिजाई क्षेत्र वर्षा पर निर्भर करता है। इसलिए भारतीय कृषि को मानसून में जुआ कहते हैं।

## सिंचाई की महत्ता
## (Importance of Irrigation)

निम्नलिखित कारण सिंचाई की महत्ता को बताते हैं-

1. **अपर्याप्त, अनिश्चित और अनियमित वर्षा (Insufficient, Uncertain and Irregulation Rains)** - वर्षा का समय वर्ष में केवल 4 महीने रहता है, वह है जून से सितम्बर जब मानसून पहुँचता है। बाकी आठ महीने सूखा रहता है। हालाँकि देश के कुछ हिस्सों में दिसम्बर व जनवरी में वर्षा होती है। कई बार मानसून देरी से आता है तथा कई बार यह पहले ही खत्म हो जाता है। इस वजह से बड़ा भाग सूखाग्रस्त हो जाता है। सही तरीके से सिंचाई सुविधाओं का विकास देश में अनियमित, अनिश्चित और अपर्याप्त वर्षा से होने वाली समस्या को सुलझा सकता है। सिंचाई की सहायता से सूखा तथा अकाल की स्थिति को नियन्त्रित किया जा सकता है।

2. **भूमि पर उच्च उत्पादकता (Higher Productivity on Land)** - सिंचाई भूमि पर गैर-सिंचाई भूमि पर उत्पादकता अधिक होती है। राष्ट्रीय नियोजन ने आंकलन किया है कि सिंचाई भूमि पर उत्पादकता गैर-सिंचाई भूमि की अपेक्षा दोगुनी है। प्रो० बी०डी० धवन का कहना है कि गैर सिंचाई क्षेत्र (9 क्विंटल) की अपेक्षा सिंचाई क्षेत्र (22 क्विंटल) प्रति हेक्टेयर 1983-84 में उत्पादन प्राप्त हुआ। इसलिए यह दिखाता है कि कृषि में उत्पादन तथा उत्पादकता सिंचाई सुविधाएँ बढ़ाकर ही बढ़ाया जा सकता है।

3. **एक से अधिक फसल संभव (Multiple Cropping Possible)** - भारत में अधिकतर वर्षा का समय 4 महीने है इसलिए एक से अधिक फसल उगाना साधारणतया संभव नहीं। सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धि पूरे देश में एक से अधिक फसल उगाने या वर्ष में दो या तीन फसल उगाना संभव है। इससे कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता में व द्धि होगी।

4. **नई कृषि विचार में भूमिका (Role in New Agricultural Strategy)** - ऊँचे उत्पादन देने वाले कार्यक्रम तभी सफल हो सकते हैं जब समय पर पानी की पूर्ति उपलब्ध हो। इस तरह के कार्यक्रम के लिए नियमित पानी की पूर्ति आवश्यक है। यही कारण है उच्च उत्पादन कार्यक्रम सिंचाई क्षेत्र तक ही सीमित रहते है। इसलिए नई तकनीक का फायदा तभी संभव है जब सिंचाई व्यवस्था पूरे देश में प्रदान की जाए।

5. **जोत के अन्तर्गत अधिक भूमि (Bringing more Land under Cultivation)** - आँकड़े बताते हैं कि 1993-94 में कुल (बिजाई) जोत क्षेत्र 304.86 मिलियन हेक्टेयर था। इसमें से 18.97 मिलियन हेक्टेयर भूमि बंजर, 9.7 मिलियन खाली भूमि जो एक साल से खाली पड़ी है। यद्यपि इस भूमि पर खेती करने के लिए निवेश की आवश्यकता है ताकि यह खेती करने के लिए फिट हो सके। लेकिन इस बात से भी नकारा नहीं जा सकता कि यदि सिंचाई की उपलब्ध्यता हो तो इस भूमि का कुछ भाग जोतने के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

6. **उत्पादन स्तर में अस्थिरता में कमी (Reduces Instability in Output Levels)**- 11 राज्यों का अध्ययन बताता है कि 1971 से 1984 के ऑकड़े बताते हैं कि सिंचाई से उत्पादन स्तर में स्थिरता आई है मतलब कभी कम कभी ज्यादा की स्थिति कम हुई है। यही नहीं सिंचाई सूखा के समय कवच का काम करती है। दोनों रोजगार तथा आय उत्पादन से संबंधित है। सुखा के दौरान उत्पादन की गिरावट को रोकना आय तथा रोजगार में स्थिरता प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण पहलू है। सिंचाई से अधिकतर राज्यों को सूखा आंशिक बचाव करने के योग्य बनाया है। उदाहरण के तौर पर 1979-80 वर्ष में सुखे के दौरान सिंचाई क्षेत्र में उत्पादन साधारण स्तर से 6 प्रतिशत गिरा था जबकि सूखा (गैर-सिंचाई) क्षेत्र में 22 प्रतिशत की गिरावट देखने को मिली।

7. **सिंचाई के अप्रत्यक्ष लाभ (Indirect Benefit of Irrigation)** - सिंचाई कृषि बढ़ाकर अप्रत्यक्ष लाभ भी देती है। सिंचाई भूमि पर रोजगार क्षमता में व द्धि, बढ़े उत्पादन से सहायक कार्यों (इकाइयों) में भी व द्धि होती है जैसे जल यातायात के साधन में सुधार तथा कृषि से सरकार की आय में व द्धि आदि। नियमित पानी पूर्ति से किसानों की आय बढ़ेगी जिससे उनमें सुखा तथा कृषि में स्थिरता आएगी।

## सिंचाई विकास के लिए सरकारी नीति
## (Government Policy for Development of Irrigation)

भारत में 1950-51 में योजना के आरम्भ से ही कृषि स्कीम को तीन भागों में बाँटा - बड़े जिसकी लागत प्रत्येक की लागत 5 करोड़; मध्यम जिसकी प्रत्येक की लागत 10 लाख रुपये और 5 करोड़ रुपये के बीच और छोटे जिसकी प्रत्येक की लागत 10 लाख रुपये से कम। 1978 में नया वर्गीकरण किया गया बड़ी स्कीम केवल वहाँ पर होगी जहाँ कलचरलेबल कमॉड एरिया (CCA) 10,000 हेक्टेयर के बीच तथा छोटी स्कीम जहाँ CCA 2,000 हेक्टेयर से कम हो।

सिंचाई व्यवस्था बढ़ाने के लिए अधिक मात्रा में निवेश किया गया। पहली पंचवर्षीय योजना में 455 करोड़ रूपये जो बढ़कर सांतवी पंचवर्षीय योजना में 19,676 करोड़ रूपये हो गया। आठवीं पंचवर्षीय योजना के तहत सिंचाई तथा बाढ़ नियंत्रण के लिए 36,649 करोड़ रुपये खर्च किये। इसलिए बड़े नदी घाटी प्रोजेक्ट जैसे भाखडा नागल प्रोजेक्ट (पंजाब) बीज प्रोजेक्ट (पंजाब व हरियाणा), हिराकुंड डैम प्रोजेक्ट (उड़ीसा), डामोदार वेली कारपोरेशन (बिहार और पश्चिम बंगाल) नागाअर्जुनसागर प्रोजेक्ट (आंध्र प्रदेश और कर्नाटक) आदि।

नई कृषि तकनीक और उच्च किस्म उत्पादकता कार्यक्रमों के लिए सिंचाई सुविधाओं की आवश्यकता है। इस प्रकार सिंचाई व्यवस्था बढ़ाने के लिए सरकार ने रूरल इंफ्रास्ट्रक्यर डवलपमैंट फंड (RIDF) में 2000 करोड़ की लागत से 1995-96 में शुरू किया। 1999-2000 में RIDF-V, 3500 करोड़ की लागत से शुरू किया तथा 2000-01 में RIDF VI की लागत बढ़ाकर 4500 करोड़ की गई। इसके लिए सरकार ने राज्यों को ऋण सुविधा भी प्रदान की ताकि फंड की कमी से प्रोजेक्ट का पूरा करने में दिक्कत न हो। इस प्रकार सरकार ने सिंचाई की व्यवस्था के लिए इस तरह की नीतियाँ तथा कार्यक्रम निर्धारत किए।

## सिंचाई से संबंधित कुछ समस्याएँ
## (Some problems related to Irrigation)

ऊँचे पैमाने पर निवेश तथा सिंचाई सुविधाएँ विस्तार के बावजूद भी कुल फसल क्षेत्र का 64 प्रतिशत आज भी वर्षा पर निर्भर करता है। इसलिए सिंचाई सुविधाओं को बड़े पैमाने पर प्राथमिकता देने की आवश्यकता है। यद्यपि कृषि से संबंधित काफी समस्याएँ हैं जब तक उनका समाधान नहीं होता तब तक इस दिशा में ज्यादा आशा नहीं की जा सकती। आओ देखें वे क्या समस्याएँ है।

1. **क्षमता के प्रयोग तथा पूरा करने में देरी (Delay in completion and utilization potential)** - सबसे बड़ी समस्या है प्रोजेक्ट को पूरा होने में देरी। यदि आँकड़ों का आँकलन करें तो आठवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत टार्गेट 80 बड़े और 253 मध्य सिंचाई प्रोजेक्ट थे जिनमें से केवल 44 बड़े, 100 मध्यम आकार के प्रोजेक्ट ही पूरे हो सके। इसी प्रकार नवीं पंचवर्षीय योजना में भी यही स्थिति रही। अधिकतर प्रोजेक्ट में फिल्ड चैनल और वाटर चैनल बनाने में देरी होती है। इस स्थिति में समय बढ़ने पर लागत व द्धि भी होती है जिससे सरकार को एक ही प्रकार के कार्य के लिए अधिक खर्च करना पड़ता है।

2. **अंतर-राज्य पानी झगड़े (Inter-State water dispute)** - भारत में सिंचाई राज्य का विषय है। इसलिए अपनी जरूरतों और आवश्यकताओं को देखते हुए राज्य योजना बनाता है। यद्यपि सभी नदियाँ एक दूसरे राज्य से जुड़ी हैं इसलिए स्टॉक प्राथमिकता, विभिन्न राज्यों के बीच पानी का प्रयोग आदि से झगड़े रहते हैं। इसलिए उपयोगी समय इस प्रकार के झगड़ों में नष्ट होने से राष्ट्र का नुकसान है।

3. **सिंचाई विकास में क्षेत्रीय असमानता (Regional disparties in irrigation development)** - नवीं पंचवर्षीय योजना का ड्राफ्ट बताता है कि उत्तर पश्चिम क्षेत्र में छोटी, मध्यम तथा बड़ी स्कीम का स्तर केवल 28.6 प्रतिशत है जबकि उत्तर क्षेत्र में यह लगभग 95.3 प्रतिशत है। इसलिए सिंचाई सुविधा विकास में क्षेत्रीय असमानता रहती है। दूसरे क्षेत्र पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम में स्तर 53.2 प्रतिशत, 54.6 प्रतिशत और 40 प्रतिशत है। राष्ट्रीय औसत 64 प्रतिशत है।

4. **पानी इकट्ठा तथा खारापन (Waterlogging and Salirity)** - कुछ राज्यों में सिंचाई सुविधा से पानी के इकट्ठा तथा खारापन की समस्या उत्पन्न हो गई है। 1991 के आंकलन में 24.6 मिलियन हेक्टेयर जमीन पर पानी खड़ा होने की समस्या थी। वर्किंग ग्रुप का आंकलन है कि 3.30 मिलियन हेक्टेयर भूमि खारापन (रेही) आदि से प्रभावित है। यह समस्या उन राज्यों में ज्यादा है जहाँ पानी की परत भूमि में ऊपरी सतह पर है।

5. **सिंचाई की लागत में बढ़ोत्तरी (Increasing Costs of Irrigation)** - सिंचाई प्रदान करने की लागत लगातार बढ़ रही है। आठवीं पंचवर्षीय योजना में यह लागत बढ़कर 2500 करोड़ रुपये हो गई जो पहली पंचवर्षीय योजना में केवल 75 करोड़ रुपये इसका प्रोजेक्ट पूरा करने में देरी तथा एक साथ बहुत अधिक प्रोजेक्ट का आरंभ करना भी है। यह भी देखने को मिला है कि सही सर्वेक्षण की कमी भी इसकी लागत में व द्धि करती है।

   इसके साथ-साथ जो प्रोजेक्ट चलाए जाते हैं उनकी देखभाल में भी लागत ज्यादा आती है तथा इसकी प्राप्ति कम है क्योंकि अधिकतर राज्य किसानों को सिंचाई व्यवस्था पर सब्सिडी आदि प्रदान किए हुए हैं।

   यदि इन सब बातों को ध्यान में रखा जाए तब भी क षि क्षेत्र में उत्पादन सिंचाई व्यवस्था पर ही निर्भर करता है। नवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत इसके सुधार के लिए नई एक्शन प्लान बनाई है जो सिंचाई क्षमता का पूर्ण प्रयोग करेगी।

## खाद
## (Fertilizers)

भारतीय किसान खाद का 1/10 हिस्सा प्रयोग करते हैं जो भूमि उर्वरता को बनाए रखने के लिए काफी है। ठीक प्रयोग से मिट्टी की उत्पादकता बढ़ती है। भारतीय मिट्टी में नाइट्रोजन तथा फासफोरस की कमी है जो खाद के प्रयोग से पूरी की जाती है। भारत में खेती बढ़ाने की समस्या है क्योंकि वह भूमि प्रयोग में लाई गई है। इसलिए क षि वस्तुओं की माँग को पूरा करने के लिए अधिक मात्रा में खाद का प्रयोग करके ही उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में खाद का उत्पादन बहुत तेजी से बढ़ा है। भारतीय क षि में खाद का प्रयोग 1966 में उच्च उत्पादन प्राप्त करने के कार्यक्रम से शुरू हुआ। यह एक पैकेज प्रोग्राम था जिसके अंतर्गत खाद का प्रयोग करने पर बल दिया। अब खाद के प्रयोग के बाद ही एक से अधिक फसलें उगाना संभव है। 1966 में हाई इलडिंग वैराइटी प्रोग्राम (HYVP) शुरू करने से इसके उपभोग में तेजी आई। 1970-71 में इसका उपभोग 21.8 लाख टन था जो 1998-99 में 168 लाख टन हो गया। इस प्रकार उत्पादन में भी तेजी से व द्धि हुई है। 1955-56 में नाइट्रोजन खाद का उत्पादन 80 हजार टन था जो 1998-99 में बढ़कर 10,480 हजार टन हो गया। यद्यपि उत्पादन में व द्धि के बावजूद भारत ने 1995-96 में 3,995 लाख टन खाद का आयात किया जो 1997-98 में भी 3,145 हजार टन था।

योजना कमीशन ने नवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत 20 लाख टन का लक्ष्य रखा था। इस योजना के तहत् 234 मिलियन टन के खाद्यान्न का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए किसानों को बायो फर्टिलाइजर तथा कैमिकल फर्टिलाइजर का प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया।

## उन्नत किस्म के बीज
## (High-Yielding Varieties of Seeds)

नई कृषि नीति के अन्तर्गत, हाई इल्डिंग वैराइटी ऑफ सीड्स (HYV) को प्रयोग करने पर बल दिया। यद्यपि सरकार ने बीजों की गुणवत्ता में सुधार के लिए ध्यान दिया है। लेकिन इसका श्रेय नई कृषि नीति को जाता है। मैक्षिको में, प्रो० नोरमन बोरलेग तथा उसके साथियों ने गेहूं की नई किस्म विकसित की जो पहले पक जाती है, उच्च उत्पादकता तथा जिसमें बिमारी से लड़ने की क्षमता है। 1960 में भारत ने इस किस्म का आयात किया तथा देश के कुछ क्षेत्रों में प्रयोग किया। एक ही साल में फसल में 25 प्रतिशत से 100 प्रतिशत की व द्धि हुई। 1966-67 में फसल में इस नई किस्म के नीचे कृषि क्षेत्र 1.89 मिलियन हेक्टेयर था जो 1971-72 में बढ़कर 18.17 हेक्टेयर हो गया। 1997-98 में यह बढ़कर 76 मिलियन हेक्टेयर हो गया।

यद्यपि HYV Seeds का प्रयोग बढ़ा है लेकिन यह खाद, उपयुक्त पानी पूर्ति, कीटनाशक आदि की उपलब्धता पर निर्भर करता है। इसलिए इसे पैकेज प्रोग्राम के तहत् शुरू किया गया। 1997-98 में कुल क्षेत्र 23.0 मिलियन हेक्टेयर था जिसमें नई किस्म के बीज का प्रयोग किया गया।

भारतीय बीज कार्यक्रम के अन्तर्गत केंद्र तथा राज्य सरकार दोनों शामिल रहती है। इसके साथ राज्य कृषि विश्वविद्यालय, सार्वजनिक क्षेत्र, सहकारी क्षेत्र और निजी क्षेत्र संस्थान भी शामिल हैं। भारत में बीज क्षेत्र दो तरह से कार्य करता है। नेशनल सीड कॉर्पोरेशन (NSC) और स्टेट फारम कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया (SFCI), 13 स्टेट सीड कार्पोरेशन (SSCs) और लगभग 100 बड़े निजी क्षेत्र बीज कंपनी हैं। गुणवत्ता नियंत्रण तथा प्रमाणपत्र के लिए 20 स्टेट सीड सर्टिफिकेट एजेंसीज़ (SSCAs) और 96 स्टेट सीड टेस्टिंग लेबोरेटरी (SSTLs) है। नई बीज नीति (1998) के लागू करने के बाद निजी क्षेत्रों ने भी अहम भूमिका निभानी आरंभ की है। यद्यपि खाद्य फसल व अनाज के लिए संगठित बीज क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा प्रभावित है।

## कीटनाशक
## (Pesticides)

यह भी आंकलन किया गया है कि भारत में कृषि में मौद्रिक हानि बिमारी, कीड़े-मकोड़े और पक्षियों आदि से प्रति वर्ष लगभग 6000 करोड़ का नुकसान होता है। यह बहुत बड़ी हानि है जिसे संरक्षण माप द्वारा रोका जा सकता है। नई कृषि नीति के अपनाने से जोतने की लागत बढ़ी है इसलिए कृषक इस नुकसान को सहन नहीं कर सकता।

पहले कीटनाशक की खपत ज्यादा नहीं थी। पहली पंचवर्षीय योजना के आरंभ में कीटनाशक का उपभोग 100 टन था जो 1995-96 में बढ़कर 73,650 टन हो गया। यह दर्शाता है कि कीटनाशक का प्रयोग बढ़ा है।

लेकिन प्रो० अलघ ने कहा है कि कीटनाशक के प्रयोग से काफी समस्याएँ हैं। पहली कीटनाशक अपने आप में जहरीली है। इसके अनुसार यह बगैर लक्ष्य जीव को भी मारती है जैसे आदमी। इसके साथ कीटनाशक के प्रयोग के लिए वैज्ञानिक पद्धति भी होना आवश्यक है जो हमारे किसानों में इसकी कमी है।

कीटनाशक प्रयोग के लिए तीन कार्य अपनाए गए हैं। कीड़े व बीमारी नियंत्रण जो इंटिग्रेटिड पैस्ट मैनेजमेंट (IPM) स्कीम, दूसरा IPM की ट्रेनिंग व प्रशिक्षण, तीसरा बायो-पैस्टीसाइड का प्रयोग। IPM के प्रयोग के बाद (सब्जी, चावल, कपास) कीटनाशक की खपत में कमी आई है

जो 1990-91 में 82,000 टन थी 1995-96 में घटकर 73,650 टन रह गई।

## हरित क्रांति
## (Green Revolution)

भारत सरकार ने 1960 के मध्य में कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता बढ़ाने के लिए फोर्ड फॉउंडेशन द्वारा नामित विशेषज्ञों की टीम को आमंत्रित किया। यह आवश्यकता इसलिए महसूस हुई क्योंकि एक तरफ तो खाद्यान्न की माँग बढ़ रही थी तथा दूसरी तरफ उत्पादन की मात्रा कम हो रही थी। अप्रैल 1959 में इस टीम ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट ने सलाह दी कि यह देश के चयनित क्षेत्रों में ही शुरू किया जाएँ 1960 में इस कार्यक्रम (फूड क्राइसिस एंड स्टैप्स टू मीट इट) का नाम बदलकर इन्टैंसिव एरिया डवलपमेंट प्रोग्राम (IADP) रखा गया। IADP के अन्तर्गत चयनित जिले में पानी की व्यवस्था भी होना आवश्यक था ताकि नए बीज, खाद आदि का प्रयोग किया जा सके। इस प्रकार 1965 IADP के तहत 114 जिले चयनित किए गए।

कृषि के हिसाब से मध्य 1960 बहुत महत्वपूर्ण था। मैक्सिको नए गेहूँ बीज का अविष्कार हुआ जिसके बारे में हम पहले बता चुके हैं। भारत में 1966 में HYVP कार्यक्रम शुरू हुआ। यह एक पैकेज प्रोग्राम था जो सिंचाई, नए खाद, बीज व कीटनाशक पर आधारित था।

## हरित क्रांति का प्रभाव
## (Impact of Green Revolution)

1966 के बाद खाद्यान्न उत्पादन खासकर गेहूँ में काफी व द्धि हुई। HYVP पर्याप्त सिंचाई सुविधाएँ और विभिन्न आगत पर निर्भर करता है। इसलिए यह तभी स्वीकार्य है जब उस क्षेत्र में ये सब सुविधाएँ जैसे सिंचाई और केवल वही किसान इसको अपना सकते थे जिनमें कृषि आगत खरीदने की क्षमता है। इसलिए नई कृषि पद्धति से अन्तर्राज्य तथा अर्न्तव्यक्तिगत असमानता बढ़ी।

1. **उत्पादन तथा उत्पादकों में व द्धि (Increase in Production and Productivity)**- नई कृषि पद्धति के परिणामस्वरूप खाद्यान्न उत्पाद में 810 मिलियन टन (त तीय पंचवर्षीय योजना) से 118.1 मिलियन टन (पांचवीं पंचवर्षीय योजना), 155 मिलियन टन (सातवीं पंचवर्षीय योजना), 187 मिलियन टन (आठवीं पंचवर्षीय योजना) व द्धि हुई। 1998-99 के अन्तर्गत खाद्यान्न के उत्पादन में 203 मिलियन रिकार्ड तोड़ व द्धि हुई।

   HYVP केवल कुछ फसलों के लिए सीमित था- गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा और मक्का। इसलिए गैर खाद्यान्न वस्तु इस नई पद्धति से बाहर थी। बाकी खाद्यान्नों की अपेक्षा गेहूं में 11.1 मिलियन टन (त तीय योजना) से 29.8 मिलियन टन (पांचवीं योजना), 48.3 मिलियन टन (सातवीं योजना) से 62.9 मिलियन टन (आठवीं योजना) में व द्धि हुई। 1998-99 में गेहूं के उत्पाद में 70.8 मिलियन टन की रिकार्ड तोड़ व द्धि हुई।

   इसी प्रकार चावल में व द्धि गेहूं की अपेक्षा कम हुई लेकिन बाद मे यह भी धीरे-धीरे बढ़ती गई। तीसरी पंचवर्षीय योजना में चावल का औसत उत्पादन 35.1 मिलियन टन था जो घटी योजना में 54.5 मिलियन टन, सातवीं योजना में 65.1 मिलियन टन और आठवीं योजना 78.7 मिलियन टन था। 1998-99 में यह बढ़कर 86.0 मिलियन टन हो गया। लेकिन ज्वार, बाजरा तथा मक्का का उत्पादन स्थिर रहा।

   इसी प्रकार तेल वाले बीज का कुल उत्पादन औसत 8.3 मिलियन टन (चौथी योजना)

और औसत 11.4 मिलियन टन (छठी योजना) रहा। तेल बीज में आत्म निर्भर बनने के लिए सरकार ने नेशनल ऑयल सीड डवलपमेंट प्रोजेक्ट (NODP) 1985-86 में शुरू किया। 1986 में टेक्नोलॉजी मिशन ऑन ऑयलसीड (TMO) शुरू किया और 1987-88 में ऑयलसीडस प्रोडक्शन थरस्ट प्रोजेक्ट (OPTP) शुरू किया। 1989-90 में सरकार ने तेल की थोक कीमत निर्धारित करने के लिए 'प्राइस बैंड' शुरू किया। इस नीति के तहत आयल का उत्पादन बढ़कर 1987-88 में 12.7 मिलियन टन से 1988-89 में 18 मिलियन टन हो गया। 1998-98 में इसके उत्पादन में व द्धि हुई जो बढ़कर 25.2 मिलियन टन हो गया। इसलिए हरित क्रांति के बाद कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता में काफी व द्धि हुई।

2. **क्षेत्रीय असमानता तथा हरित क्रांति (Regional Inequalities and Green Revolution)** - जैसे पहले भी बताया गया है HYVP 1966-67 में केवल 1.89 मिलियन क्षेत्र पर ही आरंभ हुआ। 1997-98 में इसने 76 मिलियन हेक्टेयर भूमि ही कवर की। इसी प्रकार हरित क्रांति का फायदा केवल कुछ ही क्षेत्र को मिला। इसका मुख्य कारण था कि यह एक 'पैकेज प्रोग्राम' था जिसके अन्तर्गत सिंचाई सुविधा के साथ कृषि आगत नये खाद, बीज व कीटनाशक की आवश्यकता थी तथा यह केवल उन्हीं क्षेत्रों में लागू किया गया जहाँ किसानों में इन खाद, बीज को खरीदने की क्षमता थी। इसका ताजा उदाहरण हरियाणा तथा पंजाब है जहाँ काफी राज्यों की अपेक्षा कृषि उत्पादन में अधिक तेजी से व द्धि हुई।

   यदि हरित क्रांति को दो फेजों (स्तरों) के बीच रखकर खाद्यान्न की उपलब्धि देखी जाए तो, दक्षिण तथा पश्चिमी क्षेत्रों में उत्पादन में कमी तथा पूर्वी क्षेत्र में उत्पादन में उच्च सकारात्मक व द्धि देखने को मिली।

3. **अंतर-व्यक्तिगत असमानता (Inter-personal Inequalities)** - यदि अंतर-व्यक्तिगत असमानता को देखा जाए जो ये केवल नई कृषि तकनीक अपनाने से नहीं हुई। यह भी हो सकता है कि विभिन्न अनुसंधानकर्ताओं ने अपने शोध में समय अलग-अलग लिया हो। लेकिन यह तो मानने योग्य है कि इस नई पद्धति से छोटे तथा सीमांत किसानों की बजाय बड़े किसानों को ज्यादा फायदा हुआ है। क्योंकि नई कृषि पद्धति के अन्तर्गत पैकेज प्रोग्राम था जिसके तहत केवल अमीर किसान ही सिंचाई, नए खाद व बीज की व्यवस्था कर सकते थे। इसलिए कृषि की उच्च उत्पादकता बड़े किसानों के हक में गई। यदि जी० एस० भल्ला तथा जी० के० चड्ढा का अध्ययन बताता है। एक हरित क्रांति से पंजाब में सम द्धि आई है लेकिन साथ में सीमांत किसानों का एक तिहाई हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे हैं उत्सा पटनायक ने भी हरियाणा में अध्ययन कि 262 का सैम्पल लेकर और पाया कि अधिकतर स्वयं रोजगार परिवार या जो भूमि पट्टे पर लेते हैं, श्रमिक आदि भी गरीबी के आय स्तर तक पहुंचने में असफल रहे। यद्यपि कृषि मजदूरों की मजदूरी बढ़ी है लेकिन वास्तविक मजदूरी में ज्यादा अंतर नहीं आया। उत्सा पटनायक ने वास्तविक मजदूरी का स्तर देखने के लिए 1970-71 से 1984-85 के समय में कई तत्व प्रयोग किए। यह अध्ययन दिखाता है कि इस 15 वर्ष के समय में कुछ वास्तविक मजदूरी में केवल 14.1% की व द्धि हुई जबकि 1978-79 से 1984-85 को लिया गया तो इसमें 7.9% की कमी हुई। इसलिए सभी चीजों का आंकलन करने के बाद कह सकते है कि हरित क्रान्ति का फायदा केवल अमीर किसानों को ज्यादा हुआ है।

3. **श्रम खपत का प्रश्न (The Question of Labour Absorption)** - यद्यपि विभिन्न

अर्थशास्त्रियों के क्षेत्रीय असमानता, अन्तर-व्यक्ति असमानता के लिए अलग-अलग विचार हैं लेकिन श्रम की खपत के लिए सभी का एक मत है कि हरित क्रान्ति के बाद कृषि क्षेत्र में श्रम की खपत में कमी आई है। इसका मुख्य कारण कृषि क्षेत्र में असमान क्षेत्रीय व द्धि से श्रम की खतप में कमी आई है। अधिकतर राज्यों में श्रमिक की अधिकता है तथा उत्पादन व द्धि कम है जिससे रोजगार उपलब्धि कम है तथा कुछ राज्यों में जहाँ श्रम कम है मजदूरी ज्यादा है ऐसी अवसथा में एक जगह से दूसरी जगह श्रमिकों का स्थानान्तरण अथवा पिछड़े क्षेत्र से विकसित क्षेत्र में श्रमिकों का स्थानान्तरण। दूसरे अधिकतर किसानों ने कृषि का मशीनीकरण किया है ताकि लाभ अर्जित किया जा सके। ऐसी अवस्था में हरियाणा, पंजाब तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसानों ने श्रम-बचत मशीनरी का प्रयोग करना आरम्भ किया जिससे कि श्रम की खपत में कमी हुई है।

4. **अनैच्छिक सामाजिक प्रभाव (Undersirable Social Consequences)** - कुछ हरित क्रान्ति क्षेत्र की सामाजिक आर्थिक अध्ययन बताते हैं कि इस पद्धति से अनैच्छिक सामाजिक आर्थिक प्रभाव पड़े हैं। अधिकतर बड़े किसानों ने अपनी भूमि को काश्तकारों से लेकर खुद जोतना आरम्भ कर दिया है क्योंकि वे खुद भूमि जोतकर ज्यादा लाभ अर्जित करते हें। इसकी वजह से अधिक संख्या में काश्तकार तथा बंटाई पर फसल उगाने वाले किसानों ने अपनी जमी खोकर, जबरदस्ती कृषि श्रमिक बनना पड़ा। इसलिए हरित क्रान्ति से लोगों के वर्ग-भिन्नता पनपी है।

   इसके साथ-साथ हरित क्रान्ति से स्वास्थ्य संबंधी परेशानी भी पनपी है। क्योंकि खेत तकनीक के आधुनिकीकरण से दुर्धटना में व द्धि हुई हैं 1978 में पंजाब में 500 दुर्धटनाएँ हुई और 1985 में यह बढ़कर 5000 हो गई। इन दुर्धटनाओं के प्रति सरकार का रवैया भी सकारात्मक नहीं है। इस तरह की दुर्घटनाओं में बहुत कम मुआवजा मिलता है। सरका ने इसको रोकने के लिए कोई प्रभावी कदम नहीं उठाए हैं। मशीनों के साथ-साथ पौधों पर कीटनाशक का छिड़काव भी जहर के माफिक है। हरित क्रान्ति के अन्तर्गत आने वाले Hyv seeds जल्दी बीमारी पकड़ते हैं जिससे इनके लिए कीटनाशक अत्यंत आवश्यक है इसलिए इस तरह का छिड़काव स्वास्थ्य तथा प्रकृति के लिए बहुत हानिकारक है।

5. **स्वभाव में परिवर्तन (Change in Attitude)** - हरित क्रान्ति का अच्छा पहलू यह है कि किसानों की सोच में परिवर्तन हुआ है। इन क्षेत्रों में उत्पादकता बढ़ने से कृशि का स्तर जो जीवन-निर्वाह था बढ़कर पैसा कमाने वाली इकाई बन गया है। भारतीय किसान नई तकनीक को अपनाने में अपनी इच्छा व्यक्त की है और लम्बे समय से चली आ रही ओलोचन कि वह पिछड़ा, परम्परागत और कीमत तथा उत्पादकता के प्रति सोच नहीं रखता को बेकार साबित कर दिया है। इसलिए यही सच है कि यदि नई तकनीक उपलब्ध हो तो कोई भी किसान उसे इंकार नहीं करता अथवा उसकी उपेक्षा नहीं करता। इसलिए कृषि के लिए भविष्य सकारात्मक है। इन आंकड़ों को हम पहले ही बता चुके हैं कि हरित क्रान्ति के बाद खाद का उपभोग, कृषि का प्रयोग, सिंचाई व्यवस्था तथा Hyv बीज के प्रयोग में व द्धि हुई है।

# अध्याय-9
# कृषि कीमत नीति
# (Agricultural Price Policy)

योजना के अन्तर्गत कृषि वस्तुओं की कीमतों में लगातार कम या ज्यादा व द्धि हुई है। केवल पहली पंचवषीर्य योजना में ही कीमतों में गिरावट आई है। 1951-52 को आधार वर्ष मानते हुए ये कीमतें 1950-51 में 110 से बढ़कर 1960-61 में 123.8 हो गई। यद्यपि 1951-52 में 110 से घटकर 1955-56 में यह 88 रह गई थी। लेकिन दूसरी योजना के अन्तर्गत इनमें एकदम तेजी आ गई और लगातार 1961-62 तक बढ़ी 1962-63 से 1998-99 तक लगातार कृषि वस्तु कीमतों में बढ़ोतरी रही। यदि 1961-62 की तुलना की जाए तो 1970-71 में दोगुनी तथा 1981-82 में 1970-71 से दोगुनी थी। 1998-99 में, ये 1982-83 की अपेक्षा चार गुना ज्यादा थी।

## कृषि वस्तु कीमत की आवश्यकता
## (Need for Agriculautal Price Policy)

कृषि वस्तुओं की कीमत में उतार-चढ़ाव से काफी नुकसान रहता है। उदाहरण के तौर पर कीमत में अधिक कमी से फसल उगाने वालों को भारी नुकसान सहन करना पड़ता है। इससे उनकी आय तो कम होगी ही साथ में अगले वर्ष वह उस फसल को उगाने के लिए भी कतराएँगे। यदि यही स्थिति रही तो खाद्यान्न वस्तुओं की पूर्ति माँग की अपेक्षा कम होगी तथा कीमतों में व द्धि होगी। इस तरह की स्थिति उपभोक्ताओं के लिए हानिकारक है।

इसलिए इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए, यह आवश्यक है कि कीमतों में उतार-चढ़ाव को रोकने के लिए प्रभावी कीमत नीति बनाई जाए ताकि उत्पादक तथा उपभोक्ता को होने वाले नुकसान से उनको बचाया जा सके। जिस वर्ष में आधिक्य (Surplus) है, उसके लिए सरकार को न्यूनतम कीमत निश्चित करनी चाहिए ताकि उत्पादनकर्ता को ज्यादा उगाने (पैदावार) करने पर उसे नुकसान न हो। सरकार द्वारा निश्चित न्यूनतम कीमत को इस तरह निश्चित करना चाहिए जिसमें किसानों की लागत के साथ उनको कुछ फायदा (return) भी प्राप्त हो। कमी की अवस्था में सरकार को बफर स्टॉक देना चाहिए ताकि उपभोक्ताओं को परेशानी न हों और वे साधारण कीमत पर अपनी उपभोग आवश्यकता पूरी कर सके। इसलिए कृषि कीमत नीति दो उद्देश्यों को पूरा करती है। निश्चित कीमत स्तर से कीमतों को घटने तथा बढ़ने की अनुमति प्रदान नहीं करती। इसलिए सरकार को ऐसी अवस्था में बफर स्टॉक भी बनाने चाहिए और साथ खाद्यान्न वस्तुओं को स्टॉक करने के लिए भी व्यवस्था करनी चाहिए। इसके लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) की भी आवश्यकता है जो उपभोक्तओां को सही कीमत पर कृषि वस्तुओं की पूर्ति कर सके। 'न्यूनतम समर्थन मूल्य' तथा 'वसूली कीमत' इस तरह से निश्चित करनी चाहिए जो उत्पादकों को ज्यादा उगाने के लिए प्रेरित करें। अल्पविकसित देशों में यह बहुत आवश्यक क्योंकि केवल यह कीमत और आय स्थिरता के

लिए आवश्वासन ही नहीं है बल्कि कृषि क्षेत्र की सहायता से यह संव द्धि का पहलू भी है। कृषि कीमत नीति के अनुसार एक अल्पविकसित देश में इसके निम्न उद्देश्य होने चाहिए।

(i) व द्धि लक्ष्य के अनुसार विभिन्न फसलों का उत्पादन बढ़ाना।

(ii) नई तकनीक जैसे उच्च किस्म के खाद्य, बीज, पानी प्रबंधन तकनीक की सहायता से उत्पादन में व द्धि

(iii) उत्पादकों को न्यूनतम कीमत प्रणाली के तहत उनके अधिकार सुरक्षित करना जिससे उनके उत्पादन की कीमत गिरने का खतरा न हो।

(iv) किसानों को अधिक उत्पादन करने के लिए उत्साहित करना ताकि बाजार आधिक्य उपलब्ध हों।

(v) अधिक कीमत बढ़ने के एवज में उपभोक्ताओं को सुरक्षित करना।

## भारत में कृषि कीमत नीति
## (Agricultural Price Policy in India)

स्वतन्त्रता के समय कृषि कीमत नीति में काफी कमियाँ थीं लेकिन दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इनको नियन्त्रित किया गया। इसके अन्तर्गत एक राज्य से दूसरे राज्य से आने-जाने के ऊपर नियंत्रण किया गया, उत्पादकों और मिलों पर जबरदस्ती दबाव डालकर खाद्यान्न बचा कर रखना और सभी राज्यों में समन्वय बनाया गया। खाद्यान्न कीमत नीति कमेटी, 1947 की सलाहों को मानकर कुछ प्रतिबंध ढीले किए गए अथवा उनमें छूट की गई। यद्यपि 1948 में खाद्यान्न का संकट पैदा होने से कीमतों में काफी व द्धि हुई। इसके अनुसार नियंत्रण को बिल्कुल खत्म कर दिया। 1955 के मध्य में फिर कीमतें बढ़नी शुरू हो गई और इस पर आंशिक प्रतिबंध लगाए गए।

खाद्यान्न जाँच कमेटी 1957 की सलाह पर खाद्यान्न थोक व्यापार नियंत्रण कर, 1958 में राष्ट्रीय विकास काउंसिल बनाई गई। 1959 में सरकार ने राज्यों के साथ खाद्यान्न में व्यापार का अनुभव लिया। इसके तहत दो वस्तुएं-गेहूं व चावल में राज्यों के बीच व्यापार शुरू हुआ। लेकिन गेहूं की परोक्यूरमेंट कीमत काफी कम रखी जिससे बाजार में खाद्यान्नों का पहुँचना निम्न था। कुछ राज्यों में थोक व्यापारियों पर भारी कर लगा दिए जिससे ये व्यापारी निरुत्साहित हुए और साथ-साथ भ्रष्टाचार भी पनपना शुरू हो गया। क्योंकि थोक व्यापारियों पर कर लगने के बाद उन्होंने गलत तरीके अपनाना आरम्भ कर दिया।

1. **खाद्यान्न जोन का संगठन (To Organise of Food Zone):** कृषि कीमत में स्थिरता का एक तत्त्व आरम्भ करने के लिए मार्च 1964 में खाद्यान्न जोन बनाए गए। पूरे देश को आठ गेहूँ जोन में बाँटा गया दक्षिण भारत में चावल जोन बनाया गया। इस तरह का अभ्यास फेल होने पर, हर एक राज्य ने अपना एक अलग जोन बनाया। जोन के अन्दर खाद्यान्न के आने-जाने पर कोई प्रतिबंध नहीं था लेकिन एक जोन से दूसरे जोन से खाद्यान्न भेजने पर प्रतिबंध था। सरकार खाद्यान्न की पूर्ति बढ़ाने के लिए जिन राज्यों के पास अधिक था उनसे लेकर जिन राज्यों के पास खाद्यान्न की कमी थी भेजना आरम्भ किया। यह कार्य PDS के द्वारा किया गया।

2. **सरकार द्वारा न्यूनतम समर्थन कीमत और वसूली कीमत निश्चित करना (Fixation of minimum support price and procurement price by the government):** खाद्यान्न कीमत कमेटी ने 1964 में कृषि कीमत कमीशन स्थापित करने की सलाह दी।

1965 में इस कमीशन की स्थापना की गई। 1985 में इसका नाम बदलकर कृषि लागत तथा कीमतों के लिए कमीशन (आयोग) रखा, इसकी स्थापना होते ही इस आयोग ने न्यूनतम सहायक कीमत, वसूली कीमत और इश्यू कीमत निश्चित की। इसके साथ कीमतों में न्यूनतम कीमत से गिरने न दिया जाए। इस आश्वासन के लिए, सरकार ने घोषित न्यूनतम कीमत पर बड़े पैमाने पर खाद्यान्न की खरीद आरम्भ की। प्रोक्यूरमेंट कीमत को न्यूनतम सहायक कीमत से ऊपर रखा गया और सरकार द्वारा इसका प्रयोग खाद्यान्न के लिए किया गया जिसका सार्वजनिक वितरण के लिए खरीदकर भंडार करना था। इश्यू कीमत वह है जिस पर सरकार राशन डिपो व दुकानों के तहत खाद्यान्न की पूर्ति करती है।

1964-65 में गेहूं की न्यूनतम सहायक कीमत 37.50 रु० प्रति क्विंटल थी। 1968-69 में इसे 57 रु० 50 पैसे बढ़ा दिया गया। उसके बाद सरकार ने न्यूनतम सहायक कीमत न अपनाकर ऐसी नीति अपनाई की सभी प्रकार का गेहूं वसूली कीमत पर खरीद लिया जाए जो उपलब्ध हो। 1965-66 में यह कीमत 56 रुपये प्रति क्विंटल थी और लगातार इसमें बढ़ोतरी हुई। 1977-78 में पैडी के लिए यह कीमत 77 रुपये प्रति क्विंटल थी। 1998-99 में यह कीमत 440 रुपये प्रति क्विंटल थी जो 1999-2000 में बढ़कर 45 रुपये प्रति क्विंटल हो गई।

3. **सही कीमत दुकान से राशन व बिक्री (Rationing and Sale through fiar price shops):** हमारे देश में PDS राशन या सही कीमत दुकानों के द्वारा चलाया जाता है। सही कीमत दुकानें समाज के पिछड़े व गरीब लोगों की न्यूनतम जरूरतों को पूरा करती है। देश में लगभग 1979 में 2.39 लाख दुकानें थी जो बढ़कर 1999 में 4.52 लाख हो गई।

इन सबके बावजूद PDS के द्वारा खाद्यान्न की जरूरतें पूरी नहीं होती। एक गरीब को प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति 100 किलोग्राम अनाज देने के लिए सरकार पर 20 मिलियन टन का अतिरिक्त भार पड़ता है। 186 किलोग्राम प्रत्येक व्यक्ति को प्रति वर्ष देने पर अतिरिक्त भार 52 मिलियन टन का पड़ा है।

## सरकार की कृषि-कीमत नीति का मूल्यांकन
## (Evaluation of Government's Agricultural Policy)

जैसा पहले बताया गया है कि कृषि कीमत नीति का उद्देश्य किसानों में निश्चित पैदावार के लिए विश्वास दिलाना तथा उनमें निश्चितता और विश्वास पैदा करना। यद्यपि भारत में कृषि कीमत नीति कुछ हद तक अपने उद्देश्य पूरा करने में सफल रही है। इसने अर्थव्यवस्था में स्फिति के स्तर को बढ़ाया है तथा कुछ विपरीत प्रभाव भी डाले हैं जो इस प्रकार हैं-

1. **निश्चितता तथा विश्वास के तत्त्व का पनपना (Injecting an element of certainty and confidence):** कृषि कीमत कमीशन बनाने से पहले कीमतों में काफी उतार-चढ़ाव थे। यद्यपि कृषि कीमत कमीशन बनाने के बाद स्थिति में सुधार हुआ है। इस कमीशन ने काफी अध्ययन करने के बाद दो प्रकार की कीमतें घोषित की न्यूनतम समर्थन कीमत और वसूली कीमत अन्तिम कीमत वह है जिस पर सरकार PDS की जरूरतों को पूरा करने के लिए खाद्यान्न खरीदती है। पहली समर्थन कीमत वह जिस पर सरकार जितना भी खाद्यान्न किसानों द्वारा बेचा जाता है उसे खरीदने के लिए बाध्य है।

प्राकृतिक तौर पर समर्थन कीमत किसानों को विश्वास दिलाती है कि इस स्तर से नीचे कीमतों में कमी नहीं आएगी।

2. **स्थिरता का प्रश्न (The question of stability):** यद्यपि न्यूनतम समर्थन कीमत तथा वसूली कीमत की घोषणा करने के बाद किसानों में विश्वास तथा निश्चितता का भाव पैदा होता है। फिर भी आयात की अनिश्चितता तथा कीमतों की डिग्री में तबदीली से अथवा उतार-चढ़ाव से, किसानों में अनिश्चितता की भावना पैदा करती है। ऐसी अवस्था में उमा लिलि ने कहा है, आशातीत कीमत (बाजार आधिक्य पर आधारित जो सरकार को बेचा जाता है) और वास्तविक भारी औसत कीमत (जो खुले बाजार पर निर्भर करती है) के बीच अंतर तेजी से बढ़ता है। यह अंतर वहाँ पर बाजार आधिक्य से विपरीत तौर पर प्रभावित करता है जहाँ वास्तविक कीमत आशातीत कीमत से कम होती है। अप्रभावी नियंत्रण के बिना कीमतों में लगातार उतार-चढ़ाव रहता है।

3. **उत्पादकों पर प्रभाव (Impact on Producers):** कुछ वर्षों से न्यूनतम समर्थन कीमत तथा वसूली कीमत में व द्धि होने से इसने उत्पादकों को अपना उत्पादन बढ़ाने के लिए तोहफे का काम किया है। यद्यपि इसका अधिकर लाभ बड़े किसानों को होता है क्योंकि वे नई कृषि तकनीक, शाख तथा आगत आसानी से प्रयोग कर लेते हैं। यद्यपि सरकार की खुले बाजार क्रियाओं का छोटे किसानों को भी फायदा होता है। यद्यपि, इसका उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता क्योंकि वे निजी कमीशन एजेंटों पर निर्भर रहकर अपना आधिक्य गाँव में ही बेच देते हैं। छोटे किसान नकदी की अधिक जरूरत की वजह से अपना उत्पाद बड़े किसानों को बेच देते हैं जिसकी कीमत बड़े किसानों को मिलनेवाली कीमत से कम होती है।

4. **सार्वजनिक वितरण प्रणाली में दोष (Flaws in public distribution system):** इसके बारे में हम भोजन-सुरक्षा भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली अध्याय में पूर्ण रूप से व्याख्यान कर चुके हैं। इसमें निम्न दोष हैं-(i) इसके अन्तर्गत केवल गेहूँ व चावल को लिया गया है, जबकि गरीब व्यक्ति के द्वारा घटिया किस्म के खाद्यान्न का अधिक प्रयोग किया जाता है। (ii) योजना के काफी समय तक PDS केवल शहरी क्षेत्र तक सीमित रहा और ग्रामीण क्षेत्र का हिस्सा ज्यादा कवर नहीं हुआ, (iii) PDS की पूर्ति, जहाँ अधिक मात्रा में जनसंख्या गरीबी से नीचे है, अपर्याप्त है। (iv) PDS अब भी महँगा है क्योंकि जो लागत PDS से देश को सहन करनी पड़ती है वह लम्बे समय में घातक सिद्ध हो सकती है।

5. **स्फीति स्तर में योगदान (Contribution to inflationary trend):** कृषि लागत व कीमत के लिए कमीशन ने भी साल दर साल वसूली कीमत में व द्धि की है। इस तरह के संकेत से दूसरे व्यापारी अपना माल स्टॉक कर लेते हैं। क्योंकि ज्यो-ज्यों कीमत बढ़ेगी, स्टॉक की क्षमता भी ज्यादा होगी। इसलिए ऐसी अवस्था में कीमतों में और अधिक व द्धि होगी। ये कीमत बढ़ने का जो तरीका है इसका उत्पादन लागत से कोई संबंध नहीं है। यदि वसूली कीमत के आँकड़े देखे जाएँ तो 1984-85 और 1992-93 में यह सूचकांक 100 से बढ़कर 190.9 हो गया।

6. **ग्रामीण गरीब पर प्रभाव (Impact on rural poor):** प्रो० अशोक मित्रा का कहना है कि कीमतों में व द्धि से सबसे विपरीत प्रभाव ग्रामीण गरीब पर पड़ता है। इनमें

सबसे ज्यादा संख्या भूमिहीन श्रमिक तथा छोटे किसानों की है जो जनसंख्या का अधिकतर हिस्सा है। लेकिन बढ़ी कीमत का फायदा उन्हें नहीं मिल पाता क्योंकि ये बाजार में उत्पादन का हिस्सा का योगदान कम कर पाते हैं तथा अधिकतर भाग उपभोग के लिए खर्च करते हैं। NSS (18वाँ चक्र) के आँकड़े दर्शाते हैं कि भूमिहीन श्रमिक की संख्या अनाज के लिए बाजार पर निर्भर रहने की 99 प्रतिशत आंध्रप्रदेश में, 98 प्रतिशत महाराष्ट्र और 74 प्रतिशत राजस्थान में है। छोटे किसान जिनकी भूमि 2.5 एकड़ है अनाज के लिए बाजार पर निर्भरता आन्ध्र प्रदेश में 81 प्रतिशत, महाराष्ट्र में 82 प्रतिशत तथा राजस्थान में 87 प्रतिशत है। कीमतों में व द्धि होती है, क्योंकि वसूली कीमत लगातार बढ़ती रही है इसका सबसे विपरीत प्रभाव इस संख्या पर होगा।

7. **अमीर राज्यों के पक्ष में (Bias in favour of rich states):** कृषि कीमत व लागत के लिए कमीशन की वर्तमान स्थिति पूरे देश में एक जैसी कीमत को निश्चित करना है लेकिन इसका फयादा अमीर राज्यों को ज्यादा रहता है क्योंकि उनकी उत्पादन लागत कम तथा उत्पादकता भी ज्यादा है। 1978-79 में पंजाब में पैडी की उत्पादन लागत 67.49 रुपये क्विंटल, आंध्रप्रदेश में 88.36 रुपये थी। जबकि औसत उत्पादन लागत 1975-76 में गेहूँ की 99.48 रुपये पंजाब में, 114 रुपये वेस्ट बंगाल में थी। इसी प्रकार भूमि किराया में भी अन्तर होता है।

8. **प्रेरित कीमत एवं वित्तीय दबाव** (Price incentives and fiscal sqeeze)**:** जब कीमत एक निश्चित पर पहुंच जाती है उसके बाद उस क्षेत्र में सार्वजनिक निवेश कम होता है क्योंकि वित्त अवस्था ठंडी पड़ जाती है। इसका मुख्य कारण कृषि क्षेत्र में बढ़ी कीमत को अनुदान द्वारा बेअसर किया जाता है। दूसरे यदि ग्रामीण, शहरी मजदूर तथा छोटे किसानों की क्रय शक्ति कम होने पर प्रभावी माँग होगी तथा गैर-कृषि क्षेत्रों में उत्पादन के भारी नुकसान से सरकार की आय भी कम होगी।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि कृषि क्षेत्र में वसूली कीमत की घोषणा करना एक यंत्र बन गया है बल्कि दूसरे अहम मुद्दे जैसे कृषि में पूँजी निर्माण में कमी, भूमि जोत स्तर में बदलाव इत्यादि को अनदेखा किया है। अधिकतर, कृषि नीति मोटे तौर पर वसूली कीमत पर निर्भर करती है जो अपवाद हैं, यह खाद्यान्न में आधिक्य या अधिक भूमिवाले किसानों के हक में है। भारत में अधिकतर किसान के पास थोड़ी जमीन और कम बाजार आधिक्य है, इसलिए उनको इससे ज्यादा लाभ प्राप्त नहीं होता।

# अध्याय-10
# भारत में कृषि वित्त
# (Agricultural Finance in India)

कृषि एक असंगठित क्षेत्र है अथवा व्यवसाय है। इसकी सफलता तथा असफलता मौसम तत्त्वों पर निर्भर रहती है। इसी वजह से किसानों के लिए उत्पादक तथा अनुत्पादक ऋण के बीच अंतर करना मुश्किल है और इन्हीं कारणों की वजह से बैंक दीर्घकाल के लिए कृषि को ऋण देने में रुचि नहीं रखते और उन्हें उधार देनेवाले तथा महाजनों पर निर्भर रहना पड़ता है। इस वजह से कृषि वित्त की आवश्यकता है।

किसानों के लिए साख सुविधाओं को दो तरह से जाँच सकते हैं- (i) समय के अनुसार (ii) उद्देश्य के अनुसार यदि समय के हिसाब से वर्णन करें तो किसान तीन अवस्थाओं में ऋण लेता है-(i) थोड़े समय के लिए, (ii) मध्यम काल (मध्यम समय के लिए), (iii) दीर्घकाल। लघु स्तर के ऋण बीज, खाद, दवाई, पशुओं के लिए चारा, कृषि उत्पाद का बाजारीकरण, श्रम किराया के लिए मजदूरी, मुकद्दमेबाजी इत्यादि के लिए उपलब्ध है। इनका समय 15 महीने से कम रहता है। मुख्यरूप से यह सहकारी समितियों तथा पैसे उधार देनेवालों द्वारा दिया जाता है। दीर्घ काल के ऋण ट्यूबेल खरीदने, खेती में नियमित सुधार, बड़े कृषि यंत्र खरीदने जैसे ट्रैक्टर, थ्रेसर, पुराने ऋण का भुगतान आदि के लिए लिए जाते हैं। इसकी समय अवधि 5 साल से ज्यादा है। मध्यम-काल के ऋण पशु खरीदने, छोटे कृषि यंत्र खरीदने, कुओं की मरम्मत आदि के लिए दिए जाते हैं। इनकी समयावधि 15 महीने से 5 वर्ष होती है।

भारतीय किसान कृषि साख का प्रयोग विभिन्न उद्देश्यों के लिए करते हैं। (i) उत्पादन, (ii) उपभोग आवश्यकता, (iii) अनुत्पादक। उत्पादक आवश्यकताओं के लिए लिया गया ऋण सीधे तौर पर कृषि को प्रभावित करता है। जैसे बीज, खाद, कृषि यंत्र, पशु खरीदना आदि। इनकी अदायगी में कोई परेशानी नहीं है क्योंकि किसान इसे उत्पादन के लिए प्रयोग करते हैं। इसके साथ किसान उपभोग के लिए भी ऋण लेते हैं। कृषि वस्तु के बाजार तथा अगली फसल की कटाई के बीच काफी अंतर रहता है इसलिए वे अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए ऋण लेते हैं। सूखा आदि के समय भी इस तरह का ऋण लेना पड़ता है। संस्थागत साख संस्थाएं इस तरह का ऋण प्रदान नहीं करती इसलिए किसानों को अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए जबरन महाजन तथा उधार देनेवालों के पास जाना पड़ता है। इसके साथ-साथ किसान अनुत्पादक क्रियाओं के लिए भी ऋण लेते हैं जैसे मुकद्दमे, शादी, धार्मिक क्रियाएँ, परिवार के सदस्य के जन्म तथा म त्यु पर कार्यक्रम, त्यौहार आदि। कोई भी संस्थागत साख समिति इस तरह का ऋण प्रदान नहीं करती तथा जबरन किसानों को बनियों तथा महाजनों पर निर्भर रहना पड़ता है। इन ऋणों को वापिस करना भी काफी मुश्किल है क्योंकि इनसे कोई भी उत्पादन क्रिया नहीं की जाती तथा ये उत्पादन में कुछ भी योगदान नहीं करते।

# कृषि वित्त के साधन
## (Sources of Agricultural Finance)

कृषि वित्त के साधनों को दो भागों में बाँटा जा सकता है-1. संस्थागत, 2. गैर संस्थागत साधन। गैर संस्थागत साधन में संबंधी, व्यापारी, कमीशन एजेंट, जमींदार तथा महाजन है। संस्थागत साधनों के अन्तर्गत सहकारिताएँ, अनुसूचित व्यापारिक बैंक और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (RRBs) है। राज्य सरकार किसानों को भी तकवी ऋण प्रदान करती है और साथ में वित्तीय सहायता भी प्रदान करती है जिनमें प्रमुख है स्टेट को-ऑपरेटिव बैंक (SCBs) और लैंड डेवलपमेंट बैंक LDB)। सहकारिता के क्षेत्र में प्राइमरी एग्रीकल्चरल क्रेडिट सोसाइटीज (PACSs) लघु तथा मध्यम काल के लिए ऋण और LDB दीर्घकाल के लिए ऋण प्रदान करती है। कॉमर्शियल बैंक में RRBs दोनों लघु तथा मध्यम एक्ट काल के लिए कृषि तथा उसकी सहायक क्रियाओं के लिए प्रदान करता है। नैशनल बैंक फॉर एग्रीकल्चरल एण्ड रूरल डेवलपमैंट (NABARD) राष्ट्र स्तर पर काम करता है तथा ऊपर बताए गई एजेंसियों को ऋण प्रदान करता है। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया देश का केन्द्रीय बैंक है यह NABARD को उसके कार्य के लिए दिशा निर्देश तथा वित्तीय सहायता प्रदान करता है।

आजादी के समय कृषि साख का महत्त्वपूर्ण साधन जमींदार, बनिया तथा महाजन थे। 71.6% ग्रामीण साख इन्हीं द्वारा प्रदान की जाती थी ये लोग ऊँची ब्याज पर लेते थे तथा खाता भी बदल देते थे। किसानों को धोखाधड़ी से बचाने के लिए सरकार ने कई कानून पास किए जैसे इनको रजिस्ट्रेशन तथा लाइसेंस आवश्यक कर दिया गया, खाता दुरुस्त करना अथवा खातों का रिकार्ड रखना आदि।

सरकार ने सबसे महत्त्वपूर्ण कदम वित्त के संस्थागत साधनों की स्थापना की, इससे महाजनों की महत्ता कम हो गई और सहकारी समितियाँ तथा बैंकों का ग्रामीण साख हिस्सा बढ़ता गया। ग्रामीण साख में महाजनों का हिस्सा 1951 में 71.6% रह गया। इसी कारण 1969 में बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। कॉमर्शियल बैंकों का हिस्सा जो 1971 में 2.2% था 1981 में बढ़कर 28.6 प्रतिशत हो गया। 1991-92 में कृषि की संस्थागत साख 11,202 करोड़ रुपये थी, 1994-95 में 18,744 करोड़ तथा 1998-99 में 38,504 करोड़ रुपये थी। बैंकों का राष्ट्रीयकरण लगातार बढ़ता गया तथा 1980 में 6 बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया जो 1969 में केवल 14 थे। अब इनकी कुल संख्या 20 हो गई। 1975 में RRBs की स्थापना हुई तथा 1982 में NABARD की स्थापना हुई।

लेकिन यह कहानी का एक ही पहलू है। क्रेडिट रिव्यू कमेटी (ACRC) ने कहा है कि महाजनों (Moneylenders) को बिल्कुल खत्म नहीं किया गया। गैर-वित्तीय संस्थान आज भी देश में मौजूद हैं और ये किसानों से ऊँची ब्याज दर लेते हैं क्योंकि कोई भी बैंक अनुत्पादक तथा उपभोग ऋण प्रदान नहीं करता इसके बारे में हम इसी अध्याय में पहले ही बता चुके हैं। बैंक केवल उत्पादक क्रियाओं के लिए ही ऋण प्रदान करता है इसलिए मजबूरन किसानों को इन्हीं के पास जाना पड़ता है।

# सहकारी साख समितियाँ
## (Co-operative Credit Societies)

भारत में सहकारी साख समितियों का इतिहास काफी पुराना है। सबसे ज्यादा सहकारी आंदोलन 1904 में सहकारी साख समितियों से किया गया। यह समितियाँ किसानों तथा ग्रामीण लोगों को ऋण से मुक्त करने के लिए संघर्ष किया।

भारत में ग्रामीण साख समितियों की बनावट (ढाँचा) को अल्पकाल तथा दीर्घकाल के लिए किया गया। लघु स्तर पर ये समितियाँ तीन प्रकार की हैं-निचले स्तर पर प्राइमरी एग्रीकल्चरल सोसाइटिज (PACS) हैं। इनको गाँव स्तर पर संगठित किया। दूसरे स्तर पर डीस्ट्रीक्ट सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक हैं (DCCBs), जिनको जिले स्तर पर संगठित किया गया। तीसरे स्तर पर स्टेट को-ऑपरेटिव बैंक हैं (SCBs) जो राज्य स्तर पर हैं। गाँव स्तर पर PACs को दस या दस से अधिक व्यक्ति निर्माण कर सकते हैं। ये सिर्फ उत्पादन के लिए ऋण प्रदान करती है। DCBs दो तरह की हैं-को-ऑपरेटिव बैंकिंग यूनियन और मिक्सड सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक। दूसरे का कार्य PACSs को जरूरत के समय ऋण प्रदान करना है ताकि वे किसानों की जरूरत पूरी कर सकें। SCBs भी DCCBs को ऋण प्रदान करती है जो PACSs की जरूरत पूरी करती है। यह DCCBs की कार्य प्रणाली को नियंत्रित तथा संगठित करती है। यह एक तरफ रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया तथा मुद्रा बाजारों के बीच की कड़ी और दूसरी तरफ नीचे सहकारी समितियों के बीच की कड़ी का काम करती है।

अल्पकाल साख जरूरतों के साथ-साथ किसानों को दीर्घकालीन ऋणों की भी जरूरत रहती है। जैसे कृषि यंत्र खरीदने के लिए भूमि में नियमित सुधार, पुराने ऋण की अदायगी। इन जरूरतों को पूरा करने के लिए दीर्घकालीन साख समितियों की स्थापना की गई। ये एक राज्य से दूसरे राज्य में अलग-अलग हैं।

यद्यपि ग्रामीण सहकारी साख समितियाँ पूरे देश में फैली हुई हैं। लघुकाल सहकारी साख समितियों की संख्या केरल में एक, आसाम में 34, इसी प्रकार पंजाब में 235 हैं।

## सहकारिता के साधन
## (Resources of Co-operatives)

ग्रामीण सहकारिता का मुख्य साधन खुद के फंड, जमा तथा उधार है। कुछ सालों से इन संस्थाओं की कार्यप्रणाली बढ़ी है। PACs के फंड 1950-51 में 41 करोड़ थे जो 1994-95 में बढ़कर 13,672 करोड़ रुपए हो गए। DCCBs की क्रियाशील पूँजी 1950-51 में 55 करोड़ थी जो 1997-98 में बढ़कर 53,488 करोड़ हो गई। इसी प्रकार SCBs का भी 34 करोड़ रुपये से बढ़कर 33,752 हो गया। लेकिन फंड अर्जित करने में PACSs की स्थिति ज्यादा अच्छी नहीं है क्योकि क्रियाशील पूंजी में इसका हिस्सा घटकर 1950-51 में जो 42.1 प्रतिशत था, 1994-45 में 20.5 प्रतिशत रह गया।

## ग्रामीण साख में सहकारिता की भूमिका
## (Role of Co-operatives in Rural Credit)

यद्यपि सहकारिता आंदोलन 1904 में शुरू हुआ, लेकिन स्वतन्त्रता से पहले इसका योगदान नगण्य था। 1951-52 में कुल ग्रामीण साख का 3.1 प्रतिशत प्रदान किया, 1961-62 में 15.5 प्रतिशत, 1970-71 में 22.7 प्रतिशत था। इसका अभिप्राय ग्रामीण साख में इनका योगदान तेजी से हुआ।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत (1992-93), प्रथम वर्ष में यह 15,169 करोड़ था। इसमें सहकारिता का हिस्सा 9,378 करोड़ रुपये था। यद्यपि आठवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक (1996-97) में यह गिरकर 45.2 प्रतिशत (26,411 करोड़ रुपये में से 11,944 करोड़) रह गया। यदि सहकारी समितियों का अवलोकन किया जाए तो इसकी साख में अधिक व द्धि नहीं हो सकी। क्योंकि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बड़े किसानों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति अच्छी होने पर इन समितियों पर इन्हीं का नियंत्रण रहा तथा सबसे ज्यादा फायदा इन्हीं को हुआ। इसके

साथ एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र के बीच साख के वितरण में भी असमानता रही।

छः राज्यों (आंध्रप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, केरल, पंजाब और तमिलनाडु) को 1995-96 में 80% ऋण PACSs द्वारा दिया गया।

सहकारी-समितियों की लाभ शक्ति भी एक चिन्ता का विषय है। इनमें से अधिकतर को घाटा हुआ है जो इनकी साख को खत्म कर देता है। लघु तथा दीर्घकाल सहकारिता को 1997-98 में 2427 करोड़ का नुकसान हुआ जो पहले केवल 927 करोड़ था।

## वाणिज्य बैंक और ग्रामीण साख
## (Commercial Banks and Rural Credit)

लम्बे समय से वाणिज्य बैंकों का ग्रामीण साख में हिस्सा कम हुआ है। 1951-52 में यह 0.9% था जो 1961-62 में 0.7% रह गया। इसका मुख्य कारण कृषि की प्रकृति, जीवन निर्वाह, खेती, असंगठित और व्यक्तिगत कार्य से है। अधिकतर कृषि मानसून पर निर्भर रहती है जो कि खतरनाक है। इसके विपरीत औद्योगिक क्षेत्र ज्यादा संगठित तथा प्रकृति पर कम निर्भर है। इसी वजह से वाणिज्य बैंक औद्योगिक क्षेत्र पर ध्यान देते हैं और ग्रामीण क्षेत्र से, औद्योगिक क्षेत्र की माँग पूरा करने के लिए फंड हस्तान्तरित करते हैं।

1969 में 14 वाणिज्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया था जो 1980 में और बढ़ाकर उसमें 6 बैंक और जोड़ दिए। राष्ट्रीयकरण के बाद बैंकों ने ग्रामीण क्षेत्र में काफी शाखाएँ खोली हैं तथा राष्ट्रीयकरण के बाद इन बैंकों ने ग्रामीण साख प्रदान करने के लिए अहम् भूमिका निभाई। इन बैंकों ने किसान को कृषि आगत खरीदने तथा नई तकनीक को अपनाने में मदद की। इसके साथ ग्रामीण क्षेत्र और कृषि में भी क्रियाओं का विस्तार हुआ और कृषि में निजी निवेश में भी व द्धि हुई।

लेकिन इन सफलताओं अथवा प्राप्तियों के बाद भी वाणिज्य बैंकों की परफॉरमेन्स की आलोचना हुई जो इस प्रकार है-

1. ग्रामीण क्षेत्र साख में व द्धि के दबाव से इनकी जो स्कीम थी, खासतौर पर गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम इत्यादि से इसकी गुणवत्ता में गिरावट हुई। इस प्रकार दिन प्रतिदिन काम का दबाव बढ़ता गया, जबकि स्टॉफ को बढ़ाया नहीं गया।
2. ग्रामीण क्षेत्र में ये बैंक छोटे-छोटे ऋण देते हैं जबकि इसकी लागत तथा स्टॉफ में कोई अन्तर नहीं है, इसलिए ग्रामीण ऋण के देख-रेख को अनदेखा किया। साथ में स्टॉफ के पास भी आधुनिक सुविधा तथा आविष्कारों की कमी एक कारण था।
3. गाँव में बड़े पैमाने पर शाखाएँ खोलना, जबकि वहाँ व्यवसाय पूर्ण मात्रा में नहीं है। इससे भी प्रबन्धकीय लागत में व द्धि हुई।
4. इन बैंकों में ऋण वापसी की स्थिति काफी खराब है। 1990 में काफी मात्रा में ऋण बाकी थे। बैंक खोलने से पहले पूरी तरह सर्वेक्षण नहीं किया गया। जहाँ ज्यादा शाखाओं की जरूरत थी वहाँ कम थी। बल्कि कई जगह एक ही क्षेत्र में दो शाखाएँ खोली गई।
5. साख बँटवारे में असमानता का एक कारण है। दक्षिण क्षेत्र का हिस्सा 46.7% तथा पूर्वी क्षेत्र में 12.5% था।
6. वाणिज्य बैंक तथा सहकारी समितियों में समन्वय की कमी।

यद्यपि इन बैंकों में ग्रामीण साख में काफी योगदान किया लेकिन जो सफलता मिलनी चाहिए थी वह मिल नहीं पाई। सबसे मुख्य कारण भारत एक कृषि प्रधान देश है। लगभग 70% जनसंख्या गाँव में रहती है। जिनकी ऋण क्षमता तथा ऋण वापिस करने की क्षमता भी कमजोर है। इसलिए इनकी शाखाएँ बढ़ाने से पहले इनका पूर्व रूप से सर्वेक्षण आवश्यक था।

## क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक
## (Regional Rural Banks)

दी वर्किंग ग्रुप ऑन रूरल बैंक्स (1975) ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को वाणिज्य बैंक तथा सहकारी क्षेत्र द्वारा कमजोर वर्गों (ग्रामीण क्षेत्र), छोटे व सीमांत किसान, भूमिहीन मजदूर, काश्तकार आदि को साख सुविधा प्रदान करने के लिए इनको स्थापित करने की प्रस्तावना की। नए बैंकों को स्थापित करने की समझ के पीछे ग्रामीण क्षेत्र में साख का विस्तार जिसे ग्रामीण स्तर पर महसूस किया जाए जैसे सहकारी संस्थाएँ, तथा दूसरी तरफ साख में आधुनिकता प्रदान करना जो वाणिज्य बैंक पूरा करते हैं-इस विचार से कि इसे ग्रामीण क्षेत्र में बढ़ाया जाए। वर्किंग ग्रुप ने यह अच्छी तरह से समझ लिया कि ग्रामीण क्षेत्र को कम लागत की आवश्यकता तथा स्टॉफ भी पड़ौसी क्षेत्र से लिया गया ताकि भाषा समय, ग्रामीण समस्या आदि की पूरी समझ हो और ग्रामीण लोगों की जरूरतों को समझा जाए।

वर्किंग ग्रुप के नामित करने के बाद 1975 में 5 ग्रामीण क्षेत्रीय बैंक खोले गए। बाद में इनकी संख्या 196 हो गई। 1975 से 1999 तक इनकी शाखाओं में 17 से 14,454 और जिलों की संख्या जो इनको कवर करती थी बढ़कर 12 से 427 हो गई। ग्रामीण क्षेत्रीय बैंकों ने 25.38 रुपये कृषि क्षेत्र को ऋण प्रदान किया। लेकिन इन सबके बावजूद भी इन बैंकों की कुछ समस्याएँ हैं -

1. **संगठनात्मक समस्याएँ (Organiation problems):** हर एक ग्रामीण क्षेत्रीय बैंक (RRBs) वाणिज्य बैंक द्वारा स्पॉन्सर किया जाता है। केन्द्रीय तथा राज्य सरकार भी पूँजी का योगदान करती हैं। इसलिए इन बैंकों (RRBsa) पर दोहरा नियंत्रण होता है। इस कारण न तो राज्य सरकार से पूर्ण तौर पर सहायता मिलती है और न ही वाणिज्य बैंक इन्हें पूरी तरह स्पोंसर कर पाते हैं। स्टॉफ का सही तौर पर ट्रेनिंग न मिलना भी एक कारण है। ग्रामीण क्षेत्रीय बैंकों के संस्थाओं के बीच की समन्वय की कमी के कारण भी बैंकों की शाखाओं के प्रसार में भी समस्या रहती है।

2. **उगाही की समस्याएँ (Problem of recovery):** RRBs की उगाही की समस्या काफी खराब है। 1944-1995 से 1997-98 के दौरान उगाही 15% से 61% के बीच थी। यद्यपि देनदारी 39 से 49% के बीच थी इसका मुख्य कारण ऋण नीति में कमी अथवा खामियाँ तथा प्रबन्धकीय ढाँचा कमजोर है। बाहरी तौर पर राजनैतिक हस्तक्षेप, जान-बूझकर गलती और राज्य सरकार से उगाही के मामले में सहयोग की कमी इत्यादि।

3. **नुकसान से उपयोगिता में कमी (Mounting of Losses Leeading to Non-viability):** 1994-95 के बजट में वित्त मंत्री ने कहा था पिछले पाँच सालों में 196 RRBs में से 150 घाटा दिखा रही है। अधिकतर संख्या ने अपनी जमापूँजी को ही प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है। इसके कई कारण दिखाई प्रतीत होते हैं। कमजोर

वर्ग को बैंक पद्धति से भी कम पर ऋण देना, लगातार RRBs की शाखाओं को खोलने पर खर्चे में व द्धि, प्रबन्धकीय खर्चे आदि की वजह भी इनके मुख्य कारण हैं। इसके साथ-साथ RRBs का आर्थिक स्तर अथवा वातावरण भी सही नहीं है।

4. **प्रबन्धकीय समस्या (Management Problem):** RRBs जिला स्तर पर छोटे संस्थान हैं, जो बैंक स्पॉन्सर करते हैं वे मध्यम वर्ग के स्टॉफ को नियुक्त करते हैं जिनसे प्रबन्धन कमजोर रहता है। इस तरह के वातावरण में स्टॉफ स्वतन्त्र फैसले करने में परेशानी महसूस करते हैं। इसके साथ RRBs के बोर्ड के डायरेक्टर की मीटिंग भी नियमित नहीं होती और अधिक संख्या में गैर-सरकारी कर्मचारी इन बैंकों की कार्यप्रणाली में रुचि नहीं लेते। इसलिए RRBs को कई एजेंसी के नियंत्रण से समस्या रहती है और RRBs की कार्यप्रणाली सभी राज्यों/जिलों में एक जैसी नहीं रहती।

इन सब कमियों को देखते हुए सलाह दी जाती है कि इन बैंकों को स्पोंसर बैंकों के साथ मिला देना चाहिए। कमेटी के अनुसार यह मिलान न केवल कार्यप्रणाली को मजबूत करेगा बल्कि इससे उनकी जमा भी बढ़ेगी। सबसे महत्त्वपूर्ण है प्रबन्धकीय खर्चों में कमी से इनके घाटे में भी कमी आएगी। लेकिन एम०एल० दंतवाला का कहना है कि इन बैंकों को स्पोंसर बैंकों के साथ मिलान से घाटे में कोई कमी नहीं होगी क्योंकि कमजोर वर्ग से ऋण की ब्याज दर में कोई अंतर नहीं है इसलिए इन बैंकों में घाटा लगातार रहेगा। नुकसान तभी कम हो सकता है जब कमजोर वर्ग की ब्याज की दर भी बढ़ाई जाए लेकिन इस बात पर कमेटी सहमत नहीं है।

वास्तव में यह अधिक महत्त्वपूर्ण है कि RRBs ग्रामीण क्षेत्र में अहम भूमिका अदा करते हैं और ये आय वितरण का महत्त्वपूर्ण पहलू है। ये केवल ग्रामीण साख एजेंसी ही नहीं है बल्कि ग्रामीण संव द्धि में व द्धि का भी यंत्र है।

इस संदर्भ में जिससे इन बैंकों की नुकसान की मात्रा कम हो सरकार ने कई कदम उठाए हैं। 1007 की मौद्रिक नीति के अन्तर्गत इन्हें प्राथमिक क्षेत्र में 40% साख बढ़ाने की अनुमति मिली है जिससे 2000-01 में 158 RRBs ने लाभ अर्जित किया है तथा 48 RRBs अपने नुकसान को कम करने के नजदीक पहुँचे हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि साख में व द्धि करने से वाणिज्य बैंकों के साथ पहुँचे हैं।

# कृषि व ग्रामीण विकास के लिए राष्ट्रीय बैंक (नाबार्ड)
# (National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD)

ग्रामीण क्षेत्र सबसे महत्त्वपूर्ण साख साधन को बढ़ाने के लिए नाबार्ड (1982) की स्थापना एक महत्त्वपूर्ण कदम है। यह रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के तहत काम करता है। दि एग्रीकल्चरल रिफाइनेंस एंड डेवलपमेंट कॉरपोरेशन (ARDC) जो 1963 में स्थापित किया गया था ग्रामीण क्षेत्र में दीर्घकालीन साख आवश्यकताओं को पूरा करता था, अब इसे नाबार्ड के साथ मिला दिया गया है। 1998-99 में नाबार्ड की प्रदान पूँजी 2000 करोड़ रुपये थी।

## नाबार्ड के कार्य
## (Functions of NABARD)

1. यह ग्रामीण क्षेत्र की साख जरूरतों को देखने की अहम यंत्र है।

2. इसे कृषि साख विभाग से सहकारी क्षेत्र की कार्यप्रणाली को देखने का भी अधिकार है।

3. यह राज्य सहकारी बैंकों को अल्पकाल (18 महीने) के लिए फसल ऋण, फसलों का बाजारीकरण, खाद की खरीद व वितरण के लिए ऋण प्रदान करता है।

4. यह मध्य-काल स्तर साख (18 महीने से सात साल) के लिए राज्य सहकारी बैंक और RRBs को कृषि उद्देश्य, प्राकृतिक आपदा के लिए ऋण प्रदान करता है।

5. यह मध्यम तथा दीर्घकाल के लिए (जो 25 साल से ज्यादा नहीं) कृषि क्षेत्र में सुधार तथा निवेश के लिए राज्य सहकारी बैंक, भूमि विकास बैंक तथा RRBs व वाणिज्य बैंक को ऋण प्रदान करता है।

6. यह कृषि क्षेत्र में शोध और विकास के लिए भी प्रबंध करता है जिससे विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रोजेक्ट स्थापित किए जाएं।

## नाबार्ड व ग्रामीण साख
## (NABARD and Rural Credit)

जैसे ऊपर कहा गया है यह ग्रामीण साख क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण पहलू है। इसलिए यह किसानों और ग्रामीण लोगों से सीधा संबंध नहीं रखता। यह उन्हें सहकारी बैंक, वाणिज्य बैंक, RRBs इत्यादि के तहत सहायता प्रदान करता है। इस संदर्भ में NABARD इस प्रकार सहायता करता है:-

1. नाबार्ड का अल्पकाल साख के लिए अधिकतर भाग मौसमी कृषि क्रियाओं को पूरा करने के लिए दिया जाता है। यह सीमा नाबार्ड द्वारा निर्धारित की जाती है। इस क्रिया के लिए 1996-97 (निर्धारित 5185 करोड़) की बजाय 1997-98 में 5169 करोड़ दिया गया।

2. नाबार्ड ने मध्यकाल-साख सीमा कृषि क्षेत्र के लिए एक करोड़ की है। जो केवल कृषि के लिए प्रयोग की जाती है। यह बाढ़, सूखा, प्राकृतिक

3. नाबार्ड ने दीर्घ-काल साख सीमा 150 करोड़ निर्धारित की है। यह राज्य को प्रदान की जाती है ताकि वे सहकारी समिति संस्थाओं में अपना योगदान बढ़ा सकें।

4. नाबार्ड IRDP के तहत भी सहायता प्रदान करता है। इसके अन्तर्गत कृषि तथा इसकी सहायक सेवाओं के लिए ऋण दिया जाता है।

5. नाबार्ड उन राज्यों में भी कृषि निवेश बढ़ाने पर जोर देता है जो पिछड़े हैं तथा कम विकसित हैं।

6. NABARD कृषि क्षेत्र के साथ-साथ गैर-कृषि क्षेत्र को भी ऋण प्रदान करता है ताकि ग्रामीण विकास में व द्धि हो तथा इस क्षेत्र में सम द्धि हो। छोटे उद्योग, ग्रामीण क्षेत्र, हथकरघा उद्योग, औद्योगिक सहकारी समितियों को भी ऋण प्रदान किया जाता है।

7. नाबार्ड ने RRBs, सहकारी समितियाँ आदि को सहायता प्रदान करने के लिए शोध और विकास विभाग स्थापित किया है। यह विभाग इन बैंकों तथा समितियों के

तकनीकी कार्य का मूल्यांकन करेगा। इन कार्यों के लिए नाबार्ड इन्हें सहायता भी प्रदान करेगा ताकि सेमिनार, गोष्ठी आदि का आयोजन किया जा सके।

8. नाबार्ड के तीन महत्त्वपूर्ण कार्य हैं-दो बार वित्त प्रदान करना, संस्थागत विकास तथा साथी बैंकों का निरीक्षण। लेकिन इन सबके बावजूद नाबार्ड राज्य-सहकारी समितियों की कार्यप्रणाली को सुधार नहीं पाया क्योंकि ये राज्य के नियंत्रण में कार्य करती हैं।

निम्नलिखित विचार-विमर्श से साफ पता चलता है कि नाबार्ड से कृषि क्षेत्र में संस्थागत साख का विस्तार हुआ है। यह तेजी 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद आई है। साथ-साथ 1975 में RRBs की स्थापना 1982 में नाबार्ड की स्थापना से इसमें मध्य योगदान हुआ है। यद्यपि अब भी साख की माँग व पूर्ति में अंतर है और ये अंतर लगातार बढ़ेगा यदि नाबार्ड इसको रोकने के लिए अहम कदम नहीं उठाएगा। यद्यपि नाबार्ड ने इसके सुधार के लिए काफी कदम उठाए हैं जिसका हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं।

# अध्याय-11
# भारत में कृषि बाजार
# (Agricultural Marketing in India)

दीर्घकाल से भारतीय कृषि को जीवन 'निर्वाह खेती' के तौर पर देखा गया है। किसान अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए ऋण, किराया व भुगतान करने के लिए अपने उत्पादन का थोड़ा हिस्सा बेचते थे। इस प्रकार की बिक्री कटाई के तुरन्त बाद की जाती थी क्योंकि स्टॉक रखने के लिए कोई सुविधा नहीं थी। अपने उत्पाद का हिस्सा किसान ग्रामीण व्यापारी या पैसा उधार देनेवालों को बेचते थे। इन किसानों को कीमत बाजार कीमत से कम मिलती थी। जो किसान अपने उत्पाद को बाजार ले जाते थे उन्हें काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। मंडी में व्यापार का काम दलाल, आढ़ती, थोक व्यापारी आदि द्वारा किया जाता था। वास्तव में मध्यस्थों की एक लम्बी कतार थी जिसे ग्रामीण व्यापारी, कच्चा आढ़ती, पक्का आढ़ती, दलाल आदि नाम दिए गए हैं। परिमाण यह हुआ कि कृषि उत्पाद की कीमत में किसानों का हिस्सा कम होता गया। प्रो० डी०एस० सिंधू का अध्ययन बताता है कि किसानों को कुल कीमत का केवल 53%, 31% मध्यस्थ को तथा 16% बाजार की लागत थी। आढ़ती और दलाल किसान की अनभिज्ञता और अनपढ़ता का पूरा फायदा उठाते थे। किसानों के आढ़तियों को आढ़त, उत्पाद का भार करने के लिए तुलाई और बैलगाड़ी से उतारने के लिए पल्लेदारी दी जाती थी। वजन कम करने की शिकायत भी बाजार में आम थी।

भारत में कृषि बाजार में ऊपर कही गई कमियों की वजह से किसानों को अपने उत्पाद की कीमत का कुछ ही हिस्सा मिल पाता था। इसके साथ-साथ गाँव में स्टॉक करने की सुविधा नहीं थी। किसान अपना उत्पाद कच्चे स्टोर घर, गड्ढे इत्यादि में रखते थे जिससे अधिक मात्रा में उत्पाद नष्ट हो जाता था। अधिकतर उत्पाद में कीड़े लगने से वह प्रयोग करने के लायक भी नहीं था। इस समय किसान की फसल का एक तिहाई हिस्सा इसी वजह से नष्ट होता था। बाजार में कोई ग्रेडिंग का तरीका नहीं था। इसलिए अच्छे बीज का प्रयोग करने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं था तथा यातायात सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं थी। अधिकतर यातायात के लिए बैलगाड़ी का प्रयोग किया जाता था जो दूर जगहों पर उत्पाद ले जाने में समर्थ नहीं थी। किसानों को नजदीक के बाजार में ही अपना सामान पटकना पड़ता था जहाँ कम कीमत मिल पाती थी। अधिकतर किसानों का दूसरी मंडियों से कोई संपर्क नहीं था न ही कीमतों के बारे में जानकारी प्राप्त हो पाती थी। अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने तथा स्टॉक सुविधा न होने पर उन्हें कटाई के एकदम बाद अपना उत्पाद बेचना पड़ता था। साख की उपलब्धि होने पर किसान कुछ समय के लिए अपने उत्पाद को अच्छी कीमत लेने से रोक सकते हैं लेकिन साख के लिए संस्थागत की बिल्कुल कमी थी और किसान आमतौर पर पैसा उधार देने वालों पर निर्भर करते थे जिसका मुख्य उद्देश्य किसान का शोषण करना था। वास्तव

में पैसा उधार देनेवाले किसान को बाजार कीमत से कम कीमत पर अपने उत्पाद को बेचने के लिए दबाव डालते थे और इसके बदले उन्हें ऋण दिया जाता था।

## कृषि बाजार को सुधारने में सरकार द्वारा उपाय
## (Government Measures to Improve the System of Agricultural Marketing)

आजादी के पश्चात् कृषि बाजार को सुधारने के लिए काफी उपाय अपनाए गए। जो इस प्रकार दिए गए हैं-

1. **नियमित बाजार का संगठन (Organisation of Regulated Market):** नियमित बाजार किसानों, बिक्री क्रेता तथा दलालों की धोखाधड़ी से बचाने के लिए संगठित किए। इस तरह के बाजार का प्रबंधन बाजार कमेटी द्वारा किया गया जिसमें सरकार, आढ़ती, दलाल, किसान आदि के नुमाइंदे थे। सरकार द्वारा यह कमेटी निश्चित समय के लिए बनाई जाती है। इस कमेटी द्वारा महत्वपूर्ण कार्य किए जाते हैं-(i) भार, दलाली आदि के लिए फीस निश्चित करना, (ii) आढ़तियों द्वारा अवैधानिक कटौती और गलत तरीके रोकना, (iii) सही (प्रमाणित) वजन का प्रयोग करने पर दबाव, (iv) किसानों को सही तथा पूरे आँकड़े प्रदान करना, (v) बाजार से उत्पन्न होनेवाले झगड़े निपटाना।

   जैसा कि ऊपर बताया गया है संगठित बाजार से अनियमित बाजारों की अधिकतर कमियाँ दूर हुई हैं। इस तरह के बाजारों में आढ़तियों, दलालों को काम करने के लिए लाइसेंस दिए गए। यदि ये गलत तरीके अपनाते हैं तो इसके लाइसेंस रद्द किए जा सकते हैं। यह आशा की गई कि किसान अपनी फसल का उचित मूल्य प्राप्त कर सकेंगे।

   इन बाजारों को नियमित करने का काम बरार में 1897 में शुरू हुआ था। लेकिन सरकार की कम रुचि की वजह से इनकी गति धीमी थी जो 1950-51 में इनकी संख्या 265 थी। अभी इनकी संख्या 7062 है। लेकिन अब भी इनको सही रूप देने के लिए बोर्ड के पास आवश्यक मशीनरी नहीं है।

2. **ग्रेडिंग और प्रामाणिकता (Grading and Standardisation):** कृषि बाजार में सुधार तब तक संभव नहीं जब तक कृषि उत्पाद की ग्रेडिंग व जाँचता की सही कोशिश न की जाए। सरकार ने इसकी महत्ता को जल्दी ही भाँप लिया तथा 1937 में सरकारी उत्पाद (ग्रेडिंग और बाजार) एक्ट पास किया गया तथा 159 कृषि वस्तुओं की ग्रेडिंग आरम्भ की गई। सरकार ने कानपुर में सेंट्रल क्वालिटी कंट्रोल लेबोरेट्री की भी स्थापना की। महत्त्वपूर्ण उत्पाद के नमूने बाजार से लेकर उनकी लेबोट्रेरी उनकी फिजिकल व कैमिकल गुण की जाँच की जाती थी। इसी के आधार पर ग्रेड आदि का नाम देकर उसे AGMARK सील प्रदान की गई। महत्त्वपूर्ण फसल जैसे कॉटन, घी, क्रीम, बटर, अंडा, चावल, गेहूँ, दालें, शहद, मसाले इत्यादि को AGMARK नाम दिया गया।

3. **सही माप (वजन) का प्रयोग (Use of Standard Weight):** किसानों को धोखा देने के लिए आढ़ती गैर-प्रमाणित वजन का प्रयोग करते थे। इसको रोकने के लिए सरकार ने कई कदम उठाए। 1939 में प्रमाणित एक्ट पास किया गया। यह एक्ट राज्य सरकार के लिए मॉडल के रूप में केन्द्र सरकार द्वारा पास किया गया ताकि इस बिनाह पर राज्य सरकार अपना कानून बना सके। केन्द्रीय सरकार द्वारा, विधानसभा में पास होने

के बाद 1958 में मैट्रिक सिस्टम अपनाया गया। इस पद्धति ने पुराने तरीके को अथवा पुरानी पद्धति को बदलकर सारे देश में एक तरह का भार लागू किया। लेकिन अब भी कई राज्यों में पुरानी पद्धति पाई जाती है।

4. **गोदाम व स्टॉक सुविधाएँ (Godowns and Storage Facilities):** यह भी आवश्यक है कि सारे देश में गोदाम सुविधाएं प्रदान की जाएं ताकि किसानों को फसल कटाई के एकदम बाद फसल बेचनी न पड़े। इससे किसानों में मोलभाव की शक्ति बढ़ेगी तथा उनमें अपनी फसल को बेचने का दबाव भी नहीं होगा। गोडाउन में उत्पाद के स्टॉक की रसीद के आधार पर या इसके विरुद्ध वे वाणिज्य बैंक तथा सहकारी साख समितियों से ऋण ले सकेंगे। इससे रुकने की शक्ति बढ़ेगी तथा किसान अच्छी कीमत मिलने तक अपनी फसल बेचने का इंतजार कर सकते हैं।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए ग्रामीण साख सर्वेक्षण कमेटी 1954 ने तीन प्रकार की स्टॉक पद्धति की सिफारिश की है-(i) राष्ट्र स्तर पर, (ii) गाँव और ग्रामीण स्तर पर, (iii) राज्य और जिला स्तर पर। इन बातों के आधार पर 1957 में सेंट्रल वेयरहाउसिंग कॉरपोरेशन स्थापित किया और अधिकतर राज्यों में स्टेट वेयरहाउसिंग कॉरपोरेशन बनाने में इसका अनुसरण किया गया। राष्ट्र स्तर पर फूड कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया की स्थापना हुई। छठी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत खासतौर पर छोटे तथा सीमांत किसानों के लिए यह सुविधा मुहैया कराई गई।

4. **बाजार सूचना का प्रसारण (Dissemination of Market Information):** विभिन्न बाजारों में प्रचलित कीमत के बारे में जानकारी के लिए सरकार ने बहुत कदम उठाए। उदाहरण के तौर पर रोजाना रेडियो से कीमतों के स्तर के बारे में बताया जाता था और इसके संदर्भ में साप्ताहिक कार्यक्रम भी प्रसारित किए जाते थे। दूरदर्शन पर भी बाजार संबंधित जानकारी प्रसारित की जाती थी। अखबारों के द्वारा भी कीमतों के बारे में प्रकाशन किया जाता है।

5. **बाजारीकरण और निरीक्षण के लिए निदेशालय (Directorate of Marketing and Inspection):** भारत सरकार द्वारा विभिन्न स्तर पर कृषि बाजार क्रियाओं में समन्वय स्थापित करने के लिए निदेशालय की स्थापना की। निजी स्टॉक तथा कोल्ड स्टोरेज बनाने के लिए निजी निवेश को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने 1997 में आदेश पास किए।

इसमें भी 159 कृषि वस्तुओं के ग्रेड से संबंधित व्यवस्था की। 44 कृषि वस्तुओं की तरह निर्यात से पहले सभी वस्तुओं के लिए क्वालिटी कंट्रोल का प्रावधान आवश्यक है। निदेशालय ने 1980 में कोल्ड स्टोरेज की स्थापना की जो बिहार, हरियाणा, राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश और वेस्ट बंगाल को छोड़कर पूरे देश पर लागू होगा। इसने (निदेशालय) कुछ नियमित बाजारों में सुविधाओं के लिए केन्द्रीय सहायता के लिए स्कीम भी बनाई।

6. **सरकारी खरीद व समर्थित कीमत का निर्धारण (Government Purchases and Fixation of Support Price):** सरकार ने समय-समय पर विभिन्न कृषि वस्तुओं के लिए समय-समय पर न्यूनतम समर्थित कीमत तथा वसूली कीमत निश्चित की ताकि किसानों को अपनी फसल का सही मूल्य मिल सके। ये कीमतें कृषि कीमतों और लागतों के कमीशन के निर्देश पर निश्चित की गई। सरकारी एजेंसी जैसे FCI कृषि

वस्तुओं के सही कीमत पर किसानों से खरीदती हैं और इसके बदले सरकार PDS के द्वारा ठीक कीमत पर बेचती है। इससे दो फायदे हैं-(i) उस कीमत पर इन वस्तुओं को खरीदना जिससे उत्पादकों को कुछ लाभ भी मिले, (ii) उपभोक्ताओं को कम कीमत पर माल की पूर्ति।

7. **कृषि बाजार के लिए राष्ट्रीय संस्थान (National Institute of Agricultural Marketing):** 1988 में कृषि बाजार के लिए राष्ट्रीय संस्थान (NIAM) की स्थापना की जिसे कृषि बाजार का केन्द्र कहा जाता था। इसके मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थे-शोध की व्यवस्था करना तथा ट्रेनिंग की व्यवस्था भी करना ताकि कृषि बाजार संबंधी समस्याओं से निपटा जा सके। इसके साथ-साथ कृषि बाजार में सुविधाएँ बढ़ाने के लिए शैक्षिक कार्यक्रम भी दिए गए।

8. **फल व सब्जी बाजार (Fruit and Vegetable Marketing):** भारत में बाजार सुधार अधिकतर खाद्यान्न वस्तुओं के व्यापार के लिए ही किए गए हैं और फल तथा सब्जी के बाजार की ओर कम ध्यान दिया गया। सब्जी व फल बाजार में मध्यस्थों की संख्या काफी मात्रा में है और उत्पाद कीमत तथा उपभोग कीमत में बहुत अधिक अंतर है। 1981 के आँकड़ों के अनुसार 102 फल व सब्जी के बाजार पाए गए। जिसमें केवल 54 ही नियमित थे। 1988-89 के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार फल सब्जी की कीमत उत्पादन कीमत से नहीं बल्कि बाजार की माँग व पूर्ति पर निर्भर करती है। यही एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ सरकार को अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

यद्यपि बाजार प्रक्रिया में किए गए सुधारों से बाजार की स्थिति में काफी सुधार आया है। लेकिन इन सबका फायदा बड़े किसानों को ज्यादा मिला है। यद्यपि छोटे व सीमांत किसान साख आवश्यकताएं पूरा करने के लिए अपनी फसल महाजनों को बेच देते हैं। इसके बदले उन्हें बाजार कीमत की अपेक्षा अपने उत्पाद की कम कीमत मिलती है। इस समस्या से निजात पाने के लिए सरकार ने बाजार की स्थापना की ताकि सहकारी बाजारों की सहायता से उन्हें अपने उत्पाद की सही कीमत मिल सके। इसी प्रकार **सहकारी बाजार** से होनेवाले फायदे इस प्रकार दिए गए हैं-

1. **किसानों की मोल-भाव शक्ति में सुधार (Increases bargaining strength of the farmers):** वर्तमान कृषि बाजार में काफी खामियाँ हैं जिससे चतुर मध्यस्थ तथा दलाल किसानों की अनभिज्ञता तथा साक्षरता का लाभ उठाते हैं। यदि किसान हाथ मिला लें और सहकारिता की स्थापना करें तो वे इस तरह की धोखाधड़ी से बच सकते हैं। अलग-अलग बाजार में अपना उत्पाद बेचने की बजाय उन्हें इकट्ठा करके एक एजेंसी को बेचना चाहिए इससे उनकी मोल-भाव की शक्ति बढ़ेगी।

2. **खरीदनेवाले से सीधा संबंध (Direct dealing wigh direct Byers):** कुछ निश्चित जगह, सहकारिता मध्यस्थों को छोड़कर खरीददार से सीधा संबंध स्थापित कर सकती है जिससे उनके शोषण में कमी आएगी तथा अच्छी कीमत मिलेगी।

3. **साख की व्यवस्था (Provision of Credit):** बाजार सहकारिता किसानों को साख सुविधाएँ भी मुहैया कराती है ताकि किसानों को कटाई के तुरन्द बाद अपनी फसल को बेचने के लिए बाध्य न होना पड़े। इससे किसानों को अच्छी कीमत मिलेगी।

4. **आसान व सस्ता यातायात (Easier and Cheaper Transport):** इन संस्थाओं से जो यातायात दिलवाया जाता है वह सस्ता होता है। बहुत बार इन संस्थाओं के पास अपना यातायात का साधन होता है। इससे भी बाजार में माल पहुँचाने की लागत में कमी आएगी।

5. **स्टॉक सुविधाएँ (Storage Facilities):** आमतौर पर सहकारी बाजार संस्थाओं के पास स्टॉक सुविधाएँ उपलब्ध रहती हैं किसान अच्छी कीमत के लिए इंतजार कर सकते हैं क्योंकि उनको वर्षा, कीड़े मकौड़ों से फसल खराब होने का खतरा नहीं रहता।

6. **बाजार की सूचनाएँ (Market Intelligence):** सरकारी बाजार कीमत, माँग व पूर्ति तथा कृषि से संबंधित दूसरी जानकारी भी इकट्ठा करती हैं और इसके अनुसार ही अपनी योजना बनाती है।

7. **बाजार कीमतों पर प्रभाव (Influencing Market Prices):** पहले बाजार कीमतें मध्यस्थों, व्यापारियों द्वारा तय की जाती थी तथा लाचार किसान को वही कीमत स्वीकार करनी पड़ती थी जिसकी उन्होंने घोषणा की है। सहकारिता ने इस सारे पैमाने को बदल दिया है। शक्तिशाली स्पष्टकारिता मोल-भाव करके अपने उत्पाद की अच्छी कीमत प्राप्त कर चुकी है।

8. **उपभोग वस्तुओं तथा आगत का प्रबंध (Provision of input and consumer goods):** सहकारिताएँ आसानी से कृषि आगत जैसे बीज, खाद, दवाइयाँ इत्यादि का और उपभोग वस्तुओं का आसानी से प्रबंध कर सकती है। इसको वे कम कीमत पर प्राप्त कर अपने सदस्यों को बाँटते हैं।

इसके बावजूद भी सहकारिता किसानों में विश्वास की भावना तथा साथ काम करने की भावना पैदा करती है। इससे कृषि उत्पाद के बाजार आधिक्य में व द्धि होगी और किसान सही नियोजन के तहत फसल के तरीके को भी प्रभावित कर सकते हैं।

इन सब बातों के अथवा लाभों के बावजूद भी सहकारी बाजार संस्थाओं की संख्या सही नहीं है। वर्तमान में केवल 2633 की संख्या उपलब्ध है। सहकारी बाजार संस्थाओं द्वारा 1500 करोड़ रुपये का उत्पादन का लेन-देन है जो 1980-81 में 1,950 करोड़ रुपये का था। यदि इसकी सक्षमता को देखा जाए तो संतुष्टि से परे है और काफी मात्रा में इनको नुकसान उठाना पड़ रहा है।

इसका मुख्य कारण अधिकतर सहकारिताओं का नियन्त्रण बड़े किसानों के हाथ में है। ग्रामीण क्षेत्र पर बड़े किसानों का पूरा नियंत्रण है। इस वजह से छोटे तथा सीमांत किसानों को इसका पूरा फायदा नहीं मिला जिनके लिए ये बनाई गई थी। स्टॉक सुविधाएँ भी भरपूर मात्रा में उपलब्ध नहीं है न ही यातायात के साधन तथा उत्पादन के ग्रेडिंग की पूरी व्यवस्था है।

ये सहकारिताएँ तभी कामयाब हो सकती हैं यदि सरकार इनको सुधारने के लिए प्रभावी कदम उठाए तथा स्टॉक सुविधा, यातायात सुविधा आदि जुटाने के लिए धन मुहैया कराए।

# अध्याय-12
# खाद्य (भोजन) सुरक्षाः भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली
# (Food Security: Public Distribution System (PDS) in India)

भारत में गरीबी वाले अध्याय में हम पहले ही बता चुके हैं कि काफी संख्या में लोग गरीबी रेखा से नीचे रहते हैं। इसका मुख्य एक कारण खाद्य समस्या भी है। भारत में लंबे समय से खाद्य की कमी रही है। अकाल, सूखा तथा युद्ध से ये समस्या और भी बढ़ी है और सरकार ने इससे उभरने के लिए समय-समय पर कदम उठाए हैं। इसके लिए सरकार ने खाद्य जोन बनाए ताकि कमी वाले जोन के पास अधिक खाद्य वाले जोन से खाद्य पूर्ति की जा सके। इसके साथ कुछ शहरी क्षेत्रों में रासनिंग व्यवस्था भी की गई। 1960 में सरकार ने इस दिशा में कदम बढ़ाते हुए फूड कारपोरेशन ऑफ इण्डिया (FCI) और एग्रीकल्चरल प्राइस कमीशन को इकट्ठा करके इसका नाम बदलकर कमीशन फॉर एग्रीकल्चरल कोस्ट एंड प्राईस स्थापित किया।

**पी डी एस का उद्देश्य व विस्तार (Objectives and Expansion of PDS):** भारत में PDS का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को सस्ती व कम कीमतों पर उपभोक्ता वस्तु प्रदान करना था ताकि उनको बढ़ती हुई की कीमतों से बचाया जा सके। इस पद्धति को चालू रखने के लिए सरकार ने व्यापारियों व उत्पादकों से बाजार आधिक्य को खरीदना आरम्भ कर दिया। यह कीमत न्यूनतम सहारा कीमत व खुले बाजार कीमत के बीच होती थी जिसे प्रोक्यूरमेंट कीमत कहा जाता था। अन्न (चावल व गेहूँ) को राशन दुकानों के तहत उपभोक्ताओं को वितरित किया जाता है। इसके साथ (खाद्यान्न के साथ) PDS को चीनी, तेल, मिट्टी का तेल, कपड़ा, कोयला आदि के लिए भी प्रयोग किया जाता है। सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु जो PDS के तहत वितरित की जाती है वह चीनी, चावल, मिट्टी का तेल व गेहूँ है। ये चारों वस्तुएँ लगभग PDS का 86 प्रतिशत है। ज्वार, बाजरा आदि इसके अंतर्गत कम हैं तथा इसकी बिक्री केवल एक प्रतिशत है। दालें भी PDS का केवल 0.2 प्रतिशत है। भारत में PDS सारी जनसंख्या को सेवा प्रदान करता है। इसका तरीका है उन घरों को राशन कार्ड वितरित किए जाते हैं जिसके घर का सही पता हो। उचित दर दुकानों की संख्या 1960 में 0.47 लाख से बढ़कर 1984 में 3.12 लाख तथा 1999 में 4.52 लाख थी। औसत रूप से 2000 लोगों के लिए एक दुकान होती है।

1963 तक PDS के अन्तर्गत वस्तु पूर्ति 5 मिलियन टन थी, 1965 तक 14 मिलियन तथा 1980 तक लगभग 16 मिलियन टन थी। 1991-92 में 11.4 मिलियन टन चावल के निर्धारण के साथ

ऑफटेक 10.2 मिलियन टन था यह निर्धारण का 90 प्रतिशत था। इसी प्रकार गेहूँ का निर्धारण 10.4 मिलियन टन था और ऑफटेक 8.8 मिलियन टन था जो निर्धारण का 85 प्रतिशत था। इसी प्रकार यह स्थिति आगे भी उसी प्रकार रही।

PDS में निर्धारण तथा ऑफटेक का अंतर का मुख्य कारण गेहूँ तथा चावल की 'निर्गमन कीमत' (इस्यू प्राइस) बढ़ी है। जिससे बाजार कीमत तथा PDS के द्वारा निर्धारित कीमत के बीच ज्यादा अंतर नहीं रहा। उदाहरण के तौर पर 1990 व 1994 के बीच चावल तथा गेहूँ की 'निर्गमन कीमत' को चार बार दोहराया गया, इसका परिणाम 1989 की कीमतों की बजाय 1994 में यह दोगुनी थी।

इसके साथ-साथ जो PDS को खाद्यान्न प्रदान करती है इस मुख्य एजेंसी का नाम FCI हैं जो 1965 में स्थापित की गई। इस संगठन की मुख्य भूमिका खरीदना, स्टॉक यातायात, वितरण और खाद्यान्न की बिक्री करना है। एक तरफ यह किसानों को वह कीमत प्रदान करती है जो वसूली कीमत (प्रोक्यूरमेंट कीमत) से कम न हो तथा दूसरी तरफ उपभोक्ताओं को एक निर्गमन कीमत (इस्यू कीमत) पर खाद्यान्न प्रदान करने का आश्वासन देती है जो भारत सरकार द्वारा निर्धारित की गई है। यह कारपोरेशन सरकार के नाम पर बफर स्टॉक को भी (खाद्यान्न) का भी प्रबंध करती है। चावल तथा गेहूँ का उत्पादन बढ़ने से तथा PDS पर माँग में व द्धि होने पर, FCI की भूमिका बढ़ी है। इस प्रकार FCI कीमतों के नियंत्रण में अहम भूमिका अदा करता है। यह केवल देश का बफर स्टॉक बनाने में ही सक्षम नहीं बनाता बल्कि स्टॉक पर होनेवाले नुकसान को कम करने में भी सहायक होता है।

**खाद्य सुरक्षा पद्धति में कमियाँ (Flaws in Food Security System):** PDS की भारत में विभिन्न पहलुओं पर आलोचना की गई है जो इस प्रकार है-

1. **PDS से गरीबों को सीमित लाभ (Limited Benefit to Poor from PDS):** 1986-87 के NSS आँकड़ों पर आधारित विभिन्न अध्ययन दिखाते हैं कि गरीबों को PDS से अधिक फायदा नहीं हुआ। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों का PDS पर निर्भर रहनेवाले सिर्फ 16 प्रतिशत हैं। इसका अभिप्रायः खुले बाजार क्रियाओं पर गरीबों की निर्भरता ज्यादा है। इसी प्रकार नगरीय गरीब भी खुले बाजार की क्रियाओं पर ज्यादा आश्रित हैं (निर्भर हैं)। प्रो० कीर्ति एस. पारिख के अध्ययन से पता चलता है कि PDS से गरीबों को बहुत कम लाभ पहुँचता है। सभी राज्यों में सिवाय (गोआ, दमन व दीव) को छोड़कर यदि गरीबों के ऊपर एक रुपया खर्च किया जाता है तो इसका केवल 22 पैसा ही गरीबों तक पहुँचता है तथा दूसरे में यह 28 पैसा है।

   PDS के तहत उपभोक्ता वस्तुएँ प्रदान करने के बाद भी गरीबों की आय में व द्धि नहीं हुई है। यह मात्र केवल 2.01 रुपये प्रतिमाह है अथवा ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति खर्च का 2.7 प्रतिशत है। इसके विरुद्ध ग्रामीण गरीबों का फायदा 2.01 रुपये प्रतिमाह आय लाभ तथा गैर-गरीबों को यह 2.47 रुपये प्रतिमाह था। इसी प्रकार शहरी गरीबों की आय में 3.40 रुपये प्रतिमाह फायदा तथा गैर-गरीबों को 3.86 रुपये प्रतिमाह फायदा हुआ।

2. **PDS फायदों में क्षेत्रीय असमानता (Regional Desparities in PDS Benefits):** क्षेत्रीय असमानता भी एक मुख्य समस्या है। इसका मुख्य कारण राजनैतिक हस्तक्षेप है। अधिकतर राज्यों में जहाँ केन्द्र की सरकार है वे राज्य PDS का फायदा ज्यादा उठाते हैं। 1995 में आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु ने लगभग कुल का

आधा (48.7 प्रतिशत) का हिस्सा लिया जबकि बाकी भाग में आधे से थोड़ा सा ज्यादा था वितरित किया गया। इसके विरुद्ध कुछ राज्य जैसे बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश जहाँ अधिकतर जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे रहती है उनको 1995 में केवल PDS का खाद्यान्न 10.4 प्रतिशत प्राप्त हुआ।

यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इन राज्यों की स्थिति में (PDS के योगदान) व द्धि हुई है। बिहार में प्रतिव्यक्ति खाद्यान्न की मात्रा जो 1995 में 2.3 किलो थी, 1998 में बढ़ाकर 9.5 किलो की गई, उत्तर प्रदेश में 1995 में 2.9 किलो से 1998 में 8.7 किलो तथा मध्यप्रदेश में 1995 में 4.6 किलो से 1998 में 8.0 किलो की गई।

3. **शहरी पक्षपात का प्रश्न (The Question of Urban Bias):** अधिकतर अर्थशास्त्रियों ने कहा है कि PDS सिर्फ शहर तक सीमित रहा है। ग्रामीण क्षेत्र में PDS का आकार सीमित रहा है। लेकिन यह बात केवल 1960 तथा 1970 तक देखने को मिलती है कि यह केवल बड़े शहरों तक सीमित रहा है। यद्यपि ग्रामीण क्षेत्र में फैलाव के बाद यह सीमितता कम हुई है तथा इस पर प्रश्नचिह्न भी कम हुआ है। लेकिन ग्रामीण क्षेत्र में सिर्फ बढ़ावा देने से ही बात नहीं बनती बल्कि यह देखना आवश्यक है कि यह कितना प्रभावी है। यद्यपि 1991 में भारत सरकार ने रिपोर्ट प्रस्तुत की थी कि लगभग 75 प्रतिशत राशन दुकानें ग्रामीण क्षेत्र में हैं लेकिन यदि इसके प्रभाव को देखा जाए तो इस पर प्रश्नचिह्न लगता है।

4. **खाद्यान्न सब्सिडी का भार (The Burden of Food Subsidy):** भारत में PDS में सब्सिडी बहुत ज्यादा है जिससे सरकार पर वित्त भार रहता है। PDS में सब्सिडी का मुख्य कारण FCI की आर्थिक लागत तथा इश्यू प्राइस के बीच अंतर है। खाद्यान्न सब्सिडी के आँकड़े देखे जाएँ तो 1972-73 में 117 करोड़, 1980-81 में 662 करोड़, 1991-92 में 2850 करोड़ और 1998-99 में 8700 करोड़ रुपये थी तथा 1999-2000 में 9200 करोड़ रुपये थी। FCI की आर्थिक लागत अधिक होने का मुख्य कारण वसूली कीमत (प्रोक्यूरमेंट कीमत) में व द्धि, स्टॉक प्रबंधन का खर्च आदि है तथा उपभोक्ताओं को कम कीमत पर खाद्यान्न वस्तुएँ प्रदान करने से दोनों के बीच अंतर लगातार बढ़ता रहता है। इसी कारण सब्सिडी के द्वारा ही इन दोनों के बीच के अंतर को कम किया है। और इसका भार सरकार को सहन करना पड़ता है।

5. **FCI के संचालन में असुचारूपन (Inefficient in Operation of FCI):** भारत में FCI के संचालन में काफी कमियाँ हैं। FCI की आर्थिक लागत प्रोक्यूरमेंट कीमत तथा वितरण व्यवस्था की वजह से बढ़ती है। इस प्रकार का प्रावधान कुछ ही राज्यों तक सीमित है। क्योंकि कुछ ही राज्यों में क षि आधिक्य की उपलब्धता है। इन राज्यों में लगभग न्यूनतम कीमत पूरा वर्ष एक जैसी रहती है इसलिए किसान कटाई के समय ही अपनी फसल को बेचने की कोशिश करते हैं। यद्यपि ये पूरे राज्यों में वितरित किया जाता है जहाँ खाद्यान्न की कमी है। इस प्रकार अधिक मात्रा में FCI का स्टॉक बहुत बार खराब हो जाता है क्योंकि इन दोनों के बीच समय का काफी अंतर रहता है। इसके साथ माल खराब होने पर इसकी लागत में व द्धि की संभावना रहती है।

6. **PDS से कीमतों में व द्धि (PDS results in price increase):** अधिक मात्रा में स्टॉक करने से खुले बाजार में माल की उपलब्धता कम रहती है जिससे कीमतों में व द्धि हो जाती है। क्योंकि माँग की अपेक्षा खाद्यान्न की पूर्ति कम है। बाजार में कम पूर्ति

का फायदा उठाते हुए व्यापारी खुले बाजार में कीमतों को बढ़ाने की होड़ में लग जाते हैं और इससे कीमतें लगातार बढ़ती रहती हैं। यह दोहरी बाजार पद्धति-खुले बाजार तथा PDS से गरीबों का नुकसान रहता है। जैसे हमने पहले ही बताया है कि PDS गरीबों की कुछ ही जरूरतों को पूरा करते हैं। इसलिए वे बाजार से खरीदने के लिए मजबूर होते हैं जहाँ कीमतें ज्यादा हैं। यद्यपि PDS गरीबी की जरूरतें भी पूरी नहीं कर पाता तथा साथ में उनको खुली बाजार कीमतों की तरफ धकेलकर उनके विरुद्ध काम करता है। अधिकतर श्रमिक PDS का फायदा भी नहीं उठा पाते क्योंकि उनके पास सही आवास सुविधा उपलब्ध नहीं होती है जो राशन कार्ड बनवाने के लिए आवश्यक है।

## खाद्यान्न सुरक्षा पद्धति का पुनर्गठन तथा गरीबों के लिए सुरक्षा जाल
## (Reorganisation of Food Security System and Safety Net for Poor)

PDS में ऊपर कही गई कमियाँ तथा कमजोरियों को ध्यान में रखते हुए भारत में खाद्यान्न सुरक्षा पद्धति का पुनर्गठन किया गया। इसकी मुख्य सलाह इस प्रकार है-

1. **गरीबों को PDS का लक्ष्य बनाना (Targeting the PDS to the Poor):** जैसा ऊपर कहा गया है पिछले सालों से सरकार के ऊपर सब्सिडी का भार लगातार बढ़ रहा है। इसलिए इसके अन्तर्गत केवल गरीब व पिछड़े वर्गों को ही लिया जाना चाहिए। यह दो पहलुओं के तहत होना चाहिए- (i) वह व्यक्ति जिसे खाद्यान्न सब्सिडी की आवश्यकता है उनको इसके तहत लेने के लिए पहचान करनी चाहिए (ii) जो ग्रुप ऊपर कथित से संबंधित नहीं हैं उन्हें इससे बाहर करना चाहिए। यद्यपि यह पूरे देश में लागू है इसलिए जो ग्रुप से बाहर किए गए हैं उन्हें राशन कार्ड वापिस करने के लिए कहना चाहिए। यद्यपि गैर-टारगेट ग्रुप वो है जो गरीब नहीं है जैसे आयकर देनेवाले, वेतनभोगी, दुकानदार, जिनके पास टेलिफोन व्यवस्था है, जिनकी अपनी कार, अच्छी कालोनियों में घर आदि। इस प्रकार इनकी पहचान केवल सर्वेक्षण द्वारा ही संभव है।

   दूसरे वस्तुओं के प्रयोग (उपभोग) पर आधारित पहचान, यह तभी संभव है जब उपभोक्ता का उपभोग स्तर देखा जाए कि वह किस तरह की वस्तुओं का उपभोग करता है। वह उच्च श्रेणी (चावल, गेहूँ) या घटिया किस्म (ज्वार, बाजरा) आदि का प्रयोग करता है। यह भी देखा गया है कि मध्य और उच्च आय वर्ग के लोग सिर्फ चीनी खरीदने के लिए कार्ड का प्रयोग करते हैं।

   इस संबंध में यही तर्क दिया गया है कि यह न केवल खाद्यान्न सुरक्षा प्रदान करेगा बल्कि इससे खाद्यान्न सब्सिडी में कमी आएगी और केन्द्रीय सरकार का बजट घाटा भी कम होगा। यद्यपि यह भी प्रावधान हो कि हम गैर जरूरतमंदों को ही बाहर करें न कि जरूरतमंदों को।

   इसके अन्तर्गत भी काफी कठिनाइयाँ हैं क्योंकि सब्सिडी लेने के लिए लोग गलत सूचना देते हैं। इन लोगों को बाहर करने के लिए यदि सुरक्षा प्रबंध किए जाएँ तो हो सकता है जरूरतमंद व्यक्ति इससे वंचित हों। इसलिए यही ठीक है कि जरूरतमंद व्यक्तियों के साथ गैर जरूरतमंद को शामिल करने की गलती ही ठीक है।

   यद्यपि दूसरा वस्तुओं के उपभोग के बारे में जानकारी को सफलता मिली है लेकिन

इसमें भी काफी समस्या है। क्योंकि घटिया किस्म के उत्पाद सूखा क्षेत्रों में ही उगाए जाते हैं जिसका उत्पादन अस्थिर है इनका बाजार आधिक्य भी कम है इसलिए इनके लिए पहले ही समस्या रहती है। यह भी माना जाता है कि गरीब व्यक्ति ही इसका अधिकतर उपयोग करते हैं। लेकिन यह सही नहीं है क्योंकि पिछले कुछ वर्षों में गरीबों के उपभोग स्तर में परिवर्तन आया है। गरीबों किसानों ने भी इसका (ज्वार, बाजरा आदि) उत्पादन कम किया है क्योंकि इनकी अपेक्षा गेहूँ व चावल की बाजार कीमत ज्यादा है। इसलिए इस बात से सही अंदाजा नहीं लगाया जा सकता।

2. **PDS, सार्वजनिक कार्य कार्यक्रम और सुरक्षा जाल (PDS, Public Works Programmes and Safety Net):** PDS का मुख्य उद्देश्य गरीबों को सही कीमत पर खाद्यान्न की पूरी मात्रा प्रदानकर सुरक्षा जाल की तरह कार्य करना है। यद्यपि गरीबी तथा बेरोजगारी में, PDS ही केवल सुरक्षा कवच या गरीबी खत्म करनेवाला कार्यक्रम नहीं है। रूरल वर्क्स प्रोग्राम्स (RWPs)- जैसे एम्पलायमेंट गारंटी स्कीम (EGS) महाराष्ट्र में, जवाहर रोजगार योजना (JRY) और एम्पलायमेंट एसोरेंस स्कीम (EAS) जो गरीबों को रोजगार प्रदान करती है भी सुरक्षा कवच का काम करती है। लेकिन रोजगार कार्यक्रम आय अर्जित करने वाले कार्यक्रम हैं और इनका उद्देश्य लोगों की क्रय शक्ति प्रदान करना है ताकि ये अपनी जरूरत पूरी कर सकें। PDS तो केवल वही कार्य करता है जहाँ लोगों के हाथ में पहले ही क्रय शक्ति हो। रोजगार प्रदान करनेवाले कार्यक्रम का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यही है कि ये जिन लोगों के हाथ में रोजगार नहीं है उन्हें रोजगार प्रदान करते हैं तथा उन्हीं को कार्य मिलता है जो अकुशल श्रमिक हैं।

   यद्यपि आलोचक कहते हैं कि अकेले RWP ही गरीबी को हटाने (खत्म) करने का माप नहीं है। आँकड़े दर्शाते हैं कि यदि RWP पर श्रमिक ने 300 दिन काम किया है फिर भी वह गरीबी रेखा को पार नहीं कर पाया क्योंकि मजदूरी दर कम है। अकेले RWPs इन उद्देश्यों को पूरा नहीं कर सकता। अधिकतर अर्थशास्त्रियों का मानना है कि PDS तथा रोजगार प्रदान करनेवाले कार्यक्रम साथ-साथ चलने चाहिए। इसके अन्तर्गत गरीबी स्वयं रोजगार परिवार जो सार्वजनिक कार्यों के लिए काम पर नहीं आ सकते तथा बूढ़े, लाचार, अपंग आदि को शामिल करना चाहिए। ये भी RWPs के अंतर्गत काम करने में समर्थ नहीं हैं। इसलिए अकेले RWPs ही सुरक्षा कवच का काम नहीं कर सकता। यह तभी संभव है जब PDS तथा RWPs साथ-साथ काम करें।

3. **खाद्यान्न प्रधान (टिकट) कार्यक्रमों को अपनाना (Adoption of a Food Stamps Programmes):** दूसरा तरीका यह भी है कि खाद्यान्न प्रधान कार्यक्रम लागू करना। यह भी सलाह दी थी कि PDS तथा FCI को खत्म करके लोगों को खाद्यान्न टिकट प्रदान करना जहाँ लोग अपनी क्रय का कुछ हिस्सा बाजार से इन टिकटों को दिखाकर खरीद लें। इन टिकटों के अन्तर्गत उपभोक्ता बाजार से अनाज 50 प्रतिशत की छूट पर खरीद सकते हैं। इसके अन्तर्गत आय को बढ़ाने की स्थिति में खाद्यान्न टिकटों को EGS तथा JRY के साथ जोड़ना आवश्यक है। ताकि मजदूरी के साथ-साथ श्रमिकों को खाद्यान्न टिकटें भी प्रदान की जाएं।

4. **खाद्यान्न सुरक्षा पद्धति का विकेन्द्रीकरण (Decentralisation of the food security system):** आलोचकों के अनुसार PDS की कमियों तथा कमजोरियों का कारण इसका

विकेन्द्रीयकरण भी है। इसको लागू करने में मुख्य संगठन यदि पंचायत या गांव स्तर पर संगठन होंगे तो इसकी उपयोगिता बढ़ेगी क्योंकि ये संगठन लोगों तक आसानी से खाद्यान्न पहुँचा सकेंगे। ये गरीबों की पहचान, उनकी स्थिति का अवलोकन और रोजगार तथा खाद्यान्न आवश्यकताओं के लिए कार्यक्रमों का आसानी से अवलोकन या लागू कर सकेंगे। दूसरे यह राज्य स्तर पर होना चाहिए ताकि गरीबों तथा जरूरतमंदों के लिए राज्य स्तर पर नीतियाँ बनाई जा सकें। इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय स्तर पर कीमतों का निर्धारण करने में सहायता मिलेगी और उन जगहों पर आधिक्य को आसानी से भेजा जा सकेगा। साधारण व्यापार कड़ी कमजोर है या काम नहीं कर पा रही हैं क्योंकि राष्ट्रीय स्तर पर कीमतों के निर्धारण से कीमतों की अस्थिरता को रोका जा सकेगा।

इसके साथ-साथ PDS के अन्तर्गत, लेनेवाले ग्रुप को 1995 में स्थापित राष्ट्रीय नियोजन सार्वजनिक वितरण पद्धति पर आधारित राष्ट्रीय नीति को कार्यकारी ग्रुप द्वारा स्वीकार किया गया। इसकी रिपोर्ट 1996 में प्रकाशित की गई। कार्यकारी ग्रुप ने सलाह दी कि खाद्यान्न को केन्द्र से राज्य स्तर पर बाँटने के लिए दो तरह की कीमत लागू करनी चाहिए- (i) एक गरीबों को कीमत में सब्सिडी देकर (ii) गैर-गरीबों को खुले बाजार में कीमतों में सब्सिडी प्रदानकर कार्यकारिणी ग्रुप ने कहा कि केन्द्र सरकार को 15 मिलियन टन वार्षिक प्रदान करने का प्रबंध करना चाहिए जिसमें से 12 मिलियन टन राज्य/यूनियन टैरिटरी को जनसंख्या के वितरण के लिए जो गरीबी रेखा से नीचे है। गरीबी रेखा से नीचे रहनेवाली जनसंख्या 250 मिलियन आँकी गई। इसका अभिप्रायः 12 मिलियन टन 250 मिलियन जनसंख्या में बाँटने के लिए प्रत्येक परिवार को प्रतिमाह 20 किलो खाद्यान्न प्राप्त होगा।

कार्यकारिणी ग्रुप की सलाह पर सरकार ने 1997 से टारगेटिड पब्लिक डिस्ट्रीब्यूसन सिस्टम (TPDS) लागू किया। इसके अन्तर्गत राज्य सरकार को उन लोगों की पहचान करनी चाहिए, जो गरीबी रेखा से नीचे अथवा बिलो पावर्टी लाइन (BPL) है। BPL के अंतर्गत जनसंख्या का अधिकतर आय स्तर 15000 रूपए प्रतिवर्ष रखा गया। यद्यपि TPDS के अंतर्गत सरकार का 20 किलो खाद्यान्न प्रति परिवार प्रति महीना को जो लक्ष्य था उसमें केवल 10 किलो खाद्यान्न प्रति परिवार प्रति महीना ही दिया गया। इसका मुख्य कारण BPL के अंतर्गत आनेवाले परिवारों की संख्या बढ़ती गयी और साथ में खुले बाजार की कीमतों के बीच तथा PDS के अन्तर्गत कीमत के बीच भी ज्यादा अंतर रहा जिसका फायदा गैर-गरीब वर्ग उठाते थे। इसी कारण प्रति परिवार खाद्यान्न के बंटवारे में कमी हुई।

यदि बिलो पावर्टी लाईन (BPL) तथा अबोव पावर्टी लाईन (APL) की इश्यू प्राइस को देखा जाए तो इनके बीच काफी अंतर है। 1994-95 से 1996-97 में गेहूँ की इश्यू प्राईस (IP) 402 प्रति क्विंटल थी तथा चावल की 537 प्रति क्विंटल थी। TPDS अपनाने के बाद 1997-98 में गेहूँ की IP काटकर 402 प्रति क्विंटल से घटाकर 250 रुपए क्विंटल की गई, ये सिर्फ BPL परिवारों के लिए थी APL परिवारों के लिए IP बढ़ाकर 402 रूपए प्रति क्विंटल की बजाय 450 रूपए प्रति क्विंटल गेहूं के लिए तथा चावल के लिए BPL के लिए 537 रूपए से घटाकर 350 रूपए प्रति क्विंटल तथा APL के लिए IP 537 रूपए प्रति क्विंटल से बढ़ाकर 700 रूपए प्रति क्विंटल की गयी। यद्यपि गेहूं व चावल की आर्थिक लागत 808 रूपए तथा 1076 रूपए प्रति क्विंटल थी इसलिए APL ग्रुप के लिए सब्सिडी काफी कम थी। इसलिए सरकार पर APL को प्रदान करने वाली सब्सिडी के भार में कमी आई। इसके साथ 1998-99 में BPL को देनेवाली सब्सिडी में कोई

परिवर्तन नहीं किया।

सब्सिडी का अधिक भार होते हुए भी TPDS की काफी आलोचना हुई क्योंकि इसके अंतर्गत राशन पैमाना जो 10 किलो प्रतिमाह प्रति BPL परिवार को दिया गया वह कम था क्योंकि एक परिवार की औसत जरूरत लगभग 30 किलो प्रतिमाह है।

इस आलोचना के बावजूद TPDS के अन्तर्गत फायदा उठानेवाले परिवारों की पहचान भी सही नहीं है। यह पता लगाना कि यह परिवार BPL से नीचे है काफी मुश्किल है क्योंकि लोग इसके अन्तर्गत फायदा लेने के लिए गलत सूचना प्रदान करते हैं। यदि आय के आधार पर इनकी पहचान की जाए तब भी काफी मुश्किल है क्योंकि परिवार की आय सीमित साधनों से न होकर असीमित साधनों से है जैसे क षि क्षेत्र में मौसमी व्यवसाय (कार्य)। अधिकतर परिवार स्वयं रोजगार से आय अर्जित करते हैं जो समय-समय अथवा दिन-प्रतिदिन परिवर्तित होती रहती है।

TPDS के अन्तर्गत भ्रष्टाचार को भी बढ़ावा मिला है जो परिवार APL से ऊपर है वे गलत सूचना प्रदान कर BPL के अंतर्गत आनेवाली वस्तुओं को भ्रष्टाचार से खुले बाजार में अधिक कीमतों पर बेचते हैं।

TPDS के पक्ष में एक ही बात जाती है कि यह सरकार का सब्सिडी का भार कम करने में सहायता करेगी क्योंकि यदि फायदा उठाने वालों की संख्या कम होगी तो अपने आप ही सब्सिडी में कमी आएगी।

# अध्याय-13
# औद्योगिक नीति
# (Industrial Policy)

### Introduction

भारत जैसे विकासशील देश के लिए औद्योगिक नीति का विशेष महत्त्व है क्योंकि औद्योगिक विकास व स्वरूप किसी देश की औद्योगिक नीति पर निर्भर करता है। भारत जैसे देश जहाँ विशाल प्राक तिक संसाधन उपलब्ध होते हुए भी विकास की गति काफी धीमी रही है, इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

### औद्योगिक नीति का अर्थ
### (Meaning of Industrial Policy)

किसी औद्योगिक नीति के मुख्य रूप से दो अंग होते हैं।

(1) किसी समाज की चिंतनीय विचारधारा जो औद्योगिक संव द्धि का स्वरूप निश्चित करती है।

(2) इसे कार्यान्वित करनेवाले नियम तथा उपकरण, जो इस नीति के पीछे निहित विचारधारा को व्यवहारिक रूप प्रदान करते हैं।

औद्योगिक विकास के लिए एक सटीक व प्रगतिशील औद्योगिक नीति की आवश्यकता है। औद्योगिक नीति से अभिप्राय उन विभिन्न सिद्धाँतों एवं क्रियाओं से है जो देश में औद्योगीकरण की सहायता के लिए बनाई तथा अपनाई जाती हैं।

इसके अंतर्गत कर प्रणाली, संरक्षण नीति, श्रम व पूँजी, लघु व कुटीर उद्योग, विदेशी पूँजी तथा उससे संबंधित सभी बातों का अध्ययन किया जाता है। संक्षेप में औद्योगिक नीति एक ऐसा उपकरण है जिसकी सहायता से सरकार विकास प्रक्रिया में भाग लेती है।

स्वतंत्रता से पूर्व औद्योगिक विकास का कार्य निजी क्षेत्र पर निर्भर था तथा सरकार की नीति उद्योगों में हस्तक्षेप न करने की नीति थी। पिछले 42 वर्षों से सरकार औद्योगिक विकास को पूर्ण रूप से नियंत्रित कर रही है।

### औद्योगिक नीति का महत्त्व
### (Importance of Industrial Policy)

अल्पविकसित देशों के समुचित विकास के लिए सरकारी हस्तक्षेप व सहयोग अथवा उचित सरकारी औद्योगिक नीति अनिवार्य है। औद्योगिक नीति का महत्त्व निम्न तथ्यों से स्पष्ट होता है -

(1) **निजी क्षेत्र का विनियमन (Regulation of Private Sector) –** अल्पविकसित देशों में संसाधन सीमित होते हैं तथा विकास-कार्यक्रम आयोजन द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा हो, वहाँ योजनाओं की प्राथमिकता के अनुसार संसाधनों का पूर्ण दोहन करना आवश्यक होता है तो सरकार का निजी क्षेत्र पर नियंत्रण करना आवश्यक हो जाता है। निजी क्षेत्र को योजनाओं में निर्धारित प्राथमिकताओं के अनुसार ही उत्पादन करना होता है। ताकि निजी क्षेत्र का आयोजन में निर्धारित दिशा की और ही अनुगमन करे, निजी क्षेत्र का विनियमन करना आवश्यक होता है।

(2) **निजी क्षेत्र की सीमित क्षमता (Limited Capacity of Private Sector) –** निजी क्षेत्र भारत जैसे बड़े देश में औद्योगीकरण के विशाल कार्य के लिए पर्याप्त मात्रा में साधन जुटा व लगा नहीं सकता और न ही जोखिम उठा सकता है क्योंकि निजी क्षेत्र के साधन सीमित होते हैं। अतः सरकारी सहभागिता की बड़े पैमाने पर आवश्यकता है। सरकार द्वारा अधिक पूँजी व जोखिम वाले सार्वजनिक हित के उद्योगों की स्वयं स्थापना करनी पड़ती है। सरकार सड़कों, बिजलीघरों, रेल, शिक्षा व स्वास्थ्य तथा इस्पात जैसे भारी तथा आधारभूत उद्योगों आदि का विकास करती है। इससे निजी क्षेत्र को भी प्रोत्साहन प्राप्त होता है। सार्वजनिक क्षेत्र के सहायक के रूप में निजी क्षेत्र उपभोक्ता वस्तु उद्योगों का विकास करते हैं। इन उद्योगों से जल्दी लाभ प्राप्त होता है। कुछ अन्य परियोजनाओं में सरकार व निजी उद्यमी मिलकर कार्य कर सकते हैं।

(3) **विदेशी क्षेत्र (Foreign Sector) –** औद्योगिक विकास के किसी कार्यक्रम के लिए विशेष तौर पर आरम्भिक अवस्था में, विदेश व्यापार, विदेशी सहायता, संरक्षण आदि के संबंध में किसी न किसी प्रकार की आर्थिक नीति पर निर्भर रहना पड़ता है। घरेलू आर्थिक कार्यकलापों पर इन नीतियों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः इस व्यवस्था के लिए कि यह दोनों क्षेत्र (घरेलू तथा विदेशी) विकास-कार्यक्रमों द्वारा निर्धारित ढंग से काम करें, एक व्यापक औद्योगिक नीति क्षेत्र और विदेशी क्षेत्र के कार्यकलापों के बीच स्वस्थ संबंध व तालमेल पैदा किया जा सके।

# स्वतंत्र भारत की औद्योगिक नीति
## (The Industrial Policy in Free India)

भारत सरकार ने 1948 से 1991 तक छः औद्योगिक नीतियों का निर्माण किया है जिसमें पहली औद्योगिक नीति 6 अप्रैल 1948, दूसरी नीति 1956, तीसरी दिसंबर 1977, चौथी जुलाई 1980, पाँचवी नीति मई 1990 तथा छठी नीति 24 जुलाई 1991 में लागू हुई।

### स्वतंत्रता से पूर्व

स्वतंत्रता से पूर्व अंग्रेजों ने ऐसी नीति अपना रखी थी जिससे भारत में उद्योगों का विकास रुक गया और पहले से मौजूद कुछ उपभोग वस्तुओं से संबंधित उद्योगों का विकास हुआ व भारी तथा आधारभूत उद्योगों के विकास का सूत्रपात भी नहीं हो सका, वस्तुतः इस औद्योगिक नीति के पीछे एक ऐसी चाल थी जो ब्रिटेन के औद्योगिक विकास के अनुकूल व भारत के प्रतिकूल थी। 1947 में जो औद्योगिक ढाँचा हमें सौंपा गया उस पर प्रगति विरोधी औद्योगिक नीति की स्पष्ट छाप थी। जब भारत आजाद हुआ था उस समय देश में कुछ उपभोग वस्तु उद्योगों की प्रधानता थी। राष्ट्रीय आय में उद्योगों का योगदान बहुत कम था।

## 1948 की औद्योगिक नीति
## (Industrial Policy of 1948)

6 अप्रैल, 1948 को उद्योग मंत्री डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने संसद में पहली औद्योगिक नीति की घोषणा की। उन्होंने अर्थव्यवस्था के इस ढाँचे के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था व आयोजन प्रणाली को ठीक समझा। इसके अन्तर्गत सरकारी अथवा सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र का विभाजन किया गया व दोनों क्षेत्रों के लिए अलग-अलग उद्योगों का निर्धारण किया गया। निजी क्षेत्र के नियंत्रण तथा विनियमन की भी व्यवस्था की गई थी जिससे कि उसका परिचालन देश के हित के अनुकूल सरकार की इच्छा के अनुरूप संभव हो सके।

## 1948 की औद्योगिक नीति की मुख्य विशेषताएँ
## (Main Features of Industrial Policy of 1948)

(1) **उद्योगों का वर्गीकरण (Classification of Industries) –** इस परियोजन के लिए उद्योगों को चार मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया गया व उनके संबंध में सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के कार्यभाग को निश्चित किया गया। ये चार भाग हैं।

(i) **सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) –** इनमें हथियारों तथा गोला-बारूद के निर्माण, परमाणु शक्ति के उत्पादन व नियंत्रण तथा रेल परिवहन के स्वामित्त्व और प्रबंध संबंधी उद्योग शामिल किए गए। यहाँ यह भी उल्लेख किया गया कि सरकार किसी भी ऐसे उद्योग को अपने हाथ में ले सकती है, जो राष्ट्र की सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण हों।

(ii) **नियंत्रित निजी क्षेत्र (Controlled Private Sector) –** इस श्रेणी में कुछ आधारमूलक उद्योगों को शामिल किया गया। इन उद्योगों की संख्या 18 थी। इनमें नमक, मोटरगाड़ियाँ, ट्रैक्टर, विद्युत, इंजीनियरी, भारी मशीनें, मशीनी औजार, भारी रसायन, उर्वरक, विद्युत रसायन, अलौह धातु उद्योग, रबर निर्मित माल, सूती तथा ऊनी कपड़ा, सीमेन्ट, चीनी कागज तथा अखबारी कागज, वायुयान तथा समुद्री परिवहन, खनिज तथा सुरक्षा से सम्बद्ध उद्योग आदि आते हैं।

(iii) **सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र (Public and Private Sector) –** इस श्रेणी में लोहा तथा कोयला, इस्पात, वायुयान विनिर्माण, जलयान-निर्माण, रेडियो सेटों आदि को छोड़कर टेलीग्राफ तथा बेतार के यंत्रों का निर्माण व खनिज तेल आदि शामिल थे। इन उद्योगों में नई इकाईयाँ लगाने का अधिकार सरकार को दिया गया व पहले से लगी इकाईयों का प्रबंध व विस्तार 10 वर्षों तक निजी क्षेत्र को सौंपा गया। उनके राष्ट्रीयकरण करने के प्रश्न पर 10 वर्ष बाद विचार किया जाएगा व राष्ट्रीयकरण करने की स्थिति में उनको मुआवजा दिया जाएगा।

(iv) **निजी तथा सहकारी क्षेत्र (Private and Co-operative Sector) –** इस वर्ग में शेष वे सभी उद्योग रखे गए जिन्हें निजी स्वामित्त्व अथवा सहकारी आधार पर चलाया जाएगा। यह भी निश्चय किया गया कि अगर कोई उद्योग संतोषजनक कार्य न करे तो उसके कार्य में सरकार को हस्तक्षेप करने का अधिकार होगा।

(2) **लघु तथा कुटीर उद्योग (Small Scale and Cottage Industries) –** इस नीति में इन उद्योगों को अधिक महत्त्व दिया गया क्योंकि ये व्यक्तिगत, ग्रामीण तथा सरकारी उद्यमों के विकास के लिए क्षेत्र प्रदान करते हैं और स्थापित लोगों के लिए पुनर्वास का जरिया मुहैया करवाते हैं। स्थानीय साधनों का प्रयोग, उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में कार्यकुशलता प्राप्त करने तथा अधिक रोजगार उत्पन्न करने के लिए उद्योगों की तीव्र उन्नति पर विशेष बल दिया गया। इस नीति में इन उद्योगों के विकास के लिए सरकारी सहायता देने के लिए विशेष संस्थाओं के निर्माण पर जोर दिया गया क्योंकि भारत में इन उद्याोगों को कच्चे माल, पूँजी, शक्ति, कुशल श्रम, विपणन आदि से संबंधित विभिन्न समस्याओं का दीर्घकाल से सामना करना पड़ रहा है। अतः यह आवश्यक हो गया कि केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार के सहयोग से उनका समाधान करे।

(3) **श्रम व पूँजी के संबंध (Relation of labour and Capital) –** इस नीति के उचित विकास के लिए श्रम व पूँजी के सहयोग पर जोर दिया गया। इन दोनों के बीच अच्छा संबंध स्थापित करने के लिए ऐसे वातावरण का निर्माण करना आवश्यक था जहाँ मजदूरों को उचित मजदूरी, सरकारी सुरक्षा व अन्य सुविधायें प्रदान की जाएं। अतः यह महसूस किया गया कि श्रमिकों के प्रबंधकीय कार्यों में भाग लेने तथा औद्योगिक समृद्धि में उचित हिस्सा देने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाएं।

(4) **विदेशी धंधों का भारतीयकरण –** यह स्वीकार किया गया कि देश को विदेशी पूँजी तथा उद्यमियों, मुख्यतः औद्योगिक तकनीक व जानकारी की आवश्यकता थी परंतु राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए विदेशी पूँजी पर भारतीय नियंत्रण भी आवश्यक माना गया। इसके लिए उन सभी उद्योगों में, जिनमें विदेशी पूँजी का निवेश होना था, उनके स्वामित्त्व और प्रबन्ध में भारतीयों का बहुमत रखने का सुझाव दिया गया और यह भी आवश्यक था कि इन सभी मामलों में योग्य भारतीय कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने पर जोर दिया गया।

(5) **टैरिफ नीति में परिवर्तन (Change in Teriff Policy) –** यह नीति इस प्रकार रखी जाने की घोषणा की गई कि अनुचित प्रतियोगिता को रोका जा सके और ऊँचे करों से उपभोक्ताओं पर भार न डाला जाए व साथ ही राष्ट्र के स्त्रोतों तथा साधनों का जहाँ तक संभव हो पूरा-पूरा उपयोग किया जा सके। सरकार ने बचत व निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए तथा धन के विकेन्द्रीयकरण के बारे में कर प्रणाली में परिवर्तन लाने का निश्चय किया।

(6) **सामाजिक ऊपरी लागत (Social Overhead Cost) –** परिवहन सुविधाएँ, सिंचाई, पूँजी पदार्थों, बिजली, आयात व कच्चे माल की पूर्ति में आवश्यक सुधार लाने की आवश्यकता पर जोर दिया जाए।

(7) **योजना आयोग के निर्माण पर बल –** देश के उचित विकास के लिए योजना आयोग के निर्माण की आवश्यकता अनुभव की गई ताकि प्रत्येक क्रिया एक उचित व सटीक योजना के तहत पूरी हो।

(8) **सार्वजनिक तथा निजी दोनों प्रकार के उद्यमों के महत्त्व को स्वीकारना (Accept the Importance of both type of Industries, Public & Private) –** औद्योगिक नीति के प्रस्ताव में सार्वजनिक व निजी दोनों ही प्रकार के उद्यमों के महत्त्व को स्वीकार

किया गया। ऐसा इसलिए आवश्यक था क्योंकि निजी क्षेत्र के साधन सीमित थे। वह मूल स्तर के उद्योगों का बड़े स्तर पर विकास करने की स्थिति में नहीं था। अर्थात् औद्योगिक विकास की दिशा में सरकार ने जो भी उत्तरदायित्त्व संभाला, उसके लिए भारतीय पूँजीपतियों की सहमति थी। औद्योगिक नीति में नई इकाइयों की सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापना को उपयुक्त ठहराया गया और पुरानी इकाइयों को निजी क्षेत्र मे रहने देने की नीति रखी गई।

## 1948 की औद्योगिक नीति का मूल्यांकन
## (Evaluation of the Industrial Policy of 1948)

पक्ष व विपक्ष को देखते हुए इस नीति का मूल्याँकन हम इस प्रकार कर सकते हैं।

### पक्ष

(1) 1948 की औद्योगिक नीति को भारतीय उद्योगपतियों ने समय के अनुकूल माना क्योंकि इसमें सार्वजनिक क्षेत्र की जो भूमिका निर्धारित की गई, वह सामान्यतया उन्हें स्वीकार्य थी।

(2) पिछली परम्परा को पूरी तरह से राष्ट्रहित में बदलते हुए उद्योगों के विकास के उद्देश्य से औद्योगिक नीति के नए नियम बनाए गए जिससे उद्योगों के विकास को बल मिला।

(3) इस नीति में उद्योगों के विकास के संदर्भ में सरकार की महत्त्वपूर्ण भूमिका को समझा और सरकार को इसका भार सौंपा।

(4) मुद्रा स्फीति की समाप्ति तथा अधिक उत्पादन के लिए निजी क्षेत्र के महत्त्व पर बल दिया गया।

(5) श्रम के क्षेत्र में पर्याप्त सुधार हुआ, श्रमिकों के विकास के लिए कई अधिनियम जैसे Minimum Wages Act, Employees State Insurance Act तथा The Coal Labour Welfare Act आदि पास किए गए।

(6) बोनस बाँटने की एक योजना का प्रस्ताव रखा गया तथा औद्योगिक श्रम की भलाई के लिए त्रिसूत्री औद्योगिक समिति (Triparite Industries Council) बनाई गई।

(7) इस नीति की सबसे महत्त्वपूर्ण व मुख्य बात यह है कि इसने उस मिश्रित अर्थव्यवस्था की नींव रखी जिसमें देश के आर्थिक विकास व तीव्र औद्योगीकरण के लिए निजी व सार्वजनिक क्षेत्रों के सहयोग से कार्य करना था।

### विपक्ष

इस नीति का सभी क्षेत्रों में समान रूप से स्वागत नहीं हुआ। इसकी अनेक पहलुओं से आलोचना की गई।

(1) वी.के.आर.वी. राव के अनुसार यह औद्योगिक नीति ढुलमुल थी। इसके अन्तर्गत प्राथमिकता क्रम में तालमेल का अभाव था। यही नहीं, सरकार ने नियंत्रण के लिए लाइसेंसिंग प्रणाली का प्रयोग जिस ढंग से किया, उससे भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला।

(2) प्रो० के.टी. शाह ने भी इस नीति की कुछ कारणों से आलोचना की।

(i) राष्ट्रीयकरण की धमकी से निजी क्षेत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

(ii) दूसरी ओर राज्य के उद्योगों के विकास के लिए जिम्मेदारी बढ़ती गई किंतु अनुभव, तकनीकी, वित्त तथा प्रबंधक, योजना का अभाव राज्य के औद्योगिक विकास के कार्यक्रम में बाधा बनी।

(3) इस नीति में समन्वय की भी कमी थी। इस नीति में सारी जिम्मेदारी तथा प्रेरणा सरकार पर डाल दी गई। किंतु कुछ राज्यों में सरकारों ने इस नीति के विपरीत कार्य किए जैसे सड़क यातायात का राष्ट्रीयकरण कर देना।

(4) ऐसा अनुमान लगाया गया कि सरकारी उद्यमों में लालफीताशाही तथा नौकरशाही का प्रभाव बढ़ने से वस्तुओं की किस्में घटिया होंगी व वस्तुएँ महँगी होने का भी डर था।

**निष्कर्ष (Conclusion)**

इन कमियों के बावजूद ध्यानपूर्वक देखने से स्पष्ट बोध होता है कि निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों की परिधि जो भी हो, इस नीति के अन्तर्गत औद्योगिक विकास की जिम्मेदारी मूलतः सरकार ने अपने ऊपर ले ली।

## 1956 की औद्योगिक नीति
## (Industrial Policy of 1956)

1948 में घोषित नीति के आधार पर 8 वर्षों तक भारत में औद्योगिक विकास का क्रम चला। इस काल में देश की परिस्थितियों, राष्ट्रीय लक्ष्यों तथा वैधानिक आवश्यकताओं में होनेवाले परिवर्तनों ने इस नीति में संशोधन करना अनिवार्य बना दिया। 1951 से 1956 तक भारत ने एक पँचवर्षीय योजना को पूराकर भविष्य में विकास का मार्ग तैयार किया। 1951 में उद्योग अधिनियम पास किया गया और उसके अन्तर्गत औद्योगिक विकास का अनुभव सरकार को प्राप्त हुआ। आवडी कॉंग्रेस में सत्तारूढ़ दल ने राष्ट्र का लक्ष्य 'समाजवादी समाज' की स्थापना घोषित किया। इस औद्योगिक नीति को इसी दिशा में मोड़ना आवश्यक हो गया। सरकार ने उपरोक्त कारणों से 1948 की औद्योगिक नीति में संशोधन आवश्यक समझकर 30 अप्रैल 1956 की नई नीति घोषित की। 1956 की औद्योगिक नीति के प्रस्ताव में निम्नलिखित छह उद्देश्यों का उल्लेख है, ये उद्देश्य इस प्रकार हैं।

(1) आर्थिक विकास की गति को तेज करना और औद्योगीकरण की प्रक्रिया में तेजी लाना।

(2) सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार।

(3) सहकारी क्षेत्र का विकास।

(4) मशीनें बनानेवाले भारी उद्योगों की देश में स्थापना तथा विकास।

(5) सम्पत्ति तथा आय के वितरण की असमानताओं को कम करना।

(6) आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को रोकने के लिए निजी एकाधिकारों की स्थापना को नियन्त्रित करना।

## 1956 की औद्योगिक नीति की विशेषताएँ
## (Salient Features of the Industrial Policy of 1956)

(1) **औद्योगिक क्षेत्र का विभाजन (Classification of Industries)**

(A) **केन्द्रीय सरकार का एकाधिकार क्षेत्र** - प्रथम श्रेणी में वे उद्योग थे जिन्हें नीति प्रस्ताव की अनुसूची 'अ' (Schedule A) में रखा गया। इनकी संख्या 17 थी और इनके भावी विकास का उत्तरदायित्त्व सरकार पर डाला गया। यह कहा गया कि इस क्षेत्र में आनेवाले वर्तमान निजी उद्योगों का सरकार राष्ट्रीयकरण नहीं करेगी और उन्हें विकसित होने का समुचित अवसर प्रदान करेगी। इस श्रेणी में पाँच प्रकार के उद्योग रखे गए-

(i) सुरक्षा संबंधी उद्योग- अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य युद्ध संबंधी उपकरण तथा परमाणु शक्ति।

(ii) बड़ी मशीनों का निर्माण, भारी उद्योग, लोहा व इस्पात, लोहा-इस्पात की कास्टिंग व फोजिंग तथा बिजली की मशीनें।

(iii) खनिज उद्योग- कोयला व लिग्नाइट, खनिज तेल, लोहा, मैग्नीज, क्रोम, जिप्सम, गंधक, सोना, हीरा, ताँबा, सीसा, जस्ता, टीन आदि की खानों से खुदाई तथा संसाधन।

(iv) परिवहन तथा संचार- वायु परिवहन, वायुयान निर्माण, रेल परिवहन, जलयान निर्माण, टेलीफोन, टेलीग्राफ तथा वायरलैस के उपकरण (रेडियो रिसीविंग सेट को छोड़कर)।

(v) शक्ति - बिजली का उत्पादन तथा वितरण।

(B) **सार्वजनिक तथा निजी उद्यम का मिश्रित क्षेत्र** **(Mixed Sector of Public and Private Enterprise)** - इस श्रेणी में वे उद्योग थे जिनके नाम औद्योगिक नीति प्रस्ताव की अनुसूची 'ब' (Schedule B) में दिए गए हैं। इनकी संख्या 12 थी। इनके भावी विकास की दिशा में राज्य को प्रयास करना होगा। परन्तु निजी उद्यमकर्ताओं को स्वतंत्र रूप से अथवा राज्य के साथ सहयोग करते हुए नई इकाइयों की स्थापना के अवसर प्रदान किए गए। इस श्रेणी में आनेवाले उद्योग थे एल्यूमीनियम, मशीन-औजार, लघु खनिजों के अतिरिक्त खनिज, इस्पात, लौह-मिश्रित धातु तथा औजार, औषधि-निर्माण, प्लास्टिक, रंग बनाना, आधारभूत वस्तुएँ आदि, अन्य आवश्यक औषधियाँ, उर्वरक, कृत्रिम रबर, कोल, कार्बनाइजेशन, रासायनिक कागज की लुग्दी, सड़क परिवहन तथा समुद्री परिवहन।

(C) **निजी उद्योग का क्षेत्र** **(Private Sector) –** तीसरी श्रेणी में वे उद्योग रखे गए जिनकी स्थापना निजी उद्यमकर्ता द्वारा करने की व्यवस्था थी। इस वर्ग में अनुसूची 'अ' तथा 'ब' में आनेवाले उद्योगों को छोड़कर सभी उद्योग थे। सरकार ने कहा कि वह इन उद्योगों की स्थापना में सामान्यतः प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लगी। वह उद्योगपतियों को प्रोत्साहित करने के लिए परिवहन, ऊर्जा के साधनों आदि की व्यवस्था करेगी और वित्तीय तथा कुछ अन्य रीतियों द्वारा इनके लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ तैयार करेगी। परन्तु इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि सरकार द्वारा इन उद्योगों की स्थापना के संबंध में किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं रखा गया।

(2) **निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों की आपसी निर्भरता** **(Co-Dependency of Private**

**and Public Sector)** - 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव में निजी व सार्वजनिक क्षेत्रों के मध्य उद्योगों का वर्गीकरण बेलोच नहीं था। अर्थात् आवश्यकतानुसार सरकार किसी भी वर्ग में रखे गए उद्योगों की स्थापना कर सकती थी और उद्योगपतियों को अपने लिए सुरक्षित क्षेत्र में भी उद्योग विशेष की स्थापना की अनुमति दे सकती थी। उदाहरण के लिए, मिल-मालिक अपनी इकाई की आवश्यकता पूरी करने के लिए बिजली का उत्पादन कर सकते थे, यद्यपि बिजली का उत्पादन अनुसूची 'अ' के अन्तर्गत था। इसी प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित उद्योग आवश्यक पुर्जों अथवा इस प्रकार की अन्य छोटी-छोटी वस्तुओं को निजी क्षेत्र से खरीद सकते थे। इस प्रकार इस नीति में दोनों क्षेत्रों के सह-अस्तित्त्व के साथ-साथ उनके बीच परस्पर सहयोग पर जोर दिया गया।

(3) **निजी क्षेत्र की सहायता तथा उसका नियंत्रण (Help and Control of Private Sector)** - 1956 की औद्योगिक नीति के अन्तर्गत सरकार जोखिम पूँजी (Risk Capital) और ऋण पूँजी (Share Capital) दोनों ही के रूप में निजी क्षेत्र में स्थापित होनेवाले उद्योगों को आर्थिक सहायता प्रदान कर सकती थी। परंतु निजी उद्योगों को भी राज्य की आर्थिक तथा सामाजिक नीति के अनुरूप ही व्यवहार करना आवश्यक था। इस बात को ध्यान में रखते हुए निजी क्षेत्र में स्थापित उद्योगों पर सरकारी नियंत्रण की व्यवस्था की गई।

(4) **कुटीर तथा लघु उद्योगों का महत्त्व (Importance of Cottage and Small Scale Industries)** - 1956 की औद्योगिक नीति प्रस्ताव में राष्ट्र के विकास के पहलू से कुटीर तथा लघु उद्योगों के महत्त्व को स्वीकार किया गया। ये उद्योग भारी संख्या में रोजगार के अवसर प्रस्तुत करते हैं। इनके लिए भारी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रायः इनकी स्थापना ऐसे साधनों द्वारा की जा सकती है जो बड़े उद्योगों की द ष्टि से अधिक उपयोगी नहीं होते। औद्योगिक नीति के प्रस्ताव में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया कि इन उद्योगों के विकास के लिए यदि बड़े उद्योगों के उत्पादन पर कुछ प्रतिबंध भी लगाने आवश्यक हों तो ऐसा भेदपूर्ण करारोपण अथवा प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता द्वारा किया जाए।

(5) **क्षेत्रीय असमानताओं को कम करना** - संतुलित क्षेत्रीय विकास का आदर्श अनुसरण करते हुए, इस नीति के अन्तर्गत औद्योगिक द ष्टि से पिछड़े इलाकों को पानी, बिजली तथा परिवहन की सुविधाएँ देने की तथा जिन क्षेत्रों में बेरोजगारी अधिक है, वहाँ औद्योगिक सुविधाओं का विस्तार करने की व्यवस्था की गई। औद्योगिक नीति के प्रस्ताव के अनुसार प्रत्येक क्षेत्र में कृषि और औद्योगिक विकास में संतुलन भी आवश्यक है।

(6) **तकनीकी तथा प्रबन्धकीय शिक्षा (Technical and Managerial Education)** - औद्योगिक विकास के विस्त त कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए भारत में समुचित तकनीकी और प्रबंध संबंधी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों का अभाव है। इस बात को सरकार शुरू से ही समझती है इसलिए औद्योगिक नीति के प्रस्ताव में इस अभाव को दूर करने के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना व विश्वविद्यालयों में व्यावसायिक प्रबन्ध (Business Management) की शिक्षा देने का सुझाव दिया गया।

(7) **औद्योगिक शान्ति (Industrial Peace)** - औद्योगिक विकास में श्रमिकों व मिल-मालिकों के आपसी संबंधों में सद्भावना और सहयोग होना चाहिए। परन्तु पूँजीवादी अर्थ प्रणाली

में मिल-मालिकों द्वारा श्रमिकों के शोषण के कारण दोनों वर्गों में संबंध अच्छे नहीं होते। औद्योगिक नीति के प्रस्ताव में स्वीकार किया गया कि 'समाजवादी समाज' में श्रमिकों के हितों को सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। प्रबन्धकीय मामलों में श्रमिकों के प्रतिनिधियों से परामर्श करना भी ठीक होगा। इन सभी दिशाओं में राज्य द्वारा पहल आवश्यक है।

(8) **क्षेत्रीय परस्पर निर्भरता (Sectoral Inter-dependence)** - इस औद्योगिक नीति के अनुसार सरकार को यह शक्ति दे दी गई कि वह किसी भी प्रकार का औद्योगिक उत्पादन स्वयं कर सकती है। इस नीति के आधार पर उद्योगों का तीन किस्मों में वर्गीकरण एक कठोर तथा अपरिवर्तनशील वर्गीकरण नहीं है। सरकार आवश्यकतानुसार इस वर्गीकरण में परिवर्तन कर सकती है। एक क्षेत्र के उद्योगों के विकास करने की आज्ञा दूसरे क्षेत्र को दी जा सकती है।

(9) **विदेशी पूँजी (Foreign Capital)** - विदेशी पूँजी से संबंधित नीति में काफी संशोधन किए गए और विदेशी पूँजी का बड़े पैमाने पर प्रयोग करने के लिए अधिक से अधिक छूटें प्रदान की गई।

(10) **राजकीय उद्यमों की व्यवस्था** - सार्वजनिक क्षेत्र में विकास के परिणामस्वरूप राजकीय उद्यमों का विस्तार होना स्वाभाविक है। इन सार्वजनिक प्रतिष्ठानों की सफलता के लिए इनका प्रबन्ध व्यवसायिक सिद्धाँतों के आधार पर ही होना चाहिए और प्रबंध में केन्द्रीयकरण न होकर जहाँ तक संभव हो केन्द्रीयकरण होना चाहिए।

1948 के प्रस्ताव की तुलना में 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव में सार्वजनिक क्षेत्र के विकास पर अधिक बल दिया गया। 1948 की औद्योगिक नीति में जहाँ सरकारी एकाधिकार का क्षेत्र बहुत संकुचित था वहीं 1956 की नीति में सुरक्षा संबंधी उपकरणों से संबंधित उद्योगों, परमाणु शक्ति के निर्माण और रेल परिवहन के अतिरिक्त 14 अन्य बुनियादी उद्योगों को इस श्रेणी में रखा गया। इन उद्योगों को 'अ' अनुसूची में रखा गया। इसके अलावा, 12 ऐसे उद्योगों को 'ब' अनुसूची में शामिल किया गया जिनमें राज्य बढ़ते हुए पैमाने पर नई इकाइयों की स्थापना कर सकता था। परंतु राष्ट्रीयकरण की जो 'धमकी' 1948 के प्रस्ताव में थी उसे 1956 के प्रस्ताव में उद्योगों का विभाजन भी अधिक लोचपूर्ण था। इन भिन्नताओं के होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि वास्तव में दोनों औद्योगिक नीति प्रस्तावों का उद्देश्य एक ही था, वह यह कि देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढाँचे को और मजबूत बनाना।

### जगदीश भगवती व पद्मा देसाई के शब्दों में,

''द्वितीय औद्योगिक नीति प्रस्ताव पहले प्रस्ताव से काफी समान होते हुए भी लगता है आंशिक रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के महत्त्व और सरकार की अधिक स्पष्ट समाजवादी स्थिति की ओर झुकाव के संदर्भ में निजी क्षेत्र के विकास में नियमन की आवश्यकता पर जोर देने के लिए जारी किया गया था।''

## 1956 की औद्योगिक नीति का मूल्याँकन
## (Evaluation of the Industrial Policy of 1956)

भारत की दूसरी से लेकर पाँचवी योजना (पंचवर्षीय योजना) इस औद्योगिक नीति पर आधारित रही है।

इस नीति के पक्ष व विपक्ष में तर्क -

**पक्ष-**

(1) 1948 की नीति की तरह ही इसमें भी देश के औद्योगिक विकास में सरकार के सक्रिय भाग पर बल दिया गया जो अतीत की तुलना में पूरी तरह अलग था।

(2) इस नीति के अधिक विशाल होने के साथ ही इसमें सभी पहलुओं अर्थात् राजकोषीय व मुद्रा नीति, श्रम नीति व पूँजी तथा निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति राज्य के द ष्टिकोण पर विशेष बल दिया गया है। इसमें राज्य के निर्देशक सिद्धाँतों व नीतियों का निर्माण किया गया।

(3) इस नीति की अनुकूलता का स्पष्ट बोध इस बात से होता है कि देश ने इस अवधि में उद्योग के क्षेत्र में अनेक दिशाओं में बहुत तेजी से प्रगति की। इसके परिणामों में उल्लेखनीय है- नए उद्योगों की स्थापना, विशेष रूप से आधारभूत और भारी उद्योग, औद्योगिक संव द्धि की पहले से कहीं अधिक ऊँची दर; आयात-प्रतिस्थापक उद्योगों का उदय जिसमें महत्त्वपूर्ण चीजों के लिए विदेशी स्त्रोतों पर देश की निर्भरता में भारी कमी हुई।

(4) इस नीति के अन्तर्गत निर्यात व्यापार में गैर परम्परागत वस्तुओं, विशेष रूप से इंजीनियरी वस्तुओं का महत्त्वपूर्ण स्थान; नई परियोजनाओं के निर्माण व जटिल मशीनों के चलाने के योग्य उच्च-स्तरीय कुशल व प्रशिक्षित कार्मिकों का प्रादुर्भाव (आगमन); तथा उद्योगों के विकास और अनुसंधान में बड़ी धनराशि का निवेश हुआ। स्वतंत्रता के पश्चात इस नीति का निर्माण हुआ व इसमें अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। यह नीति अत्यंत वास्तविक तथा राष्ट्रवादी प्रमाणित हुई है। इस नीति को ''भारत के आर्थिक संविधान'' की संज्ञा दी गई है। उद्योग मंत्रालय ने इसे औद्योगिक नीति का षटकोण कहकर संबोधित किया है। इसमें निम्नलिखित बातें शामिल हैं- (1) सार्वजनिक क्षेत्र का मुख्य स्थान (2) एकाधिकारी प्रव ति के विकास को रोकना (3) सुविकसित उद्योगों की औद्योगिक विपुलता (Industrial Bigness) को रोकना (4) नए उद्यमियों को प्राथमिकता देना (5) छोटे पैमाने, सहायक तथा मध्यम पैमाने के उद्योगों का गहन रूप से विकास करना, तथा (6) कार्यकुशल योग्य एवं दक्ष उद्यमियों को कठिन उद्योगों की ओर से आकर्षित करना। इस नीति के कारण कुल निवेश में सार्वजनिक क्षेत्र का भाग 46% से बढ़कर 66% तक हो गया है।

**विपक्ष**

1956 की औद्योगिक नीति यद्यपि पहली औद्योगिक नीति से अधिक स्पष्ट व लोचपूर्ण थी, फिर भी इसका सभी क्षेत्रों में समान रूप से न तो स्वागत हुआ और न ही समर्थन मिला। इस नीति के विपक्ष में ये तर्क मुख्य हैं-

(1) निजी क्षेत्रों ने इस नीति का समर्थन न के बराबर ही किया क्योंकि इसमें सार्वजनिक क्षेत्र के विकास को बहुत अधिक बढ़ावा दिया गया जिसके परिणाम भी अनुकूल न रहे और सरकार को इसके फलस्वरूप हानि उठानी पड़ रही है।

(2) इस नीति के अंतर्गत क षि व उद्योगों की परस्पर निर्भरता और एक-दूसरे को मजबूत बनाने के स्वरूप पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। धातु और रसायन पर आधारित

मशीन-उत्पादन उद्योगों पर ही ध्यान केन्द्रित रहा।

(3) बड़े पैमाने के उद्योगों के उत्पादन कार्यक्रम के साथ लघु व कुटीर उद्योगों को पूरी तरह मिलाया नहीं गया।

(4) पिछले 25 वर्षों में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय में लगभग 1.3 की दर से वार्षिक व द्धि हुई है जो विकासशील अर्थव्यवस्था की जरूरतों को पूरा करने के लिए अपर्याप्त है।

(5) बेरोजगारी बढ़ी व क्षेत्रीय असमानताएँ भी बढ़ी।

(6) निवेश दर में रुकावटें पैदा हुई व औद्योगिक उत्पादन में औसतन तीन या चार प्रतिशत से अधिक वार्षिक व द्धि नहीं हुई। औद्योगिक क्षेत्र में संकटग्रस्तता फैली और कुछ प्रमुख उद्योगों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा। उद्योगों को शहरों से हटाकर अन्य स्थानों पर फैलाने की गति धीमी रही।

(7) आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण में व द्धि हुई है।

(8) विदेशी तकनीक का अनावश्यक आयात हुआ।

(9) बड़े औद्योगिक केन्द्रों में उद्योगों का जमाव हुआ।

(10) सार्वजनिक क्षेत्र को 1980 में लगभग 192 करोड़ रूपए की हानि उठानी पड़ी।

(11) संस्थागत साख का अधिक बड़े उद्योगों द्वारा प्रयोग किया गया।

(12) पूँजीप्रेरक उद्योगों (Capital Intensive Industries) में अधिक निवेश किया गया।

(13) आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण में व द्धि हुई तथा बड़े उद्योगों की तुलना में लघु व कुटीर उद्योगों को नाममात्र का ही स्थान दिया गया।

औद्योगिक नीति की विफलताएँ मुख्य रूप से कार्यान्वयन के क्षेत्र में रही जो पाँचवी योजना के अंत तक औद्योगिक विकास के विविध पहलुओं के संबंध में देखी जा सकती है। इनमें से मुख्य हैं। एक तो अनेक उद्योगों के संबंध में पूँजी प्रधान तकनीक का प्रयोग हुआ जिससे बेरोजगारी बढ़ी। काफी बड़ी सीमा तक औद्योगिक क्षमता अप्रयुक्त पड़ी रही। आयात-प्रतिस्थापन की दौड़ में अनेक अकुशल व ऊँची लागत वाले उद्योग देश में स्थापित हो गए। इस प्रकार कुल मिलाकर औद्योगिक क्षेत्र में नीतियों का एकीकरण आशा के व निर्धारित उद्देश्यों के अनुरूप नहीं रहा।

## 1977 की औद्योगिक नीति
## (Industrial Policy of 1977)

समयबद्ध आर्थिक विकास-कार्यक्रम के द्वारा पिछली विक तियों और असंतुलनों को दूर करके लोगों की आकाँक्षाओं को पूरा करने के उद्देश्य से संसद में 23 दिसम्बर 1977 को एक नई औद्योगिक नीति की घोषणा की गई। काँग्रेस सरकार ने 23 जुलाई 1980 को इस नीति के स्थान पर एक दूसरी औद्योगिक नीति की घोषणा की है। 1977 की नीति में कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों के अवधारणात्मक ढाँचे में मूलभूत परिवर्तन लाने एवं प्रभावकारी ढंग से उनके कार्यान्वयन पर बल दिया गया।

इस औद्योगिक नीति की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित थीं -
(Main Features of the Industrial Policy of 1977)

(1) **लघु इकाइयाँ (Small Industries) -** लघु इकाईयाँ इस नीति का केन्द्र बिन्दु थी और

इस द ष्टि से यह पुरानी नीति से काफी अलग नजर आती थी। अब तक मुख्यतः बड़े उद्योगों पर ही ध्यान दिया गया। इस औद्योगिक नीति में छोटे तथा बहुत छोटे उद्योगों पर भी ध्यान विशेष रूप से दिया जाएगा। इन उद्योगों की सभी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रत्येक जिले में एक जिला केन्द्र स्थापित किया जाएगा। औद्योगिक विकास बैंक में एक ऐसे अलग कक्ष की स्थापना की जाएगी जो केवल लघु उद्योगों की आवश्यकताओं पर ही बल देगा। इन क्षेत्रों की वस्तुओं के विपणन, सह उत्पादों के मानकीकरण, किस्म, नियंत्रण, सर्वेक्षण आदि पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

(2) **उचित तकनीक (Appropriate Technology) -** इस नीति में ग्रामीण तथा लघु उद्योगों में लगे कर्मचारियों की आय कमाने की क्षमता और उत्पादकता में सुधार करने के लिए छोटी तथा साधारण किस्म की मशीनों व उपकरणों के विकास व अधिकाधिक उपयोग के लिए उचित व्यवस्था की जाएगी। उत्पादन की इस प्रकार की तकनीकों को सर्वांगीण ग्रामीण विकास कार्यक्रम (All round Rural Development Programme) के साथ समन्वय बिठाने का प्रयास किया जाएगा।

(3) **बड़े पैमाने की इकाइयाँ (Large Scale Industries) -** बड़े पैमाने के उद्योगों के संबंध में भी यह नीति काफी भिन्न थी अभी तक ये उद्योग उच्चस्तरीय तकनीक और उद्योगों के पूँजी प्रधान स्टॉक में व द्धि लाने के उपकरण मात्र बने रहे। अब इनकी भूमिका को लोगों की आधारभूत न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने, लघु व ग्रामीण उद्योगों को अधिक विस्त त क्षेत्र में फैलाने तथा क षि क्षेत्र को मजबूत बनाने के कार्यक्रमों से सम्बद्ध किया गया इसके लिए बड़े पैमाने के उद्योग के क्षेत्र को सीमित करने की व्यवस्था की गई। प्रमुख रूप से ये बुनियादी उद्योग, पूँजीगत माल उद्योग, उच्च तकनीक वाले उद्योगों तथा अन्य उद्योग जो लघु उद्योग के लिए सुरक्षित क्षेत्र से बाहर हैं, तक सीमित रखे गए।

(4) **बड़े निजी घराने -** इस बात को लेकर कि बड़े निजी घराने अपने साधनों के बल पर नहीं बल्कि सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं और बैंको से प्राप्त राशियों के सहारे और बड़े होते रहे हैं; इस नीति में इनके नियंत्रण की समुचित व्यवस्था की गई जिससे एकाधिकारी प्रव त्तियों को रोका जा सके। इसके लिए कई आवश्यक उपायों का समावेश किया गया जैसे एकाधिकार संबंधी कानून का कड़ाई के साथ पालन, विद्यमान उद्योगों के नए कार्यों में प्रवेश पर रोक, आँतरिक साधनों के स जन पर रोक आदि।

(5) **लाइसेंसिंग नीति (Licensing Policy) -** इस नीति की लाइसेंसिंग प्रणाली का उद्देश्य सरकार द्वारा बड़े औद्योगिक घरानों के कार्यों का सामाजिक तथा आर्थिक उद्देश्य के अनुरूप नियमन किया जाना था। बड़ी इकाइयों चाहे वे बड़े औद्योगिक ग्रहों से संबंधित हों या नहीं या वे पहले से ही लघु उद्योगों के लिए सुरक्षित वस्तुओं के बनाने में लगी हो; इनकी क्षमता में कोई विस्तार नहीं किया जाना था। जबकि लघु तथा कुटीर उद्योगों का विकास करना आवश्यक था।

(6) **सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) -** इस क्षेत्र को पहले से व्यापक भूमिका सौंपी गई। अब इसका कार्य केवल आधारमूलक वस्तुओं का उत्पादन करना ही नहीं होगा बल्कि इसे उपभोक्ता को आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धि बनाए रखने की भूमिका निभानी होगी। साथ ही तकनीक व प्रबंध के संबंध में अपना भरपूर सहयोग देकर विभिन्न प्रकार के लघु तथा कुटीर उद्योगों का दायित्त्व भी अपने ऊपर लेना होगा। अतः इस

बात पर बल दिया गया कि इनका प्रबंध कुशल मैनेजरों द्वारा किया जाएगा और कुशल ढंग से संचालन किया जाएगा ताकि इसमें लगी पूँजी से समाज को पर्याप्त प्रतिफल मिल सके।

(7) **विदेशी तकनीक और निवेश (Foreign Technology and Investment) -** चूँकि देश की आधारिक संरचना काफी विकसित हो चुकी थी अतः इस संबंध में चयनात्मक द ष्टिकोण अपनाया गया। देश में वैज्ञानिक संस्थानों का सुविकसित ढाँचा है। अतः भविष्य में जहाँ तक हो सके उद्योगों का विकास स्वदेशी तकनीकों के आधार पर होना चाहिए। केवल उन्हीं प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में विदेशी तकनीक की व्यवस्था रहेगी जहाँ भारतीय कौशल और प्रौद्योगिकी पर्याप्त मात्रा में विकसित नहीं है, वहाँ सरकार विदेशों से प्राप्त सर्वोत्तम तकनीक को सीधे खरीद लेने को प्राथमिकता देगी मगर जहाँ तक संभव होगा इन्हें भारतीय तकनीक के अनुकूल ढालने को ही बढ़ावा दिया जाएगा।

(8) **नए उद्योग (New Industries) -** क्षेत्रीय समानता लाने व बनाए रखने के लिए तथा शहरी जीवन में गिरावट को रोकने के लिए कम आबादी वाले इलाकों में नए उद्योग लगाने की व्यवस्था की गई। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 1971 की जनगणना के अनुसार जिन महानगरों की आबादी 10 लाख से ऊपर है और शहरी इलाके जहाँ जनसंख्या 5 लाख से अधिक है, उद्योग खोलने के लिए लाइसेंस नहीं दिए जाने थे। जो विद्यमान बड़े उद्योग पिछड़े इलाकों में जाना चाहेंगे, उनको इस कार्य के लिए सहायता देने की व्यवस्था की गई।

(9) **विदेशी व्यापार (Foreign Trade) -** इस औद्योगिक नीति का सबसे प्रमुख उद्देश्य आत्मनिर्भरता लाना है। आयात के उदारीकरण (Liberalisation of Imports) के संबंध में यह स्पष्ट किया गया कि मौजूदा प्रतिबंधों में उन क्षेत्रों में छूट दी जाएगी जहाँ ऐसे प्रतिबंध उच्च प्राथमिकता प्राप्त उद्योगों के विकास में बाधक हो। निर्यात में व द्धि के लिए सीमा व उत्पादन शुल्क से राहत दी जाएगी। कुछ स्थानों पर अनिवार्य निर्यात दायित्त्व लगाए जाएंगे।

(10) **निवेश का प्रतिफल -** उत्पादन कीमतों के संबंध में ऐसी व्यवस्था की जानी थी कि निवेश को बढ़ावा मिले। कीमतों का नियंत्रण करते समय यह ध्यान रखा जाएगा कि निवेशकर्ता को पर्याप्त प्रतिफल मिल सके और इस प्रकार निवेश को बढ़ावा मिले।

(11) **संतुलित क्षेत्रीय विकास (Balanced Regional Development) -** देश में संतुलित क्षेत्रीय विकास लाने के लिए 1971 की जनगणना के अनुसार 10 लाख से अधिक आबादी वाले महानगरों की कुछ निश्चित सीमाओं के अन्तर्गत व पाँच लाख से अधिक की आबादी वाले शहरी क्षेत्रों में नए उद्योग स्थापित करने के लिए नए लाइसेंस जारी नहीं किए जाने चाहिए। इससे असमानता कम होगी।

(12) **श्रमिकों की सहभागिता (Participation of Workers) -** इस नीति में श्रमिकों के प्रबन्धन में भाग लेने पर भी बल दिया गया और यह भी तय हुआ कि गैर-सरकारी क्षेत्रों में श्रमिकों में इस भावना का प्रबल विकास किया जाएगा कि वे अपने उद्योग को कुशलतापूर्वक चलाने के लिए अपना पूर्ण सहयोग दें।

(13) **रुग्ण इकाईयाँ (Sick Industries) -** रुग्ण अथवा बीमार इकाईयों के संबंध में सरकार चयनात्मक नीति का पालन करेगी जिससे कि ऐसी इकाइयों के चलाने से सरकार

पर पड़े बोझ को कम किया जा सके। ऐसी व्यवस्था की जाएगी कि रुग्ण इकाइयों को प्रारम्भ में ही संभाल लिया जाए और उनका पुनः स्थापन करने के लिए आवश्यक कदम शीघ्र से शीघ्र उठाए जाएं।

## 1977 की नीति का मूल्याँकन
## (Evaluation of the Policy of 1977)

निर्धारित उद्देश्यों की द ष्टि से यदि नीति को परखें, तो यह एक सीमा तक संतोषप्रद ठहरती है। इसके उद्देश्य थेः औद्योगिक व द्धि दर को तेज करना; रोजगार अवसरों को तेजी से बढ़ाना; औद्योगिक श्रमिकों की उत्पादिता और आय में व द्धि लाना तथा लघु व कुटीर उद्योगों को विस्त त क्षेत्र में फैलाना। देश में फैली बेरोजगारी और गरीबी को देखते हुए, ये उद्देश्य सही और समयोचित थे। पुरानी नीति के फलस्वरूप औद्योगिक क्षमता में जो भारी व द्धि हो चुकी थी, उस आधार पर रोजगार व द्धि और गरीबी-उन्मूलन के उद्देश्य पर जोर देना वाँछनीय ही नहीं बल्कि व्यावहारिक भी था।

उद्देश्य और समस्या की परिकल्पना को छोड़कर जब हम कार्यान्वयन के उपकरण, प्रबंध और व्यवस्था की द ष्टि से नीति को देखते हैं तब हम इसे इतना सही अथवा सराहनीय नहीं पाते। इसमें औद्योगिक कार्य-प्रणाली से प्रतिबंध हटाने पर जोर दिया गया था जिससे प्रतीत होता है कि बाजार अर्थव्यवस्था के कार्य को बढ़ाने का विचार था। अतः नीति की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी इसमें इस तथ्य की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया कि वर्तमान प्रशासन, प्रबन्ध और व्यवस्था निर्धारित कार्यक्रम के निभाने के लिए सक्षम और पर्याप्त नहीं हैं। पहले भी नीतियाँ कार्यान्वयन के स्तर पर ही विफल होती रही हैं। अतः जब तक कार्यान्वयन की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया जाएगा और इसके लिए उपकरण और व्यवस्था में आवश्यक संशोधन नहीं लाया जाएगा, तब तक वाँछित सफलता प्राप्त नहीं हो सकेगी।

## सन् 1980 की औद्योगिक नीति
## (Industrial Policy of 1980)

काँग्रेस सरकार ने 23 जुलाई, 1980 को नई औद्योगिक नीति की घोषणा की थी। यह नीति मुख्य रूप से सन् 1956 की नीति पर ही आधारित थी। जो नीति 1977 को बनाई गई थी उसमें एक दोष यह था कि इस नीति में लघु व कुटीर उद्योगों को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया था और सार्वजनिक तथा बड़े पैमाने के उद्योगों की अनदेखी की गई थी। इससे असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होने की संभावना बढ़ गई थी। 1980 के वक्तव्य में इन उद्योगों को आपस में घनिष्ठ रूप में संबद्ध ठहराया गया और यह माना गया कि इनके बीच कोई टकराव नहीं है। इस बात पर बल दिया गया कि इनके विकास को एक संयुक्त उपक्रम के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए। जुलाई 1980 के औद्योगिक नीति वक्तव्य के कार्यान्वयन के उद्देश्य से विभिन्न उपाय किए गए।

### सन् 1980 की औद्योगिक नीति की मुख्य विशेषताएँ
### (Industrial Policy of 1980)

नई औद्योगिक नीति अर्थात् सन् 1980 की नीति की विशेषताएँ-

(1) **लघु उद्योगों की निवेश सीमा में व द्धि (Increase in Investment of Small Industries) -** नई औद्योगिक नीति में लघु और सहायक उद्योगों में उन्नति के लिए

निवेश की दर बढ़ाकर क्रमशः 20 लाख और 25 लाख रूपए तक कर दी गई। अत्यंत छोटे (अति लघु) (Tiny) उद्योगों में निवेश की दर बढ़ाकर 1 लाख से 2 लाख रूपए कर दी गई और इन उद्योगों की प्रगति के लिए यह प्रस्ताव रखा गया कि कठिनाई से उपलब्ध होनेवाले माल के बफर स्टाक बनाने की योजना जारी की जाए।

(2) **हस्तशिल्प, खादी तथा ग्रामोद्योग** - ग्रामीण इलाकों में औद्योगिक विकास करने के लिए हथकरघा, हस्तशिल्प तथा खादी जैसे उद्योगों की और विशेष ध्यान देने का विचार रखा गया। गाँवों में रोजगार के अधिकाधिक अवसर उपलब्ध कराने के लिए दस्तकारी व ग्रामोद्योगों को विकास की ऊँची दर प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन दिया गया।

(3) **क्षेत्रीय असंतुलनों को संतुलित करना** – संतुलित क्षेत्रीय विकास के लिए ऐसा औद्योगिक स्वरूप रखा गया जिसकी मुख्य विशेषताएँ थी–पिछडे इलाकों में उद्योगों की स्थापना, स्थानीय संसाधनों के अनुरूप उद्योगों की स्थापना और ऐसे उद्योगों की स्थापना जिन्हें दूर-दूर तक बिखराया जा सके। इस प्रकार संतुलित क्षेत्रीय विकास के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बड़े उद्योगों व लघु उद्योगों दोनों का ही समुचित विकास किया जाना आवश्यक है।

(4) **आर्थिक संघवाद तथा पिछड़े इलाके (Economic Federalism and Backward Districts)** – इस नीति की नई विशेषता थी आर्थिक संघवाद की अवधारणा। इस अवधारणा ने एकीकृत औद्योगिक विकास की विचारधारा को साकार रूप दिया। इसमें यह व्यवस्था थी कि औद्योगिक द ष्टि से पिछड़े जिलों में कुछ ऐसी केन्द्रवर्ती संयन्त्र स्थापित किए जाए जो यथासंभव सहायक तथा कुटीर उद्योग पैदा कर सके। केन्द्रवर्ती सयन्त्रों को संयोजक सयंत्रों का काम सौंपा गया। यह व्यवस्था की गई कि इस संयन्त्र की परिधि में आनेवाले कारखानें अपने उत्पादनों के संयोजन के लिए संयत्र के पास भेजे। साथ ही इस संयंत्र को लघु उद्योगों की तकनीक का आधुनिकीकरण करने का भी काम सौंपा गया। औद्योगिक द ष्टिकोण से पिछड़े क्षेत्रों में नवीन उद्योगों की संभावनाएँ उत्पन्न हो जाएँ तथा वर्तमान उद्योगों की तेजी से विकास मार्ग पर लाया जा सके।

(5) **अधोसंरचना (Infrastructure)** – इस नीति में अधोसंरचना जैसे कोयले, यातायात, बिजली अथवा शक्ति के विकास पर बल दिया जाए। सरकार की यही कोशिश रहेगी कि शक्ति के वैकल्पिक साधन का विकास किया जाए। इस शक्ति को संचित करने संबंधित योजनाओं के लिए वित्तीय सहायता दी जाएगी।

(6) **अतिरिक्त क्षमता का नियमन (Regularisation of Excess Capacity)** – कई बड़े स्तर के कारखानों की उत्पादन क्षमता लाइसेंसिग क्षमता से कहीं अधिक है। अतः राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाने हेतु सरकार इन कारखानों को अपनी क्षमता का पूरा उपयोग करने की अनुमति दे।

(7) **स्वाभाविक अथवा स्वचालित विकास का प्रावधान (Provision for Automatic Growth)** – पूँजीगत पदार्थों की बढ़ती कीमतों तथा साधनों की कमी के चलते इस नीति के अनुसार बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पहले से स्थापित उद्योगों को उनकी उत्पादन क्षमता बढ़ाने का अधिकार दिया जाएगा।

(8) **निर्यात प्रधान उद्योग (Export Oriented Industries)** – हमारे देश को विदेशों में निर्यात करने के लिए विदेशी मुद्रा प्राप्त होगी जिसकी हमारे देश को आवश्यकता है। अतः इस नीति में निर्यात प्रधान उद्योगों की स्थापना पर विचार किया जाएगा और उनके लिए कच्चे माल तथा तकनीक आदि जुटाने में सहायता दी जाएगी।

(9) **कीमत स्थिरता (Price Stability)** – इस नीति के अनुसार उद्योगों को उचित तथा संभव सहयोग दिए जाएंगे। उद्योगों से आशा रहेगी कि वे कीमतों में स्थायित्त्व रखें। उद्योगों को सट्टे तथा जमाखोरी का बहिष्कार करना होगा और क्षमतानुसार उत्पादन का अधिकाधिक विस्तार करना होगा।

(10) **रुग्ण इकाइयाँ (उद्यम) (Sick Enterprises)** – इस नीति का लक्ष्य रुग्ण उद्यमों का उपचार करना भी है। इन इकाइयों को निजी क्षेत्र की स्वस्थ अथवा विकसित इकाइयों के साथ मिला दिया जाएगा। इन्हे आयकर आदि से भी राहत दी जाएगी। और यदि उन्हें कुशल व लाभप्रद बनाने के सभी दूसरे प्रयास असफल हो जाते हैं तो सरकार इन्हें अपने स्वामित्त्व में लेगी।

(11) **सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector)** – इन उद्योगों की कुशलता में व द्धि की जाएगी जिसके लिए प्रबन्धकों को प्रशिक्षण दिलवाया जाएगा। कुशल तथा व्यवसायिक प्रव त्ति वाले व्यक्तियों को इन उद्यमों का प्रबन्धक नियुक्त किया जाएगा। हानि वाले उद्यमों का सुधार किया जाएगा व सार्वजनिक क्षेत्र की प्रत्एक इकाई का उचित नियन्त्रण किया जाएगा।

(12) **औद्योगिक संबंध (Industrial Relations)** – हमारे देश में औद्योगिक संबंध बिगड़ते रहते हैं, जिनके कारण औद्योगिक उत्पादन प्रभावित होता है। इस स्थिति की ओर अब विशेष ध्यान दिया गया है। सरकार जहाँ एक ओर मजदूरों के कल्याण और हितों को अधिक से अधिक महत्त्व देती है वहीं यह भी जरुरी मानती है कि मजदूरों व प्रबन्धकों के बीच रचनात्मक व मधुर संबंध बने रहे। इसके लिए सरकार ने त्रिपक्षीय श्रम सम्मेलनों की व्यवस्था की, ताकि आपस में सद्भाव व रचनात्मक सहयोग की भावना पैदा हो सके।

## नई औद्योगिक नीति, जुलाई 1991
## (New Industrial Policy, July 1991)

24 जुलाई 1991 को भारत सरकार ने अपनी नई औद्योगिक नीति की घोषणा की है। इस नीति को खुली और उदारवादी नीति माना गया है इस नीति का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक अर्थव्यवस्था को अनावश्यक नियन्त्रणों से मुक्त करना है। इस नीति में लाइसेंसिग व्यवस्था को लगभग समाप्त कर दिया गया है। साथ ही बहुत से आरक्षित उद्योगों के द्वारा निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए हैं। एकाधिकार और प्रतिबंधक व्यापार व्यवहार अधिनियम के अधीन उद्योगों की परिसंपत्ति सीमा समाप्त कर दी गई है तथा विदेशी फर्मों को और रियायतें दी गई हैं। इस नीति का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक कुशलता में इतनी व द्धि करना है कि देश के उत्पादन को अंतर्राष्ट्रीय बाजार की प्रतियोगिता में शमिल होने योग्य बनाया जा सके। 24 जुलाई को घोषित इस नीति में लिए गए निर्णयों को निम्नलिखत पाँच भागों में बाँटा गया है।

(1) औद्योगिक लाइसेंसिग नीति (Industrial Licensing Policy)

(2) विदेशी पूँजी निवेश (Foreign Capital Investment)

(3) **विदेशी प्रौद्योगिकी से जुड़े समझौते** (Foreign Tecnology Agsements)

(4) **सार्वजनिक क्षेत्र से संबधित नीति** (Public Sector Policy)

(5) **एकाधिकार एवम् प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार कानून** (MRTP Act)

## नीति की मुख्य विशेषताएँ
## (Main Features of the Policy)

(1) **लाइसेंसिग की समाप्ति (Delicensing)** - इस नीति में (1999) में हुए संशोधन के अनुसार 6 मुख्य उद्योगों (वह उद्योग जो या सुरक्षा व सामाजिक महत्त्व के हैं या खतरनाक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं।) को छोड़कर लाइंसेंस समाप्त कर दिया है। ये छह उद्योग हैं (1) सिगरेट (2) शराब (3) औषधि (4) रक्षा उपकरण (5) खतरनाक रसायन (6) विस्फोटक। इन उद्योगों के अतिरिक्त बाकी उद्योगों को राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय क्षेत्र में आधुनिक व प्रतियोगी बनाने के अवसर प्रदान किए जाएंगे।

(2) **सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योग (Industrial Reserved for Public Sector) –** 1956 की नीति में जो उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित थे उनकी संख्या 17 से घटाकर 6 कर दी गई है। परिशिष्ट I में वर्णित ये 6 उद्योग हैं— (i) अस्त्र, शस्त्र तथा सुरक्षा का अन्य सामान, सुरक्षा के लिए वायुयान व जलयान (ii) परमाणु ऊर्जा (iii) कोयला व लिग्नाइट (iv) खनिज तेल (v) परमाणु ऊर्जा (उत्पादन व उपयोग नियन्त्रण) आदेश, 1953 की सूची में दर्ज खनिज (vi) रेल परिवहन अब इनकी संख्या छह से घटकर चार रह चुकी हैं सैनिक साजो सामान, परमाणु ऊर्जा (Atomic Energy); परमाणु धातुओं का खनन तथा रेल परिवहन ही सुरक्षित होंगे। सरकारी उपक्रमों के लिए अब तक आरक्षित क्षेत्र निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए जाएंगे।

(3) **विदेशी पूँजी (Foreign Capital)** - घरेलू औद्योगिक निवेश की तरह ही भारत में विदेशी निवेश पर नियन्त्रण लगाए जाते रहे हैं। मगर इस नीति के अनुसार विदेशी पूँजी निवेश की सीमा 40% से बढ़ाकर 51 प्रतिशत कर दी गई है। उच्च प्राथमिकता के 47 उद्योगों में 57 प्रतिशत तक का निवेश स्वतन्त्रतापूर्वक किया जा सकता है। 9 उद्योगों में 74 प्रतिशत तक पूँजी निवेश की अनुमति दी गई। यह भी बताया गया कि यह सुविधा केवल उन्हीं मामलों में उपलब्ध होगी जहाँ विदेशी पूँजी निवेश उत्पादन मशीनों के लिए जरूरी होगा। निर्यात करनेवाले व्यापारिक घरानों में भी 51 प्रतिशत तक विदेशी पूँजी निवेश की अनुमति दी जाएगी। इस संबंध में विदेशी मुद्रा नियमन कानून (FERA) में आवश्यक संशोधन किए जाएँगे। इस प्रकार की विदेशी पूँजी निवेश इकाइयों पर पुर्जे, कच्चे माल और तकनीकी जानकारी के आयात के मामलों में सामान्य नियम लागू होंगे लेकिन रिर्जव बैंक विदेशों को भेजे गए लाभाँशों पर नजर रखेगा क्योंकि इससे बाहर भेजी गई विदेशी मुद्रा और उस पर कंपनी की निर्यात आय के बीच संतुलन बना रहे। नई नीति के अन्तर्गत विदेशी पूँजी के अन्य मामलों के लिए पहले स्वीकृति लेनी पड़ेगी।

(4) **पंजीकरण की समाप्ति (Abolition of Registration)** - अब उद्यमियों को नई परियोजनाओं तथा क्षमता विस्तार के लिए केवल एक सूचना ज्ञापन ही देना होगा। इस नई नीति के अनुसार सभी पंजीक रण योजनाएँ दी जाएंगी।

(5) **लघु उद्योगों को प्रोत्साहन** – लघु क्षेत्र के उद्योगों के अनेक सुपरिचित लाभों को ध्यान में रखते हुए नीति में इनके समुचित विकास पर विशेष जोर डाला गया है। इनको मजबूत और लाभकारी बनाने के उद्देश्य से पुरानी नीति में अनेक परिवर्तन किए गए हैं।

इस संदर्भ में वर्तमान नीति की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता इसके लिए की गई वित्त व्यवस्था से संबंधित है। अभी तक इनको सस्ता ऋण दिलाने पर जोर था पर अब इसके स्थान पर इस प्रकार की व्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित किया गया है कि इन उद्योगों को इनकी आवश्यकतानुसार पर्याप्त मात्रा में वित्तीय साधन उपलब्ध हो सकें। यह भी घोषणा की गई कि कुछ इन उद्योगों के लिए कुछ वस्तुओं का उत्पादन सुरक्षित रखा जाएगा। उसका उत्पादन बड़े उद्योग नहीं कर सकेंगे।

(6) **आयात की सुविधाएँ** (Facilities of Import) - इस नीति के अनुसार दो करोड़ रुपए से अथवा कुल पूँजी के 25% से कम उत्पादन मशीनें बिना किसी अनुमति के आयात की जा सकेंगी। उत्पादन मशीनों के आयात के अन्य मामलों में विदेशी मुद्रा उपलब्धि के अनुसार औद्योगिक विकास मन्त्रालय का औद्योगिक अनुमति सचिवालय आयात की इजाजत देगा।

(7) **एकाधिकार का नियन्त्रण** (Control of Monopoly) - एकाधिकारी संगठनों के कार्य संचालन को नियंत्रित करने के उद्देश्य से एकाधिकार एवम् प्रतिरोधात्मक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम बनाया गया जिसे 1970 में अमल में लाया जाने लगा। अभी तक यह अधिनियम ऐसी कंपनियों पर लागू किया जाता था जिनकी परिसम्पत्ति का मूल्य 100 करोड़ या इससे अधिक रुपए था। इस अधिनियम के अन्तर्गत ऐसी कंपनियों को इन अनेक कार्यों के सिलसिले में सरकार से पूर्व अनुमति लेनी जरूरी थी—जैसे वर्तमान इकाइयों का विस्तार, नई इकाइयों की स्थापना, विलयन, कंपनियों के शेयर की खरीद और अन्तरण आदि। मगर नई औद्योगिक नीति में परिसंपत्ति की सीमा हटा ली गई है। अब इन संगठनों को उपर्युक्त कार्यों के लिए सरकार से पूर्व स्वीकृति लेना आवश्यक नहीं रहा। एकाधिकार कानून लागू होने के लिए निर्धारित पूँजी निवेश की सीमा ही समाप्त कर दी गई है।

इस नीति में अनुचित उद्योग एवम् व्यापारिक प्रव त्तियों को नियन्त्रण में रखने पर ज्यादा महत्त्व दिया जाएगा।

(8) **प्रशासनिक नियन्त्रण से मुक्ति** (Freedom from Administrative controls) - वर्तमान उद्योगों को बिना किसी अतिरिक्त पूँजी निवेश के अपने लाइसेंस प्राप्त क्षेत्र में किसी भी वस्तु के उत्पादन की पूरी छूट होगी क्योंकि नए उद्योगों के उत्पादन व द्धि कार्यक्रमों को प्रशासनिक नियन्त्रण से मुक्त कर दिया गया है।

(9) **सरकारी प्रोत्साहन** (Government Ecouragement) - नई औद्योगिक नीति के अनुसार क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने पर बल दिया जाएगा। इसके लिए पिछड़े इलाकों में उद्योग लगाने के लिए सरकार द्वारा प्रोत्साहन दिया जाएगा।

(10) **उद्योगों की स्थापना** (Establishment of Industries) - इस नीति में कहा गया है कि जिन क्षेत्रों की आबादी दस लाख है, उन्हें छोड़कर अन्य नगरों में ऐसे उद्योगों के अतिरिक्त जिनके लाइसेंस अनिवार्य है, उद्योग लगाने के लिए केंद्रीय सरकार से इजाजत लेने की आवश्यकता नहीं होगी। दस लाख जनसंख्या वाले नगरों के मामले

में इलैक्ट्रानिक्स और किसी तरह के अन्य गैर प्रदूषणकारी उद्योगों को छोड़कर सभी इकाइयाँ नगर की सीमा से 20 किलोमीटर दूर लगाई जाएंगी।

(11) **तकनीकी विशेषज्ञ (Technical Experts)** - नई औद्योगिक नीति के अनुसार विदेशी तकनीकी विशेषज्ञ नियुक्त करने अथवा देश में विकसित तकनीकों का विदेशों में परीक्षण कराने के लिए विदेशी मुद्रा भुगतान की अनुमति लेने की आवश्यकता समाप्त कर दी गई है।

(12) **घाटे में चल रहे सरकारी उद्योग (Public Enterprises Incurring Loss)** - नई नीति के अनुसार घाटे में चल रहे सरकारी उद्योगों की जाँच का कार्य औद्योगिक एवम् वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड अथवा इसी प्रकार का कोई अन्य विशेष संस्थान करेगा। जो सार्वजनिक उद्योग गंभीर स्थिति में हैं उनके लिए सरकार अलग से योजना बनाएगी इसके कारण जो कर्मचारी प्रभावित होंगे उनके हितों की रक्षा का प्रयत्न किया जाएगा।

(13) **कर्मचारियों को सुविधाएँ (Facilities to Workers)** - श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय नवीनीकरण निधि (National Renewal Fund) बनाई जाएगी। यह निधि तकनीक परिवर्तन के कारण प्रभावित श्रमिकों को सहायता प्रदान करेगी। छंटनी किए गए कर्मचारियों व श्रमिकों के पुनर्वास के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना बनाई जाएगी।

(14) **बोर्डों की स्थापना (Establishment of Boards)** - इस नीति में यह प्रावधान भी किया गया है कि कुछ चुने हुए क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश के लिए विशेषाधिकार प्राप्त बोर्डों का गठन किया जाएगा जो भारत में उपक्रम लगाने के बारे में बड़ी अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों के साथ सब तय करेगा। यह सब एक विशेष कार्यक्रम के अंतर्गत तय किया जाएगा। ताकि बड़ी मात्रा में विदेशी पूँजी निवेश को आकर्षित किया जा सके, आधुनिकतम तकनीक प्राप्त की जा सके तथा भारत की पहुँच विश्व भर की मंडियों तक हो सके।

## नीति का मूल्यांकन
## (Evaluation of the Policy)

1991 की औद्योगिक नीति के संबंध में जिन मूल बातों को ऊपर उल्लेख किया गया है उनसे स्पष्ट है कि यह नीति पुरानी नीति से काफी हद तक अलग है इसमें सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका घटाकर निजी क्षेत्र को व्यापक और महत्त्वपूर्ण बना दिया है। यह नीति अत्यंत उदारवादी है जिसका मुख्य उद्देश्य भारतीय उद्योगों को अनावश्यक प्रशासनिक एवम् कानूनी नियंत्रणों से मुक्त करना है। इस नीति के परिणामस्वरूप भारतीय औद्योगिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी तथा आधारभूत परिवर्तन होने की संभावना है। इस औद्योगिक नीति का प्रमुख उद्देश्य पुरानी औद्योगिक नीतियों से प्राप्त अनुभव के आधार पर एक ऐसी संतुलित नीति तैयार करना है, जिसमें पुरानी नीतियों की कमजोरी न हो, रोजगार के अधिकाधिक अवसर प्रदान किए जा सकें तथा देश के उत्पादन को अंर्तराष्ट्रीय प्रतियोगिता में शामिल होने के योग्य बनाया जा सके। श्री साल्वे के अनुसार ''यह नीति भारतीय अर्थव्यवस्था को सुधार कर आगे की ओर ले जाएगी। (The Policy would give a forward thrust and improve the nation's economy – Salve) वर्तमान नीति के अच्छे परिणाम निकलने की संभावना है। इस नीति का मूल्यांकन हम पक्ष तथा विपक्ष के आधार पर कर सकते हैं।

नीति के पक्ष में तर्क :-

(1) **उदारवादी (Liberalisation)** - नई औद्योगिक नीति का प्रमुख उद्देश्य औद्योगिक विकास के मार्ग में प्रशासनिक बाधाओं को दूर करके अर्थव्यवस्था को अधिक उदारवादी बनाना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए 6 महत्त्वपूर्ण उद्योगों को छोड़कर लाइसेंस प्रणाली समाप्त कर दी गई है। साथ ही MRTP कंपनियों की परिसंपत्ति की सीमा को भी समाप्त कर दिया है। इस नीति में बड़े उद्योगों को अपना पूर्ण विकास करने की स्वतंत्रता दी है।

(2) **कार्यक्षमता तथा कुशलता में व द्धि (Increase in Working Capacity and Efficiency)** - कानून में किए गए परिवर्तन, औद्योगिक लाइसेंसिग नीति, विदेशी तकनीकी समझौते, विदेशी नीति में किए गए परिवर्तनों से 6 मुख्य उद्योगों को छोड़कर बाकी उद्योगों की स्थापना करने के लिए किसी प्रकार की स्वीक ति लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इन उद्योगों की परियोजना लागू करने के लिए कम समय की आवश्यकता होगी। परियोजना व्यय में बचत होगी जिसके फलस्वरूप साधनों का प्रयोग अधिक उत्पादन कार्यों के लिए किया जा सकेगा। इन उद्योगों में प्रति इकाई लागत कम होगी साथ ही कुशलता बढ़ेगी।

(3) **उत्पादन में व द्धि (Increase in Production)** - पूँजी तकनीकी समझौतो तथा विदेशी निवेश का मुख्य उद्देश्य तकनीक, विपणन, प्रबंधकीय कुशलता तथा विदेशी पूँजी को आकर्षित करना है। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था के सीमित साधनों में व द्धि होगी, जिसके फलस्वरूप देश के उत्पादन में व द्धि होगी।

(4) **प्रतियोगिता में व द्धि (Increase in Compitition)** - नई औद्योगिक नीति के परिणामस्वरूप भारतीय उद्योगों की प्रतियोगी क्षमता में व द्धि होगी। एकाधिकार प्रतिबंध ात्मक तथा उचित व्यापार (MRTP) के नियमन तथा नियंत्रण पर अधिक जोर दिए जाने के कारण अल्पाधिकारी तथा एकाधिकारी प्रव त्तियाँ कम होंगी। जिससे प्रतियोगिता को प्रोत्साहन मिलेगा। प्रतियोगिता बढ़ने से जहाँ कीमतें कम होंगी वहीं कुशलता में भी व द्धि होगी।

(5) **सार्वजनिक क्षेत्र में कुशलता (Efficiency in Public Sector)** - सार्वजनिक क्षेत्र के लिए ऋण इकाइयों को बंद करने, साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित 17 उद्योगों को कम करके 4 किए जाने से इस क्षेत्र की कुशलता में व द्धि होगी। इस क्षेत्र की कुशलता बढ़ाने के लिए कई अन्य उपाय जैसे अधिक स्वतंत्रता, विशेषज्ञों द्वारा प्रबंध आदि की सुविधाएँ भी दी जाएंगी।

(6) **श्रमिकों का कल्याण (Welfare of Workers)** - सरकार श्रमिकों की कुशलता बढ़ाने तथा उनके कल्याण संबंधी विशेष प्रयत्न करेगी। श्रमिकों की भागीदारी देश की प्रगति तथा सम द्धि के लिए बढ़ाई जाएगी।

(7) **लघु उद्योगों को उचित ध्यान (Proper Significance to Small Scale Industries)** - देश में पहली बार लघु उद्योगों के लिए एक अलग नीति की घोषणा की गई है। यह नीति 6 अगस्त 1991 को घोषित होनेवाली औद्योगिक नीति है। इस नीति में लघु तथा कुटीर तथा अति लघु उद्योगों के विकास के लिए कई महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गए हैं। 1991 में लघु उद्योगों की निवेश सीमा बढ़ाकर 1 करोड़ रुपए कर दी गई है तथा अति लघु उद्योगों के लिए 25 लाख रुपए कर दी गई है। लघु उद्योगों की

तकनीकी कुशलता बढ़ाने के लिए सरकार उन्हें पूरा सहयोग देगी।

नीति के विपक्ष में तर्क :-

नई औद्योगिक नीति में उपर्युक्त गुण होने के साथ-साथ कुछ कमियाँ भी हैं जिन्हें दूर करने के लिए विशेष प्रयास करना होगा। श्री चन्द्रशेखर के अनुसार, ''यह नीति गाँधीवादी नीति से बिल्कुल भिन्न है।'' (It marked a complete drift, from the Gandhian Path) इस नीति के कारण औद्योगिक अशान्ति उत्पन्न होगी और बेरोजगारी बढ़ेगी। श्री मधु दण्डवते के अनुसार, ''इस नीति ने एकाधिकार घरानों की सीमा समाप्त कर दी है। इसके फलस्वरूप लघु उद्योगों को हानि उठानी पड़ेगी। बेरोजगारी व निर्धनता बढ़ेगी।'' (By abolishing the limits of assets MRTP companies, the government has put the small scale sector in a sight corner. This would seriously set back employment poverty alleviation – Madhu Dandvate) इस नीति के विपक्ष में मुख्य तर्क इस प्रकार है।

(1) **उद्योगों का निजीकरण अपने आप कुशलता नहीं बढ़ा सकता (Privatisation will not automatically lead to Efficiency)** - उद्योगों को निजीकरण को इस मान्यता के आधार पर अधिक महत्त्व दिया गया है कि ऐसा होने से इन उद्योगों की कार्यकुशलता में व द्धि होगी। मगर केवल निजीकरण करना ही अपने आपमें कुशलता में व द्धि होने की गारण्टी नहीं है। भारत में निजी क्षेत्र में अनेक रुग्ण इकाइयाँ हैं। कोई भी क्षेत्र अधिक कुशल तभी होगा जब वह प्रतियोगिता का सामना करेगा। अतः यह मान्यता अधिक वास्तविक नहीं है।

(2) **आर्थिक शक्ति का केंद्रीयकरण (Concentration of Economic Power)** - नई औद्योगिक नीति के कारण शक्ति के केंद्रीयकरण में व द्धि होगी ऐसा आलोचकों का कहना है। (MRTP) में संशोधन के फलस्वरूप धनी तथा बड़े औद्योगिक घरानों को ही अपने उद्योगों का विस्तार करने की स्वतंत्रता दी गई है जो उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि इससे आर्थिक शक्ति के केंद्रीयकरण को बढ़ावा मिलेगा।

(3) **सार्वजनिक क्षेत्र को कम महत्त्व (Reduction in the Role of the Public Sector)** - नई औद्योगिक नीति के फलस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र का महत्त्व पहले से कम हो गया है। कई उद्योगों का निजीकरण (Privatisation) किया जाना तथा उद्योगों का बंद किया जाना सार्वजनिक क्षेत्र के महत्त्व के कम होने का प्रमाण है। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित 17 उद्योगों की इस संख्या को कम करके 6 कर दिया गया है। इस सबके कारण आधारभूत तथा भारी उद्योगों के विकास की दर में कमी आने की संभावना है। इसका कारण यह है कि सार्वजनिक क्षेत्र में मुख्य रूप से आधारभूत उद्योग ही थे। साथ ही इस नीति में कई ऐसे सुझाव या उपाय भी प्रस्तुत नहीं किए हैं जिससे सार्वजनिक क्षेत्र के विकास को बढ़ावा मिल सके।

(4) **लघु उद्योगों के अनुकूल नहीं (Not Good Effection Small Scale Industries)** - नई औद्योगिक नीति लघु स्तर के उद्योगों के लिए अनुकूल नहीं है क्योंकि श्री जे. सी. सन्देसारा के अनुसार- नई उदारवादी नीतियों, विदेशी पूँजी को छूट तथा बड़ी कंपनियों को अधिक स्वतंत्रता के फलस्वरूप प्रतियोगिता बढ़ेगी। ऐसा होने से लघु उद्योग बड़े उद्योगों तथा विदेशी कंपनियों के सामने टिक नहीं पाएंगे। इससे उनके अस्तित्त्व पर बुरा असर पड़ेगा।

(5) **क्षेत्रीय समानता नहीं (Not Regional Balance)** - लाइसेंसिंग नीति के अधिक

उदारवादी होने तथा उद्योगों की स्थापना पर से प्रतिबंध घटाने के फलस्वरूप सभी उद्यमी नए उद्योगों को विकसित स्थानों पर लगाना चाहेंगे। पिछड़े क्षेत्रों में कम उद्योग स्थापित किए जाएंगे जिसके फलस्वरूप आलोचकों के अनुसार क्षेत्रिय समानता नहीं रहेगी।

(6) **विदेशी ऋण का बोझ (Burden of Foreign Loan)** - बहुराष्ट्रीय कंपनियों को आवश्यकता से अधिक स्वतंत्रता देने से देश की आर्थिक प्रभुसत्ता पर बुरा प्रभाव पड़ेगा जिससे देश पर विदेशी ऋण का बोझ भी बढ़ जाएगा।

(7) **सामाजिक उद्देश्यों पर ध्यान नहीं (Ignores Social Objectives)** - इस नीति में निर्धारित सामाजिक उद्देश्यों की भी अवहेलना की गई है। योजनाओं में सामाजिक उद्देश्यों जैसे निजी क्षेत्र की तुलना में सामाजिक क्षेत्र को अधिक महत्त्व, आर्थिक शक्ति निजी उद्यमियों के हाथों में केंद्रीयकरण की कमी, क्षेत्रीय असमानता में कमी, लघु उद्योगों को प्रोत्साहन आदि की तरह ध्यान नहीं दिया गया है।

## नई औद्योगिक नीति 1991 का क्रियान्वयन
## (Implementation of New Industrial Policy)

नई औद्योगिक नीति को लागू हुए 10 वर्ष से ऊपर हो चुके हैं। इस अवधि में औद्योगिक क्षेत्र में निम्नलिखित परिवर्तन अथवा सुधार हुए हैं।

(1) **लाइसेंसिग में कमी (Reduction in Licensing)** - सन 1999 से केवल 6 उद्योगों के लिए लाइसेंस लेना अनिवार्य कर दिया गया है। इनकी संख्या पहले 17 थी।

(2) **सार्वजनिक क्षेत्र में कमी (Decreasing in Public Sector)** - सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या केवल चार रह गई है। ये उद्योग हैं- (1) परमाणु ऊर्जा, (2) रक्षा उत्पादन, (3) परमाणु खनिज, (4) रेलवे परिवहन।

(3) **निर्यात को प्रोत्साहन (Encouragement to Exports)** - निर्यात को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से निर्यात संबंधी क्षेत्रों में विकास कमीश्नर 100 प्रतिशत उत्पादन का निर्यात करनेवाले यूनिटों के संबंध में जून 1983 में विशेष अधिकार दिए गए हैं जो पहले वित्त मंत्रालय के पास थे। इसके फलस्वरूप निर्यात उद्यमों की कठिनाइयाँ दूर हो जाएंगी।

(4) **विदेशी निवेश को बढ़ावा (Increasing in Foreign Investment)** - भारतीय उद्योगों में विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए विदेशी निवेश के पूँजी लाभ पर लगाए जानेवाले करों की रियायती दर 30 प्रतिशत कर दी गई है। नई औद्योगिक नीति के कारण विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में काफी व द्धि हुई है। 1991 में 351 करोड़ रुपए का प्रत्यक्ष निवेश किया गया। यह 1999 में बढ़कर 8,418 करोड़ रुपए हो गया। 1991 से 2001 तक 1,05,413 करोड़ रुपए का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश किया गया।

(5) **बड़े उद्योगों का फैलाव (Expansion of Large Scale Industries)** - सिले हुए कपड़ों का उत्पादन जो पहले लघु उद्योगों के लिए सुरक्षित था अब बड़े उद्योगों के लिए खोल दिया गया है। परन्तु उन्हें अपने उत्पादन का 50 प्रतिशत भाग निर्यात करना पड़ेगा तथा मशीनरी आदि में उनका अचल पूँजी निवेश 1 करोड़ रुपए से अधिक नहीं होगा।

(6) **शुल्कों में कमी (Reduction in Duties)** - पूँजीगत वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क कम

किए गए तथा पूँजी संबंधी लागतों को कम करने तथा निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए आयात शुल्क भी कम किए गए।

(7) **उद्योगों के लिए ऋण सीमा में व द्धि (Increase in Lending Limits)** - उद्योगों के लिए ऋण सीमा 5 करोड़ रुपए से बढ़ाकर 50 करोड़ रुपए कर दी गई है।

(8) **पिछड़े इलाकों में बिजली उत्पादन तथा उद्योगों के लिए करों में छूट (Concession to Industries in Backward Areas and for Power Generation)** - औद्योगिक द ष्टि से पिछड़े राज्यों में नए उद्योगों की स्थापना के लिए यह देश में किसी भी स्थान पर बिजली उत्पादन करने के लिए पाँच वर्ष तक की छूट दी गई है।

(9) **निर्यात ऋण पुनर्वित सीमाओ में व द्धि (Increase in Export Credit Reginance)** - निर्यात ऋण पुनर्वित सीमाओं में व द्धि हुई है। पुनर्वित ऋण का 90 प्रतिशत तक अमेरिकी डॉलर में उपलब्ध होगा।

(10) **ऋण औद्योगिक कंपनी एक्ट में संशोधन (Amendment in Sick Industrial Companies Act)** - कंपनियों की रुग्णता का प्रारंभ में ही पता लगाने तथा उपचारात्मक उपायों को शीघ्र लागू करने के लिए दिसंबर 1993 में ऋण औद्योगिक कंपनी एक्ट में (1981) संशोधन किया गया।

(11) **ब्याज की दर में कमी (Reduction in the Rate of Interest)** - उद्योगों को दिए जानेवाले उच्चतम ऋण स्लेव पर न्यूनतम उधार देने की दर को घटाकर 15 प्रतिशत कर दिया गया है।

## निष्कर्ष
## (Conclusion)

नई औद्योगिक नीति 24 जुलाई 1991 को लागू की गई। यह एक उदारवादी नीति थी। इसके औद्योगिक उत्पादन के निम्न प्रभाव पड़े थे।

(1) **लघु तथा कुटीर उद्योग (Cottage and Small Scale Industries)** - नई औद्योगिक नीति के परिणामस्वरूप लघु स्तर के उद्योगों पर मिला-जुला ही असर रहा। 1992 में लघु उद्योगों की संख्या 22 लाख थी जो 2002 में बढ़कर 35.70 लाख हो गई। इसी प्रकार इनका उत्पादन 1992 में 2,09,300 करोड़ रुपए था वह 2002 में बढ़कर 7,42,021 करोड़ रुपए हो गया। इससे प्राप्त रोजगार 134 लाख से बढ़कर 200 लाख हो गया। मगर नई औद्योगिक नीति के उदारवादी द ष्टिकोण के कारण कई वस्तुओं जैसे पेय पदार्थ, साबुन, आइसक्रीम में इनकी बहुराष्ट्रीय कंपनियों से प्रतियोगिता बढ़ गई। इसका इन उद्योगों पर बुरा प्रभाव पड़ा है।

(2) **औद्योगिक उत्पादन में व द्धि दर (Growth Rate of Industrial Production)** - नई औद्योगिक नीति के फलस्वरूप औद्योगिक उत्पादन की व द्धि दर में होनेवाला परिवर्तन निम्न तालिका से स्पष्ट होता है।

**Growth Rate of Industrial Production**

| Year | Growth Rate |
|---|---|
| 1990-91 | 8.3 |
| 1991-92 | 0.2 |
| 1992-93 | 2.3 |

| | |
|---|---|
| 1993-94 | 6.0 |
| 1994-95 | 9.7 |
| 1995-96 | 12.1 |
| 1996-97 | 7.1 |
| 1998-99 | 4 |
| 1999-2000 | 6.5 |
| 2000-2001 | 5 |
| 2001-2002 | 2.7 |

उपरोक्त तालिका से पता चलता है कि नई औद्योगिक नीति के कारण पहले दो वर्षों 1991-92 तथा 1992-93 में औद्योगिक उत्पादन की व द्धि दर में बहुत कमी हुई। यह 8.3 प्रतिशत से कम होकर 2.3 प्रतिशत हो गई। परंतु 1993 में बढ़कर यह 12.1 हो गई परंतु 1997-98 में ये दोबारा कम होकर 6.5 प्रतिशत हो गई। औद्योगिक उत्पादन की व द्धि दर 1998-99 में कम होकर 4 प्रतिशत हो गई जबकि 2001-02 में यह कम होकर 2.7 प्रतिशत हो गई। अतः नई औद्योगिक नीति के फलस्वरूप अभी तक औद्योगिक उत्पादन में व द्धि नहीं हुई। इसके कई कारण हैं, जैसे- आधारभूत क्षेत्रों जैसे बिजली, यातायात आदि की अड़चनें (Constraints of Infrastructure) ऋण उपलब्धता की कमी। खनन तथा खनिज उद्योगों के उत्पादन में कमी, निर्यात की माँग में कमी बचत तथा निवेश की दर में कमी, ब्याज की ऊंची दर, देरी से बजट प्रस्तुत करने के कारण माँग में हुई सामान्य कमी।

(3) **विदेशी तकनीक (Foreign Investment)** - विदेशी निवेश पर नई औद्योगिक नीति का काफी अच्छा प्रभाव पड़ा है। 1991 से 2000 तक 2,70,064 करोड़ रुपये के विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की स्वीक ति दी गई तथा 42,173 करोड़ रुपए का विदेशी निवेश वास्तव में किया गया। ये निवेश पिछले 20 वर्ष से स्वीकार किए गए निवेश से अधिक हैं।

संक्षेप में, जुलाई 1991 से भारतीय उद्योग में उसकी संरचना और कार्यकरण में आधारभूत परिवर्तन आया है। नई औद्योगिक नीति के फलस्वरूप औद्योगिक लाइसेंसिंग में बड़े पैमाने पर कमी हुई है। प्रक्रिया तथा नियमों को सरल बनाया गया है। सार्वजनिक क्षेत्र के आकार में कमी की गई है। सार्वजनिक क्षेत्र के कई उद्यमों के शेयर पूँजी का विनिवेश (Disinvestment) किया गया है। विदेशी भागीदारी की सीमाओं में व द्धि की गई है। व्यापारिक विनिमय दर नीतियों का उदारीकरण किया गया है। सीमा शुल्कों, उत्पादन शुल्कों, निगम करों तथा आयकरों की दरों को कम किया गया है। निर्यात करनेवाले उद्योगों तथा लघु व कुटीर उद्योगों को विशेष सुविधाएँ प्रदान की गई हैं।

## औद्योगिक (विकास एवम् नियमन) अधिनियम, 1951
## Industrial Development and Regulation Act, 1951

देश में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया पर नियंत्रण रखने तथा उसका नियमन करने के उद्देश्य से अक्टूबर 1951 में संसद में एक अधिनियम पास किया गया। उद्योग (विकास एवम् नियमन) अधिनियम 1951 नामक यह अधिनियम 8 मई, 1952 को लागू किया गया। यद्यपि इस अधिनियम का लक्ष्य निजी क्षेत्र का विकास व नियमन था तथापि इसमे अधिकतर 'नियमन' पर जोर दिया गया। इस अधिनियम के मुख्य उद्देश्य थे-

(1) योजनाओं की प्राथमिकताओं एवम् लक्ष्यों के अनुरूप औद्योगिक निवेश व उत्पादन का नियमन करना।

(2) छोटे उद्योगपतियों की बड़े उद्योगपतियों के साथ स्पर्धा से रक्षा करना।

(3) उद्योगों के स्वामित्त्व व संकेन्द्रण को रोकना तथा

(4) देश के विभिन्न क्षेत्रों के विकास स्तरों में अन्तरों को कम करना ताकि संतुलित क्षेत्रीय विकास प्राप्त किया जा सके।

(5) उद्योगों में आधुनिक तकनीक को प्रोत्साहन।

(6) उपलब्ध साधनों का उचित प्रयोग।

## अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ
## (Main Features of the Act)

अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार है।

(1) **लाइसेंसिंग तथा पंजीकरण (Licensing and Registration)** - इस अधिनियम के अनुसार इसकी प्रथम अनुसूची (first Schedule) में शामिल सभी चालू उद्योगों को एक निश्चित अवधि तक सरकार के पास अपना पंजीकरण कराना होता है। नए कारखानें स्थापित करने तथा चालू कारखानों को अपनी उत्पादन क्षमता का विस्तार करने के लिए सरकार से लाइसेंस लेना आवश्यक है। सरकार को यह अधिकार भी दिया गया है कि वह पंजीकरण तथा लाइसेंस को रद्द भी कर सकती है।

(2) **सरकार द्वारा नियंत्रण एवम् प्रत्यक्ष प्रबंध की व्यवस्था (Provision for Control and Direct Management by Government)** - इस अधिनियम में यह व्यवस्था भी की गई है कि सरकार अग्रलिखित दो स्थितियों में नियंत्रण व प्रबंध अपने हाथों में ले सकती है। (i) यदि कारखाने का प्रबंध उसके या जनहित के विरुद्ध किया जा रहा हो। (ii) यदि कोई कारखाना सरकार द्वारा उसके सुधार के लिए दिए गए सुझावों को लागू नहीं करता है।

(3) **विकासात्मक संस्थाएं (Promotional Institute)** - इस अधिनियम के अन्तर्गत निम्न संस्थाओं की व्यवस्था उद्योगों का विकास करने के लिए की गई है।

(i) **केंद्रीय सलाहकार समिति (The Central Advisory Council) –** यह समिति मई 1953 में स्थापित की गई थी। इसमें उद्योग श्रम तथा उपभोक्ता वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं। केंद्रीय सरकार के उद्योगमंत्री इसके अध्यक्ष होते हैं। समिति उद्योगों की सामान्य समस्याओं पर विचार करती है। यह कानून के प्रशासन के संबंध में केंद्रीय सरकार को सलाह देती है। उद्योग संबंधी आँकड़ों के एकत्रीकरण के लिए आवश्यक नियमावली का निर्धारण भी यह समिति करती है। उद्योगों के पंजीकरण, लाइसेंस देने या समाप्त करने के विशेष मामलों में इससे विचार विमर्श किया जाता है।

(ii) **पुनरावलोकन समिति (The Renewing Sub-committee) –** पुनरावलोकन समिति केंद्रीय सलाहकार समिति की एक उप-समिति होती है। यह इस बात का पुनरावलोकन करती है कि समय-समय पर कितने लाइसेंस दिए गए,

कितने अस्वीक त कर दिए गए तथा कितने रद्द (Revoke) कर दिए गए।

(iii) **विकास परिषद (Development Councils) –** विकास परिषद का गठन किसी एक उद्योग अथवा उद्योगों के समूह के विकास के लिए किया जाता है। इन परिषदों के सदस्य विभिन्न क्षेत्रों जैसे श्रमिकों, उपभोक्ताओं तथा तकनीकी विशेषज्ञों के प्रतिनिधि होते हैं। इनकी स्थापना उद्योगों का उत्पादन बढ़ाने, उनकी कार्यक्षमता में व द्धि करने, उनकी उत्पादकता बढ़ाने, उत्पादन की किस्म में सुधार करने तथा प्रबंध संबंधी समस्याओं का समाधान करने के लिए की जाती है। अब तक लगभग 20 विकास समितियों की स्थापना की गई थी। परंतु इनमें से इस समय 13 विकास समितियाँ ही कार्य कर रही हैं।

(iv) **औद्योगिक पैनल (Industrial Panel) –** औद्योगिक पैनल उन उद्योगों के लिए स्थापित किए जाते हैं जिनके लिए विकास परिषदों की स्थापना नहीं की गई है। इनके सदस्य विभिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्त्व करनेवाले कुछ विशेषज्ञ होते हैं। ये पैनल संबंधित उद्योगों की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करके उचित सुझाव देते हैं।

(4) **उद्योगों की जाँच (Investigation of an Industry or Enterprice) -** सरकार निम्न चार अवस्थाओं में किसी उद्यम की जाँच के आदेश दे सकती है। (i) यदि उद्योग या उद्यम के उत्पादन में निरंतर कमी हो रही हो। (ii) उत्पादित वस्तुओं के मूल्यों में असामान्य व द्धि हो रही हो। (iii) उद्योग का कुप्रबंध हो रहा हो। (iv) उत्पादित वस्तुओ की क्वालिटी में निरंतर गिरावट आ रही हो। सरकार जाँच के बाद उद्योग में आवश्यक सुधार कराने का आदेश दे सकती है।

(5) **पूर्ति, वितरण तथा मूल्यों पर नियंत्रण (Control of Supply, Distribution and Prices) -** सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह (i) किसी वस्तु के वितरण को नियमित करने के लिए परमिट की व्यवस्था कर सकती है। (ii) किसी वस्तु का मूल्य निर्धारित कर सकती है। (iii) किसी वस्तु की बिक्री को पूरी तरह बंद कर सकती है।

## औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति
## (Industrial Licensing Policy)

भारत सरकार ने औद्योगिक अधिनियम 1951 के अनुसार उद्योगों के नियंत्रण के लिए लाइसेंस व्यवस्था अपनाई है। लाइसेंस वह लिखित आज्ञा है जो किसी उद्यम को सरकार से मिलती है। जिसके अनुसार उसमें लिखित वस्तु का उत्पादन करना होता है। लाइसेंस में कुछ और बातें भी शामिल होती हैं जैसे- उत्पादित की जानेवाली वस्तु का नाम, उद्यम का विस्तार, कारखाना स्थापित करने का स्थान, उत्पादन क्षमता की सीमा आदि।

(1) **लाइसेंस के उद्देश्य (Objectives of Licensing) -** भारत में लाइसेंसिंग का उद्देश्य देश की औद्योगिक नीति मुख्यतः निजी क्षेत्र से संबंधित नीति को उचित ढंग से लागू करना है। लाइसेंस व्यवस्था के मुख्य उद्देश्य ये हैं- (i) उद्योगों का केंद्रीयकरण (Centralisation of Industries) को रोकना। (ii) लघु उद्योगों को प्रोत्साहन (Incouragement of Small Industries), (iii) योजनाओं में लक्ष्यों के अनुसार औद्योगिक

निवेश एवम् उत्पादन का नियंत्रण एवम् विकास। (iv) संतुलित क्षेत्रीय विकास।

(2) **भारत में लाइसेंसिंग का विकास (Evaluation of Licensing of India)** - भारत में लाइसेंसिंग का प्रारम्भ 1952 में किया गया। इसमें समय-समय पर कई दोष उत्पन्न होते चले गए। सरकार द्वारा लाइसेंसिंग व्यवस्था की जाँच करने तथा उसमें सुधार करने के लिए, सुझाव देने के लिए कुछ समितियों की स्थापना की गई जैसे-

(i) **हजारी समिति (Hazari Committee) –** इस समिति की स्थापना डॉ. आर. के. हजारी की अध्यक्षता में सन् 1967 में की गई। इस समिति की स्थापना का उद्देश्य औद्योगिक अधिनियम 1951 की जाँच करना था। इस समिति ने चालू लाइसेंस नीति के कई दोषों तथा उससे संबंधित सुझावों का अपनी रिपोर्ट में उल्लेख किया।

(ii) **दत्त समिति (Dutta Committee) –** सरकार ने हजारी समिति की रिपोर्ट के आधार पर लाइसेंस प्रणाली के कार्य प्रबंध की जाँच करने तथा उसमें सुधार करने के संबंध में सुझाव देने के लिए दत्त समिति की नियुक्ति की थी। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट 1969 में प्रस्तुत कर दी थी। दत्त समिति को औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति जाँच समिति (Industrial Licensing Policy Enquiry Committee) भी कहा जाता है। दत्त समिति की रिपोर्ट के निष्कर्षों तथा सिफारिशों के प्रकाशन में सरकार ने 1970 में नई औद्योगिक लाइसेंस नीति (Industrial Licensing Policy 1970) की घोषणा की थी। इस नीति में समय-समय पर जैसे 1973, 1975, 1978, 1980, 1985 तथा 1991 में परिवर्तन किया जाता रहा है। इन परिवर्तनों का मुख्य उद्देश्य लाइसेंसिंग प्रणाली को अधिक सरल तथा उदारवादी बनाना है।

(3) **लाइसेंस प्राप्त करने की अनिवार्यता (Compulsion for Licensing)** - लाइसेंसिंग नीति के अनुसार निम्नलिखित दशाओं में लाइसेंस प्राप्त करना आवश्यक है।

(i) किसी नई वस्तु का उत्पादन करने के लिए।

(ii) नए कारखाने की स्थापना के लिए।

(iii) वर्तमान कारखाने का स्थान परिवर्तन के लिए।

(iv) वर्तमान कारखानों को अपनी उत्पादन क्षमता का विस्तार करने के लिए।

उपरोक्त दशाओं में किसी कारखानें को लाइसेंस प्राप्त करने के लिए सरकार को आवेदन (Application for Licensing) देना पड़ता है।

सन् 1970 से वर्तमान समय तक लाइसेंस नीति में किए जानेवाले संशोधनों के कारण वर्तमान लाइसेंसिंग नीति की मुख्य विशेषताएँ ये हैं।

(1) **अनिवार्य लाइसेंसिंग (Compulsory Licensing)** - सन् 1951 की लाइसेंस नीति के अनुसार उन उद्योगों के लिए लाइसेंस प्राप्त करना आवश्यक था जिनकी स्थाई पूँजी 10 लाख रुपए थी। 1970 में इस सीमा को बढ़ाकर एक करोड़ रुपए कर दिया गया। सन् 1978 में इस सीमा को बढ़ाकर 3 करोड़ रुपए, 1983 में 5 करोड़ रुपए, 1985 में 15 करोड़ रुपए तथा 1990 में 25 करोड़ रुपए कर दिया गया। 1991 की नई औद्योगिक नीति के अनुसार केवल उन 14 उद्योगों के लिए लाइसेंस लेना अनिवार्य

था जो पर्यावरण, सुरक्षा, खतरनाक वस्तुओं तथा उच्च वर्ग के उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन करते थे। 1999 में इनकी संख्या को कम करके 6 कर दिया गया है। अन्य सभी उद्योगों के लिए लाइसेंस व्यवस्था समाप्त कर दी गई है।

(2) **उत्पादन क्षमता के विस्तार हेतु लाइसेंसिंग (Licensing for Expansion of Production Capacity)** - 1970 की लाइसेंस नीति के अनुसार एकाधिकार अधिनियम (MRTPA) के अंतर्गत आनेवाले उद्योगों को अपनी उत्पादन क्षमता का 25 प्रतिशत से अधिक विस्तार करने के लिए लाइसेंस लेना अनिवार्य था 1991 की नीति के अनुसार उत्पादन क्षमता का विस्तार करने के लिए कोई लाइसेंस लेने की आवश्यकता नहीं है।

(3) **बड़े उद्योग की व्याख्या (Definition of Large Industries)** - सन् 1973 की लाइसेंस नीति में यह निर्धारित किया गया कि एकाधिकार एवम् प्रतिबंधक व्यापार व्यवहार अधिनियम 1969 (Monopoly And Restrictive Trade Practices Act 1969) के अनुरूप बड़े उद्योगों की स्पष्ट परिभाषा दी जानी चाहिए। 1973 की लाइसेंस नीति में 20 करोड़ से अधिक सम्पत्ति वाले औद्योगिक घरानों को बड़े घराने (Large Industiral House) माना गया। इस सीमा को 1850 में बढ़ाकर 100 करोड़ रुपए कर दिया गया। 1991 की नई नीति में परिसम्पत्ति की ऊपरी सीमा हटा दी गई। अब बड़े घरानों के आकार पर कोई प्रतिबंध नहीं है। इस नीति में बड़े घरानों के आकार के स्थान पर एकाधिकार के अनुचित व्यवहारों को रोकने पर ध्यान दिया गया है।

(4) **सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योग (Industries Reserved for Public Sector)** - सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 1956 से लेकर 1991 तक 17 उद्योग सुरक्षित रखे गए थे। इन उद्योगों की स्थापना केवल सार्वजनिक क्षेत्र में ही की जा सकती थी। निजी क्षेत्र को इन उद्योगों की स्थापना के लिए लाइसेंस नहीं दिया जाता था। 1991 में इन उद्योगों की संख्या को कम करके 8 कर दिया गया तथा 1999 में 4 कर दिया गया।

(5) **लघु उद्योगों को संरक्षण (Protection to Small Industries)** - लघु उद्योगों को संरक्षण देने तथा बड़े उद्योगों की प्रतियोगिता से उनका बचाव करने के लिए कई वस्तुओं का उत्पादन उनके लिए सुरक्षित कर दिया गया। 1970 की लाइसेंस नीति के अनुसार 836 वस्तुओं का उत्पादन केवल लघु क्षेत्र के लिए सुरक्षित कर दिया गया था। इन वस्तुओं का उत्पादन बड़े उद्योग नहीं कर सकते थे। परंतु 2002 में 51 लघु उद्योगों को सुरक्षित कर दिया गया है।

संक्षेप में, लाइसेंसीकरण की नीति 1970 के बाद निरंतर सरल तथा उदारवादी होती गई है। इसके अनुसार उद्यमियों को स्वेच्छा से उद्योग लगाने की स्वतंत्रता प्राप्त हो गई है। वह अपने उद्योगों का विकास तथा विस्तार भी स्वेच्छा से कर सकते हैं। इसका देश के औद्योगिकरण पर काफी अच्छा प्रभाव पड़ रहा है।

# अध्याय-14
# लघु उद्योग क्षेत्र
# (Small Scale Sector)

भारत में लघु व कुटीर उद्योगों का बहुत अधिक महत्त्व है। पश्चिम के विकसित देशों में छोटे पैमाने पर उत्पादन का संगठन बड़े पैमाने पर उत्पादन का पूरक होता है। अतः यह भी पूँजीवादी ढंग से ही संगठित होता है। भारत में लघु या कुटीर उद्योग प्रायः पूँजीवादी ढंग से संगठित नहीं है। छोटे पैमाने पर संगठित क्षेत्र में अनेक प्रकार के उद्योग आते हैं जैसे ग्रामीण तथा शहरी कुटीर उद्योग जिन्हें परिवार के लोगों के श्रम से ही चलाया जाता है। शहरी लघु उद्योग जिनमें मजदूरी के बदले में काम करनेवाले श्रमिकों को लगाया जाता है लेकिन शक्ति से चलनेवाले उपकरणों का प्रयोग नहीं किया जाता तथा ऐसे लघु उद्योग जिनमें आधुनिक मशीनों तथा बिजली का प्रयोग किया जाता है। तात्पर्य यह है कि भारत में छोटे स्तर पर औद्योगिक उत्पादन का क्षेत्र एक जैसा नहीं है।

## भारत में उद्योगों का वर्गीकरण
## (Classification of Industries in India)

1. **लघु उद्योग** (Small Scale Industries)
2. **ग्रामीण उद्योग** (Village Industries)
3. **मध्यम स्तर के उद्योग** (Medium Scale Industries)
4. **बड़े स्तर के उद्योग** (Large Scale Industries)

इस अध्याय में हम लघु एवं कुटीर उद्योगों का अध्ययन करेंगे।

1. **लघु उद्योग (Small Scale Industries):** मार्च 1999 में लघु उद्योगों के अन्तर्गत उन सब कारखानों को शामिल किया जाता है जिनमें 1 करोड़ रुपये तक स्थिर पूँजी (Fixed Capital) का निवेश हुआ हो। पहले यह सीमा 3 करोड़ रुपये हुआ करती थी तथा अति लघु उद्योगों (Tiny Industries) में पूँजी की सीमा पाँच लाख रुपये से बढ़ाकर 25 लाख रुपये कर दी गई है। इन उद्योगों में श्रमिकों को मजदूरी पर रखा जाता है। मशीनी अथवा बिजली के उपकरणों का प्रयोग होता है। पानीपत में दरी तथा चादर, देहली में टेलीविजन, ट्रॉजिस्टर, लुधियाना में हौजरी के कारखाने तथा अंबाला में वैज्ञानिक उपकरण बनानेवाले कारखाने इसी प्रकार के हैं।

# कुटीर उद्योग
## (Cottage and Village Industries)

इसके अन्तर्गत इस प्रकार के उद्योग आते हैं जिन्हें कोई व्यक्ति अपने ही परिवार के सदस्यों की सहायता से बहुत कम पूँजी में चलाता है। अधिकांश कुटीर उद्योगों में बिजली तथा मशीनों का प्रयोग नहीं होता है। राजकोषीय आयोग (1949-50) के अनुसार, **''कुटीर उद्योग वह उद्योग है जो पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से परिवार के सदस्यों की सहायता से एक पूर्णकालीन या अंशकालीन व्यवसाय के रूप में चलाया जा सकता है।''** इस तरह के उद्योग अधिकतर कारीगरों द्वारा अपने घरों में ही चलाए जाते हैं। यह उद्योग मुख्यतः स्थानीय आवश्यकताओं को ही पूरा करते हैं। यह उद्योग परिवार के सदस्यों द्वारा ही चलाए जाते हैं तथा मजदूरी पर लगाए गए श्रमिकों का प्रयोग न के बराबर ही होता है। गाँव में स्थित उद्योगों को ग्रामीण उद्योग (Village or Rural Industries) भी कहा जाता है। **एशिया तथा सुदूर पूर्व के आर्थिक आयोग** (ECAFE) के अनुसार, **''कुटीर उद्योग वे उद्योग हैं जिनका एक परिवार के सदस्यों द्वारा पूर्ण रूप से अथवा आंशिक रूप से संचालन किया जाता है।''** पी०एन० धर तथा लिडल (Dhar and Lydall) के शब्दों में, **''कुटीर उद्योग मुख्यरूप से परम्परागत उद्योग हैं जो परम्परागत वस्तुओं का परम्परागत विधियों से उत्पादन करते हैं।''** इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गांवों तथा शहरों में चलनेवाले परम्परागत उद्योग, जैसे खादी उद्योग, हस्तकला उद्योग आदि कुटीर उद्योग कहलाते हैं।

# लघु उद्योगों व कुटीर उद्योगों में अन्तर
## (Difference between Cottage and Small Scale Industries)

यद्यपि कुटीर उद्योगों को लघु उद्योग भी कहा जाता है, मगर वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण में कुटीर उद्योगों को लघु उद्योगों से अलग श्रेणी में रखा जाता है। **राजकोषीय आयोग** (Fiscal Commission) ने लघु व कुटीर उद्योगों के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा है कि, **''कुटीर उद्योग सामान्यतः ग्रामीण क्षेत्र में कृषि से संबंधित होते हैं तथा केवल शहरी क्षेत्र में ही पूरे समय के लिए व्यवसाय प्रदान करते हैं जबकि लघु उद्योग शहरों व अर्द्ध शहरी क्षेत्र मे स्थापित किए जाते हैं तथा श्रमिकों को पूर्णकालीन रोजगार प्रदान करते हैं।''**

लघु तथा कुटीर उद्योगों में निम्नलिखित अन्तर है-

(i) कुटीर उद्योगों में मजदूरी पर श्रमिक नहीं लगाए जाते केवल परिवार के सदस्य ही काम करते हैं जबकि लघु उद्योगों में मजदूरी पर श्रमिक लगाए जाते हैं।

(ii) कुटीर उद्योग ज्यादातर गांवों में होते हैं जबकि लघु उद्योग अधिकतर शहरों व अर्द्ध शहरी क्षेत्रों में स्थापित होते हैं।

(iii) कुटीर उद्योगों में बिजली तथा मशीनों का प्रयोग नहीं होता जबकि लघु उद्योगों में बिजली की मशीनों का प्रयोग किया जाता है।

(iv) कुटीर उद्योगों में बहुत थोड़ी मात्रा में पूँजी लगी होती है, यह हजार रुपये के आसपास हो सकती है इससे भी काफी कम हो सकती है जबकि लघु उद्योगों में 3 करोड़ रुपये तक की पूँजी हो सकती है।

(v) कुटीर उद्योग अधिकतर स्थानीय आवश्यकताओं को ही पूरा करते हैं जबकि लघु उद्योग बड़े क्षेत्रों की माँग को पूरा करने के लिए उत्पादन करते हैं।

(vi) कुटीर उद्योग अधिकतर कारीगर के घर पर ही चलाए जाते हैं जबकि लघु उद्योग घर पर नहीं चलाए जाते।

(vii) कुटीर उद्योग, लघु उद्योगों की सहायक वस्तुएँ बनाते हैं जबकि लघु उद्योग ऐसा नहीं करते।

(viii) कुटीर उद्योग पूर्णकाल तथा अंशकाल दोनों प्रकार के व्यापार के रूप में चलाए जाते हैं जबकि लघु उद्योग केवल पूर्णकाल के व्यवसाय के रूप में ही चलाए जाते हैं।

(ix) कुटीर उद्योगों परम्परागत वस्तुएँ जैसे, जूते, चटाई, खादी, दरी आदि बनाए जाते हैं जबकि लघु उद्योगों में आधुनिक वस्तुएँ जैसे रेडियो, टेलीविजन आदि भी बनाए जाते हैं।

योजना आयोग के अनुसार, **''कुटीर तथा लघु उद्योगों के अन्तर जानने के लिए कोई निश्चित व सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं है जो विभिन्न परिभाषाओं के अनेक उद्देश्यों को ध्यान में रख कर अपनाया जाता है।''**

**लघु उद्योगों की वर्तमान स्थिति (Present Position of Small Scale Industries)** सन् 2003 में किए गए 'इकोनॉमिक सर्वे' के अनुसारः

लघु उद्योगों की उपलब्धियाँ निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट हो जाती है

| | संख्या | उत्पादन | रोजगार | निर्यात |
|---|---|---|---|---|
| लघु उद्योग | 33.7 लाख | 7,42,021 करोड़ रु० | 200 लाख व्यक्ति | 59,753 |

(Source: Economy Survey 2003)

इस तालिका से पता चलता है कि कुछ औद्योगिक उत्पादन में लघु उद्योगों के उत्पादन का 40% से अधिक भाग है। देश के निर्यात में इनका भाग लगभग 32% है। इनके द्वारा लगभग 200 व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त होता है। इन उद्योगों में औसतन 1 लाख रुपये के निवेश पर 18 लोगों को रोजगार प्राप्त होता है।

## लघु तथा कुटीर उद्योगों का महत्त्व
## (Importance of Small Scale and Cottage Industries)

भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु व कुटीर उद्योगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। श्री जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में, **''भारत की अर्थव्यवस्था में कुटीर तथा लघु उद्योगों का अधिक महत्त्व है। इनका प्रत्येक प्रकार से विकास किया जाना चाहिए।''** लघु उद्योगों का महत्त्व निम्नलिखित बातों से स्पष्ट होता है।

(i) **रोजगार का स जन (Employment Generation):** लघु व कुटीर उद्योगों के पक्ष में जो सबसे मूल तर्क दिया जाता है, वह रोजगार व द्धि से संबंधित है। बेशक बेरोजगारी हमारे देश की सबसे जटिल समस्या है। कृषि के बाद रोजगार प्रदान करनेवाला दूसरा सबसे बड़ा क्षेत्र लघु व कुटीर उद्योग का है। योजना आयोग के अनुसार लघु तथा कुटीर उद्योगों में 519 लाख लोगों को रोजगार मिल रहा है। इनमें से 120 लाख हथकरघा उद्योग में, 55 लाख लोग रेशम उद्योगों में, 43 लाख लोग ग्रामीण उद्योगों में, 64 लाख लोग दस्तकारी में तथा 15 लाख लोगों को खादी में रोजगार प्राप्त हो रहा है। लघु उद्योगों में लगभग 2 करोड़ लोगों को रोजगार प्राप्त हो रहा है। इनमें

53 लाख लोग पावरलूम में रोजगार प्राप्त कर रहे हैं। देश की बढ़ती हुई जनसंख्या को रोजगार देने के लिए हमारे पास कुटीर एवम् छोटे पैमाने के अतिरिक्त अन्य साधनों की कमी है। कुटीर तथा लघु उद्योग अर्द्ध रोजगार की स्थिति को भी सुधारने में सहायक होंगे। जैसे किसान अपने खाली समय में कुटीर उद्योगों में काम करके अपनी आय बढ़ा सकते हैं। कुटीर उद्योग **छिपी बेरोजगारी** (Disguised Unemployment) को समाप्त करने में सहायक सिद्ध होंगे। भारत में पूँजी की कमी होने के कारण इन कुटीर उद्योगों का विशेष महत्त्व है। क्योंकि ये उद्योग 300 से 1200 रुपये की पूँजी से ही शुरू किए जा सकते हैं। पूँजी के किसी भी निवेश द्वारा लघु क्षेत्र में फैक्ट्री उद्योगों की तुलना में 20 गुणा अधिक रोजगार देने की संभावनाएँ होती है। लघु तथा बड़े उद्योगों में प्रति श्रमिक उत्पादन में व द्धि, प्रति श्रमिक अचल पूँजी तथा प्रति इकाई अचल पूँजी द्वारा उत्पादन में व द्धि हमें निम्न तालिका के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है।

**Table 2: Capital, Employment and Output (Rupees)**

| | Large Scale Industries | Small Scale Industries |
|---|---|---|
| 1. Fixed Capital | 31,000 | 5,800 |
| 2. Value added | 13,730 | 4,700 |
| 3. Value added per rupee of fixed capital | 0.43 | 1.29 |

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि बड़े उद्योगों में 31 हजार रुपये निवेश द्वारा एक व्यक्ति को रोजगार मिलता है जबकि छोटे उद्योगों में 5,800 रुपये खर्च करने पर एक व्यक्ति को रोजगार मिलता है। लघु उद्योगों में अचल पूँजी की एक इकाई से एक रुपये 29 पैसे का उत्पादन होता है जबकि बड़े उद्योगों में केवल 43 पैसे का उत्पादन होता है। एक अनुमान के अनुसार यदि लघु उद्योगों में 500 करोड़ रुपये का निवेश किया जाए तो 10 लाख नए लोगों को रोजगार प्राप्त हो सकता है।

2. **उद्योगों का क्षेत्रीय विकेन्द्रीकरण (Regional dispersal of industries):** औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति पर विचार करते हुए यह स्पष्ट हो गया है कि भारत में बड़े उद्योगों का केन्द्रीयकरण महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, गुजरात, तमिलनाडु में बढ़ रहा है। इससे देश में औद्योगिक द ष्टि से क्षेत्रीय असमानताओं में और अधिक व द्धि की संभावना है। इससे देश का आर्थिक विकास असंतुलित हो जाता है तथा युद्ध के दिनों में इनके नष्ट होने का डर बना रहता है। लघु तथा कुटीर उद्योग सारे देश में फैले होते हैं। इस कारण शहरीकरण के दोषों जैसे बच्चों व स्त्रियों का शोषण, आवास के लिए गन्दी बस्तियाँ आदि से भी बचाव हो सकता है।

3. **राष्ट्रीय आय का समान बँटवारा (Equal Distribution of Wealth of Nation):** ऐसा मुख्यतः दो कारणों से होता है (i) लघु उद्योगों का स्वामित्त्व बड़े उद्योगों की तुलना में अधिक विस्त त व फैला हुआ है तथा (ii) लघु उद्योगों की रोजगार स जन क्षमता बड़े उद्योगों की तुलना में अधिक है। अतः अधिक श्रमिकों को रोजगार मिलता है। पूँजी थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बँटी होने के कारण यह कुछ लोगों के पास केन्द्रित नहीं हो पाती। अतः उद्योगों से जो लाभ मिलता है वह बहुत अधिक लोगों को मिलता है।

4. **उत्पादन में व द्धि (Increase in Production):** लघु उद्योगों से देश के उत्पादन में

व द्धि होने की विशेष संभावना है। औद्योगिकीकरण के क्षेत्र में होनेवाले उत्पादन का 60% भाग बड़े उद्योगों तथा 40% भाग लघु व कुटीर उद्योगों से प्राप्त होता है। 2002 में लघु उद्योगों के उत्पादन का मूल्य 7,42,021 करोड़ रुपये है।

5. **कृषि पर निर्भरता में कमी (Less Dependency on Agriculture):** भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए लघु तथा कुटीर उद्योगों का बहुत अधिक महत्त्व है। प्रतिवर्ष 30 लाख व्यक्ति खेती पर निर्भर होने के लिए बढ़ जाते हैं। अधिक जनसंख्या के आश्रित होने से भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट जाती है और इन छोटे टुकड़ों पर खेती करना लाभदायक नहीं रहता। साथ ही यहाँ छिपी व अल्प बेरोजगारी भी पाई जाती है। अतः कृषि पर निर्भरता को कम करने के लिए लघु व कुटीर उद्योगों की स्थापना करना आवश्यक है।

6. **कलात्मक वस्तुओं का उत्पादन (Production of Artistic Goods):** लघु उद्योगों में कलात्मक वस्तुएँ बनाई जाती है जैसे गलीचे, जड़ाऊ आभूषण, हाथी दांत का काम, बनारसी साडियाँ, मिट्टी के बर्तन, खिलौने आदि। इनकी माँग विदेशों में भी बढ़ रही है। अतः इन उद्योगों द्वारा विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। 2001-2002 में लगभग 4,406 करोड़ रुपये की हस्तकला की वस्तुएँ विदेशों में भेजी गई तथा 34,845 करोड़ रुपये की जवाहरात विदेशों में भेजे गए थे।

7. **व्यक्तिगत रुचि के अनुसार उत्पादन (Production According to Individual Taste):** इन उद्योगों में निर्माता का तथा ग्राहक का आपस में सीधा संबंध होता है। अतः उपभोक्ता अपनी पसंद व रुचि के अनुसार वस्तुएँ बनवा सकते हैं। साथ ही उत्पादन में किसी प्रकार की कमी या उत्पादन को और अच्छा बनाने के सुझाव भी प्राप्त हो सकते हैं।

8. **अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए उपयोगी (Suitable for Under Developed Economics):** अल्पविकसित देशों में इन उद्योगों का विशेष महत्त्व है। इन देशों में जहां श्रम की उपलब्धता अधिक रहती है, वहीं पूँजी की कमी पाई जाती है। लघु तथा कुटीर उद्योग श्रम प्रधान होने के कारण श्रमिकों को रोजगार प्रदान करते हैं इनमें बड़े उद्योगों की अपेक्षा कम पूँजी की आवश्यकता होती है।

9. **सहकारिता को बढ़ावा (Encouragement to Co-operation):** इन उद्योगों का प्रबन्ध सरल होता है तथा पूँजी कम होती है अतः सहकारिता के आधार पर यह धन्धे बहुत अच्छी प्रकार चलाए जा सकते हैं अतः इन उद्योगों से सहकारिता को प्रोत्साहन मिलता है।

10. **बड़े उद्योगों के पूरक (Complementary of Large Industries):** इन उद्योगों में मुख्यतः वही सामान तैयार किया जाता है जो बड़े उद्योगों में भी प्रयोग होता है। जैसे मशीन, मोटर, साइकिल आदि के छोटे कल-पुर्जे लघु उद्योगों में सस्ते में बनाए जा सकते हैं। अतः ये उद्योग बड़े उद्योगों के पूरक हैं।

11. **मालिक तथा मजदूरों के समन्वय (Co-ordination between Owners and Workers):** इन उद्योगों में मजदूरों व मालिकों के प्रत्यक्ष संबंध होते हैं। इसलिए यह आपसी सुविधाओं व असुविधाओं को अच्छी तरह जानते हैं। मध्यस्थों के न होने से शोषण के अवसर भी नहीं होते अतः झगड़े भी कम होते हैं जिससे शान्ति बनी रहती है।

श्रमिकों का स्वाभिमान बना रहता है व आपसी समन्वय भी स्थापित होता है।

12. **निर्यात में योगदान (Contribution to export):** आजादी के बाद बड़े पैमाने पर उद्योगों की स्थापना के कारण निर्यात में इनका योगदान काफी बढ़ा है। बहुत से उद्योग जैसे तैयार वस्त्र, खेल का सामान, चमड़े से निर्मित माल, ऊनी कपड़ों व रसायन पदार्थों तथा इन्जीनियरिंग वस्तुओं आदि में लघु उद्योगों के निर्यात में काफी व द्धि हुई है। सन् 2002 में ग्रामीण तथा लघु उद्योगों द्वारा 59,753 करोड़ रुपये का निर्यात किया गया।

13. **स्थानीय साधनों व उद्यम का प्रयोग (Use of Local Resource and Enterpreneurial Skill):** देश के विभिन्न भागों में ऐसे बहुत सारे साधन उपलब्ध होते हैं जिनकी मांग बड़े उद्योगों में नहीं की जाती और ये व्यर्थ हो जाते हैं। दूसरे बड़े उद्योगों की इन साधनों तक पहुँच नहीं होती। उदाहरणस्वरूप, कस्बों के उद्यमियों की क्षमता का उपयोग लघु उद्योगों में ही हो सकता है। इसी प्रकार, बड़े शहरों से दूर ग्रामीण क्षेत्रों में की जानेवाली बचत को बड़े उद्योगों के लिए संचित कर पाना संभव नहीं होता, परन्तु इन बचतों से घरेलू या लघु उद्योगों की स्थापना की जा सकती है। आजादी के बाद बड़ी संख्या में लघु उद्योगों की स्थापना इस बात का प्रमाण है कि बिजली तकनीकी ज्ञान व साख की सुविधाएँ मिल जाने से अनेक निष्क्रिय साधनों का उत्पादन कार्यों में प्रयोग होने लगा है।

14. **समय पश्चात् अवधि कम (Less Gestation Period):** किसी उद्योग को स्थापित करने तथा उत्पादन आरम्भ करने में जितना समय लगता है उसे समय पश्चात् अवधि कहा जाता है। यह अवधि जितनी कम होगी उत्पादन उतनी ही तेजी से बढ़ेगा व कीमतों में व द्धि अधिक नहीं होगी। लघु उद्योगों में समय पश्चात् अवधि अपेक्षाकृत कम होती है। जबकि बड़े उद्योगों को स्थापित करने व चालू करने में अधिक समय लग जाता है। अतः कीमतों में व द्धि को रोकने के लिए तथा जीवन स्तर को बढ़ाने के लिए, उत्पादन में तेजी से व द्धि लाने के लिए इन उद्योगों का बहुत महत्त्व है।

15. **बड़े उद्योगों की तुलना में महत्त्व (Significance in Comparison of Large Scale Industries):** लघु उद्योग बड़े उद्योगों की तुलना में अधिक लाभदायक है जैसे-ये उद्योग बहुत से लोगों को रोजगार देते हैं, इनका प्रबन्ध तथा स्थापना बड़े उद्योगों की अपेक्षा सरल होती है, ये उद्योग बड़े उद्योगों को कच्चे माल की पूर्ति करते हैं। इनके सहायक उद्योग के रूप में कार्य करते हैं। कई औद्योगिक सेवाएँ जैसे जस्ता चढ़ाना, एनेमल, पॉलिश, नक्काशी, विअतलेपन आदि लघु उद्योगों द्वारा की जाती है। बड़े उद्योग उन वस्तुओं के लिए अधिक उपयोगी हैं जो भारी होते हैं तथा जिन्हें ले जाना कठिन होता है तथ उनका मण्डी के निकट उत्पादन करना कठिन होता है। लघु उद्योग वस्तुओं के उत्पादन के लिए विशेष उपयोगी है जिनमें कुशल कारीगरी, डिजाइन आदि की आवश्यकता होती है।

16. **राजनीतिक तथा सामाजिक लाभ (Political and Social Gain):** राष्ट्रीय जीवन के सर्वांगीण विकास तथा राजनीतिक व सामाजिक द ष्टिकोण से भी इन उद्योगों का पक्ष निर्विवाद रूप से सबल है। ये हमारी उन समस्त शक्तियों को विकसित करने का क्षेत्र प्रदान करते हैं जिनके द्वारा राष्ट्र का स्वस्थ विकास संभव हो सकता है। स्वतन्त्र जीवन, विश्वास, स्नेह, पारस्परिक निर्भरता, सम्मान और अपने कर्तव्यों के विकास के

लिए इनमें बहुत बड़ा क्षेत्र है। यह शान्तिमय पारस्परिक जीवन की नींव रखने में समर्थ है।

योजना आयोग के अनुसार, **''योजनाओं के कुछ महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों जैसे गरीबी दूर करने, आय तथा धन के समान वितरण तथा क्षेत्रीय असमानता को दूर करने के लिए लघु तथा ग्रामीण उद्योगों का बहुत महत्त्व है। इन उद्योगों द्वारा रोजगार के अवसर बढ़ाने, निर्यातों द्वारा अधिक विदेशी मुद्रा कमाने तथा जनसाधारण के लिए आवश्यक वस्तुएँ काफी मात्रा में उत्पादन करने की सम्भावनाएँ हैं''** संसार के लगभग सभी देशों में इन उद्योगों का बहुत अधिक महत्त्व है। अमेरिका में लघु उद्योगों द्वारा 65% मजदूरों को रोजगार प्रदान किया जाता है। ब्रिटेन में जिन कारखानों में 5 से 30 मनुष्य काम करते हैं, वे 29% रोजगार देते हैं। जापान में 83% मजदूर इन उद्योगों से रोजगार प्राप्त करते हैं।

## लघु तथा कुटीर उद्योगों की समस्याएँ
## (Problem of Cottage and Small Scale Industries)

1. **कच्चे माल तथा विद्युत की समस्या (Problem of Raw Material and Electricity):** अधिकतर लघु व कुटीर उद्योग कच्चे माल के लिए स्थानीय स्रोतों पर निर्भर हैं। इसके अलावा हथकरघा व सूत की पूर्ति के लिए स्थानीय व्यापारियों पर निर्भर रहना पड़ता है। ये कच्चे माल की अधिक कीमत लेते हैं व तैयार माल की कम कीमत देते हैं व समय पर माल (कच्चा) भी उपलब्ध नहीं हो पाता। बिजली व कोयले की समस्या भी रहती है संयंत्र का पूरा प्रयोग नहीं हो पाता। कच्चा माल भी थोक में नहीं खरीद पाते। माल घटिया किस्म का तैयार होता है। जिसकी कीमत कम मिलती है।

2. **वित्त तथा साख की समस्याएँ (Problems of Finance and Credit):** पूँजी तथा साख का अभाव लघु उद्योगों की मुख्य समस्या है। कुटीर तथा ग्रामीण उद्योगों की समस्या और भी गरीब हैं। इन्हें आसानी से ऋण प्राप्त नहीं होता क्योंकि निर्धन होने के कारण ये जमानत देने में भी समर्थ नहीं होते। अतः इन्हें साहूकारों पर निर्भर रहना पड़ता है जो इन्हें ब्याज की ऊँची दर पर ऋण देते हैं। लघु उद्योगों को व्यापारिक बैंकों तथा औद्योगिक सहकारी समितियों से बहुत कम पूँजी उधार मिलती है। हालांकि लघु उद्योगों की स्थिति थोड़ी ठीक होती है। परन्तु इन उद्योगों के लिए भी लाभ के लिए भी फिर से निवेश द्वारा पूँजी को बढ़ा पाना संभव नहीं होता।

3. **मशीनें व अन्य उपकरण (Machines and other Equipment):** अधिकतर लघु उद्योगों में मशीनें व यन्त्र पुराने हो चुके हैं। इसलिए उत्पादित माल की क्वालिटी घटिया होने के साथ उत्पादन लागत अधिक होती है। इसके अलावा ये लोगों की रुचियों, फैशन आदि पर भी अधिक ध्यान नहीं देते। अतः लघु औद्योगिक इकाइयों में शीघ्र-से-शीघ्र आधुनिकीकरण किया जाना चाहिए।

4. **उत्पादन के पुराने तरीके (Old Methods of Production):** एक कठिनाई यह भी है कि इन उद्योगों के उत्पादन के तौर-तरीके आमतौर पर पुराने व घटिया किस्म के होते हैं। जैसे तेल निकालने के लिए छानिया, कपड़ा बुनने के लिए हथकरघे आदि। वर्तमाल काल में विज्ञान की उन्नति के आश्चर्यजनक परिणाम सामने आए हैं मगर अभी तक वैज्ञानिक उन्नति का लघु व कुटीर उद्योगों पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। कारीगर अभी भी गरीब व कम कार्यकुशल तथा अशिक्षित है। वे नए प्रयोग करने का जोखिम भी नहीं उठा पाते व दकियानूसी सोच के कारण वही घिसा-पिटा उत्पादन

करते हैं।

5. **विपणन की समस्या (Problem of Marketing):** भारतीय लघु उद्योगों की यह एक बहुत बड़ी कमजोरी है कि उनके पास बिक्री के लिए संगठन का अभाव है। लघु इकाइयों द्वारा मानक वस्तुओं का भी उत्पादन नहीं किया जाता। इन उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की बाहरी दिखावट व डिजाइन भी अच्छे नहीं होते। इन्हें अपना माल बेचने के लिए सहकारी संस्थाओं व अन्य प्रकार की सुविधाएँ न मिलने के कारण, साहूकारों व महाजनों पर ही निर्भर रहना पड़ता हैं अतः वे जो कीमत देते हैं वह उन्हें स्वीकार करनी पड़ती है क्योंकि कच्चे माल की आपूर्ति भी तो वहीं से होती है अतः वह साहूकारों को कैसे नाराज कर सकते हैं। लागत अधिक होने के कारण व मूल्य कम मिलने के कारण इन्हें विशेष लाभ नहीं होता है।

6. **बड़े उद्योगों से प्रतियोगिता (Competition with Large Scale Industries):** बड़े उद्योग वैज्ञानिक ढंग से संगठित होते हैं। अतः उत्पादन व विपणन आदि क्षेत्रों में आधुनिक विधियों का व्यवहार करते हैं। इनकी लागत कम होती है और उत्पादन सस्ता व अच्छी श्रेणी का तथा स्टाईलिश होता है। जबकि लघु-उद्योगों में सब इसका उल्टा होता है। अतः ये बड़े उद्योगों से प्रतियोगिता का सामना करने में असमर्थ हैं।

7. **उत्पादन की ऊँची लागत (High Cost of Production):** चूँकि इन उद्योगों को कच्चा माल काफी महँगा मिलता है, औजार भी पुराने व अधिक कुशल नहीं है। उत्पादन के तरीके पुराने होते हैं तथा थोड़ी मात्रा में उत्पादन करने के कारण स्थिर लागत (Fixed cost) भी अधिक होती है। जिससे उत्पादन लागत ऊँची होती है।

8. **विज्ञापन का अभाव (Lack of Advertisement):** लघु व कुटीर उद्योग चलानेवालों के पास विज्ञापन सुविधाओं का उपयोग करने की सुविधा नहीं होती और न ही सामर्थ्य होती है। ये टेलीविजन जैसे सशक्त माध्यम द्वारा विज्ञापन नहीं कर पाते जिससे इनके द्वारा उत्पादित माल का लोगों को ज्ञान नहीं होता। इसी कारण से माँग भी नहीं हो पाती।

9. **करों की ऊँची दर (High Rate of Taxes):** इन उद्योगों पर स्थानीय अधिकारियों द्वारा ऊँचे कर लगा दिए जाते हैं जिससे वस्तुएँ और अधिक महँगी हो जाती है।

10. **विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन (Production of the things of luxury):** भारत के कुटीर उद्योगों में अभी तक कलात्मक, महँगी व विलासिता की वस्तुओं को ही महत्त्व दिया है। इन वस्तुओं की माँग का क्षेत्र सीमित है अतः इनका उत्पादन बढ़ाने में कठिनाई होती है।

11. **योग्य उद्यमियों की कमी (Lack of Able Enterpreneurs):** इन उद्योगों को कुशलतापूर्वक चलाने के लिए योग्य, कुशल, शिक्षित व परिश्रमी उद्यमियों की आवश्यकता है जबकि इन उद्योगों में काम करनेवाले अधिकतर उद्यमी कुशल, अशिक्षित, रूढ़िवादी हैं ये अपने उद्योगों को अच्छी तरह संगठित भी नहीं कर पाते। स्टेट बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार इन उद्योगों के असफल होने का एक मुख्य कारण सफल उद्यमियों की कमी ही है।

12. **बीमार अथवा रुग्ण इकाइयाँ (Sick Industries):** भारत में बीमार उद्योगों को काफी हानि उठानी पड़ रही है। भारत में बीमार उद्योगों का प्रतिशत लगभग 38.6 है।

13. **मानकीकरण का अभाव (Lack of Standardisation):** श्रेणीकरण का अभाव तथा मानकीकरण का अभाव इन उद्योगों की मुख्य कमजोरी है जिसके कारण इनके कारीगरों को अच्छे माल के अच्छे पैसे नहीं मिल पाते।

14. **क्षमता का अल्प प्रयोग (Under-utilisation of Capacity):** लघु क्षेत्र की इकाइयों में क्षमता के अल्प प्रयोग के बारे में 1987-88 की दूसरी जनगणना में आँकड़े दिए गए हैं। इससे स्पष्ट है कि लघु इकाइयों में काफी क्षमता का प्रयोग नहीं हो पाया है। उदाहरण के लिए 1987-88 में क्षमता प्रयोग, बिजली मशीनरी व पुर्जों के उद्योग में 41%, चमड़ा-उत्पादों में 58%, परिवहन उपकरण व पुर्जों में 60%, अन्य विनिर्माण उद्योगों में 30% तथा धातु उत्पादों में 32% था। सभी लघु इकाइयों को मिला कर देखा जाए तो क्षमता उपयोग लगभग 48% है। इससे पता चलता है कि लघु औद्योगिक इकाइयों में स्थापित क्षमता का लगभग आधा ही प्रयोग हो पाता है।

15. **कमजोर व्यवस्था व प्रबन्ध (Week Management):** छोटे उद्यमों में प्रबन्ध साधारणतया उनके स्वामियों के हाथ में होता है जिनमें प्रायः कुशल प्रबंधन की निपुणता नहीं होती। समुचित ढंग का श्रम-विभाजन न होने के कारण यहाँ विशिष्टीकरण के लाभ उपलब्ध नहीं हो पाते।

## सुधार के उपाय
## (Suggestions for Improvement)

लघु तथा कुटीर उद्योगों की समस्याओं के समाधान के लिए बहुत अधिक कार्य किए गए हैं। पँचवर्षीय योजनाओं में इन उद्योगों की तरफ बहुत ध्यान दिया गया है। इनको ध्यान में रखते हुए इन उद्योगों की समस्याएँ दूर करने के निम्न उपाय किए जा सकते हैं।

1. **कच्चे माल की आपूर्ति (Supply of Raw Material):** लघु उद्योगों में कच्चे माल की आपूर्ति अच्छी तरह नहीं हो पाती। अतः उद्योगों को कच्चे माल की लगातार पूर्ति के विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए। इन उद्योगों की तर्ज पर कच्चे माल का कोटा उनकी स्थापित क्षमता के आधार पर दिया जाना चाहिए। बालचन्द्रम समिति के अनुसार लघु उद्योगों को दुर्लभ कच्चा माल राज्य लघु उद्योग निगम द्वारा दिया जाना चाहिए। इन उद्योगों को विदेशों से आवश्यक कच्चा माल मँगाने के लिए अधिक विदेशी मुद्रा दी जानी चाहिए।

2. **साख सुविधाएँ (Credit Facilities):** बैंकों द्वारा दिए जाने वाले कर्जों का बहुत कम उद्योग ही लाभ उठा पाते हैं क्योंकि बैंक दिए जानेवाले कर्जों पर जमानत माँगते हैं। बैंकों द्वारा लघु उद्योगों को सम्भावित साख शक्ति के आधार पर कर्जे दिए जाने चाहिए। बैंकों व साख संस्थाओं को इन उद्योगों के प्रति उदार रवैया अपनाना चाहिए।

3. **उत्पादन विधि में सुधार (Improvement in the Method of Production):** लघु उद्योगों में उत्पादन के लिए आधुनिक मशीनों अथवा औजारों का प्रयोग किया जाना चाहिए। नए औजार उपलब्ध कराने के लिए 'किराया क्रय पद्धति' का प्रयोग किया जाना चाहिए। राज्यों की स्थिति के अनुसार तकनीकी सलाह देनी चाहिए व उत्पादन में सुधार के लिए अनुसन्धान किए जाने चाहिए।

4. **विज्ञापन (Advertisement):** इन उद्योगों का प्रचार व प्रसार देश-विदेश में किया जाना चाहिए जो कि प्रभावशाली ढंग से होना चाहिए। इसमें सरकार को इन उद्योगों

की मदद करनी होगी क्योंकि लघु उद्योग चलानेवाले इतनी क्षमता नहीं रखते कि वह इनका प्रबन्ध कर सकें।

5. **बिक्री की सुविधाएँ (Facilities of Marketing):** इन उद्योगों की प्रमुख समस्या बिक्री की समस्या है। इन उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की बिक्री उचित मूल्य पर तथा अधिक मात्रा में होनी चाहिए। एक ऐसी संस्था की स्थापना की जाए जहाँ उद्योग अपनी वस्तुओं को एक नाम अर्थात् ट्रेड मार्क पर बेच सकें।

6. **अनुसंधान को बढ़ावा (Increasing in Research):** इन उद्योगों में अनुसंधान करने की बहुत अधिक आवश्यकता है। अनुसंधान के द्वारा उत्पादन की नई तकनीकों का प्रयोग किया जा सकता है जिससे उत्पादन उच्च कोटि का होगा तथा साथ ही लागत भी कम होगी।

7. **उद्योगों को प्रशिक्षण (Training to Industries):** उद्योगों को प्रशिक्षण देने के लिए उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। प्रशिक्षण संस्थान खोले जाने चाहिए। **फोर्ड फाउण्डेशन द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन दल** (International Planning Team) ने सुझाव दिया था कि 4 बहुउद्देश्य है टैक्नोलोजी इन्स्टीट्यूशन खोले जाने चाहिए तथा एक राष्ट्रीय डिजाइन स्कूल खोला जाना चाहिए। राष्ट्रीय लघु उद्योग सेवा संस्था को अधिकारियों को स्वयं भी निरन्तर नई तकनीकों के संपर्क में रहना चाहिए ताकि वह उचित प्रशिक्षण दे सकें।

8. **प्रबन्धकीय सुझाव (Managerial Consultant):** इन उद्योगों को प्रबन्धकीय सलाह दी जानी चाहिए। प्रबन्ध सलाहकारों की संख्या में व द्धि करके उद्योग व सरकार मिल-जुलकर धन का प्रबन्ध कर सकते हैं। तकनीक विकास प्रयोगशालाएँ विकसित की जानी चाहिए।

9. **सरकारी संरक्षण (Government Protection):** इसके लिए सरकार का विशेष प्रयत्न किया जाना आवश्यक है। लघु उद्योगों को बड़े उद्योगों का पूरक बनाकर चलाया जाना चाहिए। इन उद्योगों द्वारा अर्द्धनिर्मित वस्तुओं का उत्पादन किया जाना चाहिए जिसे बड़े उद्योगों द्वारा उचित दामों पर खरीदा जाना चाहिए।

10. **सरकार द्वारा खरीद (Purchasing by the Government):** सरकार को चाहिए कि वह इन उद्योगों द्वारा तैयार माल को स्वयं ही उचित दामों पर खरीद ले या फिर इनके लिए बिक्री का प्रबन्ध कर दे। इसके लिए सरकार दुकानें आदि खरीद कर उन्हें कम किराए पर मुहैया करवा सकती है।

11. **आधुनिकीकरण (Modernisation):** इन उद्योगों में आधुनिकीकरण की हर स्तर तक आवश्यकता है जिससे इनके द्वारा किए जानेवाले उत्पादन की किस्म में सुधार होगा व उत्पादन लागत भी कम होगी।

## लघु उद्योग व सरकारी नीतियाँ
## (Small Scale Industries and Government Policies)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात लघु व कुटीर उद्योगों के विकास के लिए विभिन्न कदम उठाए गए। इस उद्देश्य से 1947 में ही कुटीर उद्योग बोर्ड की स्थापना की गई। पहली पँचवर्षीय योजना की अवधि में इसे तीन अलग-अलग बोर्डों में विभाजित कर दिया गया। नए स्थापित होनेवाले

बोर्ड थे-(1) अखिल भारतीय हथकरघा बोर्ड (अक्टूबर 1952), अखिल भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड (नवंबर 1952) और अखिल भारतीय खादी व ग्रामोद्योग बोर्ड (फरवरी 1953)। सन् 1948, 1956, 1980 तथा 1991 की औद्योगिक नीतियों में इन उद्योगों के महत्त्व को स्वीकार किया गया। इन उद्योगों के विकास के लिए सरकार ने समय-समय पर कई समितियाँ नियुक्त की। इनमें **कार्वे समिति** (1955) **आबिद हुसैन कमेटी** ने उद्योगों से संबंधित नीति का तर्कपूर्ण विवेचन किया हैं इन उद्योगों के संबंध में सुझाव देने के लिए **फोर्ड फाउन्डेशन** दल तथा अन्य समितियाँ भी नियुक्त की गई।

योजनाओं की अवधि में सरकार ने इन उद्योगों के विकास के लिए निम्नलिखित प्रयास किए हैं -

1. **विपणन संबंधी सुविधाएँ (Marketing Facilities):** विभिन्न संस्थाओं को स्थापित करने के अलावा केन्द्रीय व राज्य सरकारें अन्य दिशाओं में भी बहुत कुछ कर रही हैं। उदाहरणतः सरकारी खरीद के नियमों व शर्तों को इन उद्योगों के लिए काफी ढील दी गई है। ताकि सरकारी क्षेत्र में इनके माल की बिक्री बढ़ सके। इस उद्देश्य से केन्द्रीय **कुटीर उद्योग भँडार** की स्थापना की गई। देश के कई भागों में इन उद्योगों का सामान बेचने के लिए करीब 190 दुकानें व भण्डार खोले गए। विदेशों में इन वस्तुओं की बिक्री के लिए विज्ञापन, प्रदर्शनी, मेलों आदि का प्रसार किया जा रहा है। **राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम** (National Small Scale Industries Corporation) भी तैयार माल की बिक्री का प्रबन्ध करता है। इन उद्योगों के बने माल की माँग लेटिन अमेरिका, पश्चिमी यूरोप, जापान, अफ्रीका में बढ़ रही है। राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम विदेशों से आर्डर प्राप्त करता है।

2. **संगठन (Organisation):** लघु उद्योगों के विकास के लिए कई प्रकार के संगठन बनाए गए हैं। केन्द्र में एक **लघु उद्योग संगठन** (Small Scale Industries Development Organisation) बनाया गया है। जिसके अध्यक्ष को **विकास कमिश्नर** (Development Commissioner) कहते हैं। केन्द्रीय उद्योग मन्त्री की अध्यक्षता में, **''अखिल भारतीय लघु उद्योग बोर्ड''** (All India Small Industries Board) की स्थापना की गई है। राज्यों में **राज्य लघु उद्योग बोर्ड** (State Small Scale Industries Board) बनाए गए हैं। इन संगठनों का उद्देश्य इन उद्योगों के संबंध में जाँच पड़ताल करना व विकास में सहायता देना है। केन्द्र सरकार के सहयोग से एक (Federation of Small Scale Industries in India) की स्थापना की गई है। इन उद्योगें के महत्त्व को देखते हुए उद्योग मंत्रालय में एक **''लघु उद्योग, कृषि एवम् कुटीर उद्योग विभाग''** (Development of Small Scale, Agro and Rural Industries) की स्थापना की गई है।''

3. **वित्त संबंधी सुविधाएँ (Financial Facilities):** इन उद्योगों के लिए वित्त-संबंधी सुविधाओं को काफी बढ़ा दिया गया है। इन उद्योगों को वित्तीय सहायता मुख्यरूप से निम्नलिखित संस्थाओं द्वारा दी जाती है।

   (i) **राज्य सरकारें:** प्रत्येक राज्य की सरकारें इन उद्योगों को दीर्घकालीन ऋण प्रदान करती है।

   (ii) **सहकारी तथा व्यापारिक बैंक:** ये बैंक लघु उद्योगों को कम ब्याज पर ऋण देते हैं।

   (iii) **राज्य वित्त निगम:** ये निगम लघु उद्योगों को काफी मात्रा में ऋण प्रदान करते हैं।

2001-02 में इन निगमों ने 1,627 करोड़ रुपये के ऋण उद्योगों को दिए थे।

(iv) **रिजर्व बैंक:** 1 जुलाई 1960 से रिजर्व बैंक ने इन लघु उद्योगों को दिए जानेवाले कर्जों की गारण्टी हेतु **'साख गारण्टी योजना'** आरम्भ की है। स्टेट बैंक, सहकारी बैंक तथा राष्ट्रीयकृत बैंक इन उद्योगों को ऋण देने लगे हैं। लघु उद्योगों को दिए जानेवाले ऋण पर ब्याज की दर काफी कम होती है।

(v) **राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम:** यह निगम इन उद्योगों को किस्त पद्धति के द्वारा मशीनें व उपकरण उपलब्ध करवाता है। **नायक समिति** ने 1913 में लघु उद्योगों की वित्त व्यवस्था संबंधी कई सुझाव दिए हैं।

4. **भारतीय लघु औद्योगिक विकास बैंक (Small Industries, Development Bank of India):** 25 अक्टूबर 1989 को **भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक** (Small Industries Development Bank of India) की स्थापना की गई है इस बैंक ने 2 अप्रैल 1990 से अपना कार्य शुरू किया था। इस बैंक की पूँजी 1,000 रुपये तक बढ़ाई जा सकती है।

5. **उत्पादन के आधुनिक तरीके व उपकरण (Modern Tools and Method of Production):** उत्पादन विधियों तथा उपकरणों में सुधार लाने की दिशा में काफी कार्य किया जा रहा है। लघु उद्योगों में उत्पादन-प्रणाली व व्यवस्था में सुधार के लिए सहायता देने के उद्देश्य से भारत सरकार ने केन्द्रीय लघु उद्योग विकास संगठन (Central Small Industries Development Organisation) तथा चार प्रादेशिक लघु उद्योग सेवा संस्थान (Regional Small Industries Service Institute) स्थापित किए हैं। लघु उद्योगों को उन्नत औजार देने के लिए 'किराया क्रय पद्धति' (Hire Purchase System) का प्रबन्ध किया गया है। राष्ट्रीय लघु उद्योग कॉरपोरेशन (National Small Industries Corporation) का यह प्रमुख कार्य है। अब तक लगभग 100 करोड़ रुपये की 29,000 मशीनें लघु उद्योगों को दी जा सकती है।

6. **नायक समिति का गठन (Establishment of Nayak Committee):** लघु उद्योगों की वित्तीय तथा अन्य मामलों की समस्याओं के लिए **नायक समिति** का गठन किया था। इस समिति ने सितंबर 1992 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। इस रिपोर्ट के आधार पर रिजर्व बैंक ने 1993 में लघु उद्योगों को उचित समय पर ऋण देने के लिए एक पैकेज की घोषणा की है। इस पैकेज की मुख्य विशेषताएँ हैं-(i) लघु उद्योग इकाइयों की ऋण की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बैंकों की एकल खिड़की निकासी योजना (Single Window Clearance Scheme) अपनानी चाहिए। (ii) आठवीं योजना के दौरान लघु उद्योगों की सभी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बैंकों को अधिक ऋण की व्यवस्था करनी चाहिए। (iii) प्रत्येक बैंक में एक शिकायत निवारण कार्यप्रणाली (Grievance Redressal Machinery) की स्थापना की जाए जिसमें लघु उद्योगों की इकाइयाँ अपनी शिकायत दर्ज करा सके।

7. **सरकार द्वारा क्रय (Purchase by the Government):** सरकार भी लघु उद्योगों की काफी सहायता करती है। लघु उद्योग द्वारा बनाया हुआ बहुत सामान खरीदती है। सरकार 400 वस्तुएँ केवल लघु उद्योगों से ही खरीदती है।

8. **प्रशिक्षण तथा अनुसंधान (Training and Research):** इन उद्योगों में प्रशिक्षण देने व अनुसंधान करने के लिए कई केन्द्र स्थापित किए गए हैं, जो सेवा संस्थाओं तथा

प्रसार केन्द्रों द्वारा प्रशिक्षण में सहायता देते हैं। आविष्कार प्रोत्साहन मण्डल भी स्थापित किया गया है। इन उद्योगों के प्रबंधकों को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की गई है।

9. **औद्योगिक सहकारी समितियाँ (Industrial Co-operatives Societies):** औद्योगिक सहकारी समितियों की संख्या में व द्धि लाने की ओर भी ध्यान दिया जा रहा है। सरकार और योजना-आयोग इस बात को स्पष्ट स्वीकारते हैं कि लघु उद्योगों के स्वस्थ व तीव्र विकास में औद्योगिक सहकारी समितियाँ काफी मदद कर सकती है। यही वजह रही है कि पँचवर्षीय योजनाओं में सहकारी समितियों के विकास पर बहुत बल दिया गया है। 1950-51 में औद्योगिक सहकारी समितियों की संख्या कुल 7 हजार के लगभग थी, जबकि 30 वर्ष के बाद 1980-81 में यह संख्या बढ़कर 48 हजार के स्तर को पार कर चुकी थी।

10. **सम्मिलित उत्पादन कार्यक्रम द्वारा बड़े उद्योगों की प्रतियोगिता से बचाव (Safty from Large Scale Industries threw Common Production Programme):** लघु व कुटीर उद्योगों के विकास के संबंध में सरकार ने एक और महत्त्वपूर्ण कदम उठाया है। वह है इन उद्योगों को बड़े उद्योगों की अनुचित प्रतिस्पर्धा से बचाने का। प्रथम पँचवर्षीय योजना में कहा गया कि बड़े स्तर के उद्योगों तथा लघु उद्योगों में प्रतियोगिता कम करने के लिए सम्मिलित उत्पादन कार्यक्रम बनाए जाएँ। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत लघु उद्योगों के उत्पादन के क्षेत्र को सुरक्षित रखा जाए और बड़े उद्योगों के विस्तार पर रोक लगाई जाए। इन उद्योगों के लिए कच्चे माल की पूर्ति की व्यवस्था की जाती है। लघु क्षेत्र के उद्योगों के लिए 821 वस्तुएँ सुरक्षित रखी गई है।

11. **तकनीकी सहायता (Technical Assistance):** लघु उद्योगों को तकनीकी शिक्षा देने के लिए **''लघु उद्योग विकास संगठन''** (Small Industries Development Organisation) के द्वारा सभी राज्यों में **28 लघु उद्योग सेवाएँ संस्थाएँ, 31 शाखा संस्थाएँ, 4 क्षेत्रीय टेस्टिंग केन्द्र** तथा **37 प्रसार केन्द्र** स्थापित किए हैं। ये संस्थाएँ लघु उद्योगों को तकनीकी, औजारों, डिजाइनों के बारे में सहायता देती है। इन उद्योगों को तकनीकी सलाह देने के लिए विदेशी विशेषज्ञ भी बुलाए गए हैं। ये संस्थाएं प्रबन्ध तथा तकनीकी अनुसंधान संबंधी शिक्षा भी देती हैं।

12. **जिला उद्योग केन्द्र (District Industries Centre):** लघु उद्योगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रत्येक जिले में एक जिला उद्योग केन्द्र (DIC) स्थापित किया जा रहा है। इसका कार्य जिले में कच्चे माल तथा अन्य साधनों का आर्थिक अन्वेषण करना, कच्चे माल का प्रबंध करना, मशीनों की पूर्ति करना, क्वालिटी नियंत्रण करना, बिक्री व्यवस्था करना, उधार देने का प्रबंध करना तथा विस्तार व अनुसंधान के लिए एक विभाग की स्थापना करना है। यह केंद्र एक ओर जहाँ विकास खण्डों से संबंध रखेगा वहीं दूसरी तरफ विशिष्ट संस्थाओं जैसे लघु सेवा संस्थान से संबंध रखेगा। सन् 2002 तक 422 ऐसे केन्द्रों की स्थापना की जा चुकी है।

13. **टैक्नोलॉजी बैंक की स्थापना (Establishment of Technology Bank):** लघु उद्योगों के लिए टैक्नोलॉजी बैंक स्थापित किए जाने का विचार है। इसके लिए भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक द्वारा स्थापित लघु उद्योगों की तकनीकी ब्यूरो की ओर द ढ़ता प्रदान की जाएगी।

14. **कच्चा माल खरीदने की सुविधाएँ (Facilities of Purchasing of Raw Material):**

इन उद्योगों को विदेशों से कच्चा माल खरीदने की सुविधाएं दी गई हैं। **राज्य व्यापार निगम** तथा खनिज तथा धातु निगम जैसी संस्थाओं द्वारा लघु उद्योगों के लिए कच्च माल विदेशों से आयात किया गया।

15. **निर्यात बढ़ाने के प्रयत्न (Try to Increase in Export):** इन उद्योगों के द्वारा बनाए गए माल के निर्यात को बढ़ाने के लिए सरकार विशेष प्रयत्न कर रही है। राजकीय व्यापार निगम लघु उद्योगों के निर्यात व्यापार के संबंध में उनकी आर्थिक सहायता करता है तथा उन्हें सलाह भी देता है।

16. **विभिन्न कर (Different Tax):** सरकार ने लघु उद्योगों को छूट दी है या उन पर वह कर नहीं लगाए गए हैं जो बड़े उद्योगों पर लगाए गए हैं। परिणामस्वरूप अब करों से बचने के लिए नई इकाइयाँ छोटे पैमाने पर लगाई जा रही है।

17. **औद्योगिक बस्तियाँ (Industrial Estates):** लघु उद्योगों के लिए औद्योगिक बस्तियाँ स्थापित की हैं। सरकार जमीन खरीद कर इन बस्तियों में कारखानों के लिए इमारतें बनाती है। पानी, बिजली गैस, रेलें तथा सुरक्षा का प्रबन्ध करती है। इसके बाद कारखानों को किराए पर देती है या कम कीमत पर बेच देती है। भारत में लगभग 660 ऐसी बस्तियाँ हैं। इनमें 2.3 लाख लोगों को रोजगार मिलता है।

18. **राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (National Small Scale Industries Corporation):** इस निगम की स्थापना 1955 में की गई थी। इसके मुख्य कार्य हैं-लघु उद्योगों को पूँजी तथा तकनीक सहायता देना, सरकार को लघु उद्योगों का माल बेचना, बड़े व छोटे उद्योगों के मध्य तालमेल बिठाना, उद्योगों को मशीनें उपलब्ध करवाना आदि। इस निगम में 50,000 लघु उद्योगों की स्थापना में सहायता दी है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सरकार उत्साहपूर्वक लघु व कुटीर उद्योगों के लिए विभिन्न कार्य कर रही है। यदि यही स्थिति कुछ समय तक निरन्तर इसी उत्साह से चलती रही तो बेशक ये उद्योग राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में अपना उचित स्थान ग्रहण कर देश की आर्थिक व सामाजिक उन्नति में अपना सार्थक योगदान देंगे।

# नई लघु उद्योग नीति
## (New Small Scale Industries Policy)

6 अगस्त, 1991 को पहली बार अलग से लघु उद्योगों के लिए नई नीति की घोषणा की गई है।

### नई नीति के उद्देश्य
### (Motives of New Policy)

नई उद्योग नीति का मुख्य उद्देश्य लघु क्षेत्र को हर प्रकार से सुद ढ़ बनाना है चाहे वह उत्पादन क्षमता हो या किस्म में सुधार हो। ताकि लघु क्षेत्र देश की अर्थव्यवस्था में अपना पूर्ण साथ दे सके।

### नई नीति की विशेषताएँ
### (Features of New Policy)

1. **उद्योगों का विभाजन (Classification of Industries):** लघु उद्योगों को तीन भागों में (i) अति लघु उद्योग, (ii) सहायक उद्योग व निर्यात उद्योगों में बाँटा जाएगा। इन

उद्योगों की पूँजी क्रमशः 5 लाख, 3 करोड़ तथा (iii) लघु उद्योगों में पूँजी निवेश की अधिकतम सीमा 75 लाख रुपये निर्धारित की गई है।

2. **पूँजी में भागीदारी (Equity Participation):** इस नीति के अनुसार बड़े उद्योग लघु उद्योगों के 24 प्रतिशत तक शेयर खरीद सकेंगे। साथ ही लघु उद्योगों को बड़े उद्योगों में पूँजी की भागीदारी की अनुमति होगी।

3. **उद्योग की पहचान (Identity of Industry):** नई नीति के अनुसार उद्योगों में केवल उन उद्यमों को ही शामिल नहीं किया जाएगा जो वस्तु-निर्माण करते हैं बल्कि उद्योगों से संबंधित सभी व्यापार तथा सेवा उद्यमों को चाहे वे कहीं भी स्थित हो लघु उद्योग माना जाएगा। इनमें पूँजी निवेश की सीमा 5 लाख रुपये तक होगी।

4. **वित्त संबंधी सहायता (Financial Support):** नई नीति में लघु उद्योगों को प्राप्त होने वाली वित्तीय सहायता से इस तरह विस्तार किया है-राष्ट्रीय इक्विटी कोष को बढ़ावा दिया जाएगा, आसान ऋण योजना का विस्तार किया जाएगा तथा लघु उद्योगों को साख का प्रवाह सुनिश्चित करने के लिए प्रयास किए जाएँगे। एक विशेष मानीटरिंग एजेन्सी की स्थापना की जाएगी।

5. **सीमित साझेदारी (Limited Partnership):** इसके अनुसार किसी संगठन में यदि एक साझेदार का दायित्त्व असीमित है तो बाकी साझेदारों का दायित्त्व सीमित हो सकता है। इसके लिए लघु उद्योग क्षेत्र में जोखिम की पूर्ति को बढ़ाने के लिए एक सीमित साझेदारी कानून पास किया जाएगा।

6. **संरचनात्मक सुविधाएँ (Infrastructural Facilities):** ग्रामीण तथा पिछड़े क्षेत्रों में आसानी से उद्योग स्थापित किए जाने और कृषि एवम् उद्योग के संबंधों में प्रगाढ़ता लाने के लिए एक नई योजना, लघु उद्योगों के एकीकृत संरचनात्मक विकास लागू की जाएगी।

7. **फैक्टरी संबंधी सुविधाएँ (Factoring Services):** लघु उद्योगों में ऋण वसूली की समस्या के समाधान के लिए लघु उद्योग विकास बैंक की सहायता से फैक्टरिंग सेवाएँ लागू की जाएँगी। भारत में फैक्टरिंग सेवाएँ शुरू करने का प्रयास किया जाएगा जिसके परिणामस्वरूप लघु उद्योग को पूँजी का अभाव नहीं रहेगा।

8. **विपणन (Marketing):** इन उद्योगों में बिक्री के लिए सहयोग दिया जाएगा। यह कार्य सहकारी, सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं, विशेष विपणन संस्थाओं और संघ प्रणाली के माध्यम से किया जाएगा। राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम उपभोग और कामन ब्राँड के अधीन बेचने का प्रबन्ध करेगा।

9. **कच्चे माल की उपलब्धता (Availability of Raw Material):** लघु क्षेत्र को भारत का तथा विदेशों से आयात किया हुआ माल उपलब्ध कराने के संबंध में योजनाएँ निश्चित की जाएँगी।

10. **निर्यात (Export):** लघु उद्योग विकास संगठन लघु उद्योगों के उत्पादन के निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए **'नोडल एजेन्सी'** के रूप में कार्य करेगा। इसके लिए लघु उद्योग विकास संगठन में एक निर्यात विकास केन्द्र स्थापित किया जाएगा।

11. **उद्यमियों को प्रशिक्षण (Training to Workers):** इस नीति के अनुसार सरकार

उद्यमियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करेगी। उद्यमिता विकास कार्यक्रम का विस्तार किया जाएगा। इस कार्य में प्रभावशाली ढंग से हिस्सा लेने के लिए उद्योग संघों को प्रोत्साहित किया जाएगा। उद्यमिता विकास कार्यक्रम को विकसित करने के लिए व्यावसायिक तथा अन्य डिग्री स्तर के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाएगा। **बेयरफुट प्रबंधकों** के प्रशिक्षण से रोजगार के अवसरों का स जन किया जाएगा।

12. **आधुनिकीकरण (Modernisation):** लघु उद्योगों को उनके उत्पादन को राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर का बनाने के लिए प्रेरित किया जाएगा। इस क्षेत्र में श्रमिकों की कुशलता बढ़ाने, उत्पादन के नए तौर-तरीके, नए उपकरण तथा नई व आधुनिक विधियाँ तथा अच्छी किस्म का कच्चा माल प्रयोग करने के लिए विशेष प्रयास किए जाएँगे। इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलॉजी तथा क्षेत्रीय इन्जीनियरिंग कॉलेज अपने-अपने क्षेत्र में तकनीकी सूचना डिजाइन तथा विकास केन्द्रों का कार्य करेंगे।

13. **आसान नियम (Simple Rules):** इन उद्योगों पर लालफीताशाही तथा नौकरशाही का नियन्त्रण कम किया जाएगा तथा नियमों का सरलीकरण किया जाएगा।

14. **ग्रामीण उद्योगों का विकास (Development of Rural Industries):** ग्रामीण उद्योगों के विकास के लिए विशेष प्रयत्न किए जाएँगे। हथकरघा उद्योग, हस्तशिल्प उद्योग आदि के लिए अलग-अलग स्कीमों जैसे परियोजना पैकेज स्कीम, संगठन विकास पैकेज स्कीम तथा कल्याण पैकेज स्कीम लागू की जाएँगी।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ये उद्योग हमारे देश के आर्थिक व सामाजिक विकास के लिए बहुत आवश्यक हो गए हैं। लघु उद्योग क्षेत्र को काफी हद तक लाइसेंसयुक्त, अधिकारियों तथा निगम से मुक्त किया जाएगा व वह सभी संभव प्रयास किए जाएँगे जो इन उद्योगों की उन्नति के लिए आवश्यक है। ताकि यह उद्योग विकसित होकर अर्थव्यवस्था में अपना सार्थक योगदान दें।

# अध्याय-15
# भारत की निर्यात-आयात नीति
# (Export-Import Policy of India)

जैसा हम भुगतान संतुलन के अध्याय में पहले ही बता चुके हैं कि इस समस्या का समाधान आयात तथा निर्यात क्षेत्र में आने वाली नीति से ही हो सकता है। आयात-निर्यात नीति को वर्णित करने के लिए इसे दो भागों में बाँटा गया है। (1) सुधार से पहले का समय (1991 से पहले) (ii) सुधार के बाद का समय (1991 के बाद का समय)। यद्यपि 1950 तथा 1960 की व्यापार नीतियों का उद्देश्य आत्मनिर्भरता प्राप्त करना था। 1950 तथा 1960 की व्यापार नीतियों का उद्देश्य आत्म-निर्भरता प्राप्त करना था। 1970 तथा 1980 की व्यापार नीति के अन्तर्गत निर्यात प्रोत्साहन व द्धि, भारतीय औद्योगिक क्षेत्र को सुचारू तथा प्रतियोगिता की कतार में लाना था। वर्तमान व्यापार नीति भारतीय अर्थव्यवस्था का उदारीकरण तथा औद्योगिक क्षेत्र की प्रतियोगिता में सुधार व भुगतान संतुलन की औसत स्थिति से है।

1. **आयात नीति (सुधार नीति से पहले का समय (Import Policy [Pre-reform Period])** - सुधार से पहले की आयात नीति आयात पर प्रतिबंध तथा आयात प्रतिस्थापन पर निर्भर थी भारत में आवश्यक उपभोग वस्तुओं की कमी तथा औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देने के लिए पूँजीगत वस्तुओं तथा मशीनरी का आयात करना पड़ा इसी प्रकार औद्योगिकीकरण को प्रतियोगी का अभिप्राय भारत में निर्यात प्रतियोगिता को बढ़ावा देना था।

   इसी प्रकार दूसरी पंचवर्षीय योजना में औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देने के लिए महलानोबिस पद्धति को अपनाया। इस पद्धति के तहत पूँजीगत वस्तुओं का आयात, तकनीकी ज्ञान, मशीनरी का आयात करना तथा साथ में खाद्यान्न की कमी की वजह से खाद्यान्न वस्तुओं का आयात करना था। ऐसी अवस्था में भारतीय अर्थव्यवस्था के पास कोई चारा नहीं था सिवाय आयात पर प्रतिबंध लगाकर। इसलिए 1956-57 में देश ने आयात पर प्रतिबंध अथवा आयात पर प्रतिबंध के लिए वस्तुओं को भी अलग-अलग वर्ग में बाँटा गया। कुछ को आयात करने के लिए लाइसेंस खुला रखा। कुछ को कुछ समय के लिए प्रतिबंधित किया गया तथा कुछ को हमेशा के लिए प्रतिबंधित किया गया। लेकिन 1966 में रुपए का अवमूल्यन करने बाद आपात में बढ़ोत्तरी हुई क्योंकि 1966 की नई कृषि नीति के बाद खाद, बीज, कीटनाशक आदि को भारी मात्रा में आयात करना पड़ा।

   दूसरा उपाय आयात को नियंत्रित करने का आयात प्रतिस्थापन था। जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं कि 1950 तथा 1960 की व्यापार नीति का मुख्य उद्देश्य आत्म-निर्भरता प्राप्त करना था। इसका मुख्य उदाहरण नई कृषि नीति है जिसके तहत भारतीय कृषि क्षेत्र में खाद्यान्न का अधिक उत्पादन होने पर आयात पर निर्भरता कम

हुई। क्योंकि नई कृषि नीति से पहले भारत काफी मात्रा में खाद्यान्न वस्तुओं का आयात करता था। यद्यपि भारत जैसे देश में आयात प्रतिस्थापना का मतलब विदेशी विनिमय बचाना है। कृषि क्षेत्र में ही नहीं भारत मे निर्मित वस्तुओं के आयात प्रतिस्थापन में भी लगभग 40 प्रतिशत की व द्धि की। यदि आँकड़ों का आँकलन किया जाए तो 1955-56 में आयात का हिस्सा उपभोग वस्तुओं में 3.7 प्रतिशत था जो गिरकर 1973-74 में 1.1 प्रतिशत रह गया। इससे इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि भारत में आयात प्रतिस्थापन पद्धति कामयाब रही।

लेकिन 1980 की आयात उदारीकरण नीति से आयात का स्तर बढ़ा। इस नीति के अन्तर्गत आयात प्रतिबंध हटा लिए गए। क्योंकि औद्योगिक क्षेत्र के लिए पूँजीगत वस्तुओं की बहुत आवश्यकता थी - जो निर्यात को बढ़ाने में सहायक थी। इसके अन्तर्गत अधिकतर वस्तुएँ बगैर लाइसेंस के आयात की जा सकती थी। इसके अन्तर्गत सूची बढ़ती गई तथा 1990-92 में 1342 वस्तुओं को लाइसेंस से स्वतन्त्र रखा गया। पूँजीगत वस्तुओं को ध्यान में रखते हुए कुछ मशीनरी, सहायक लाइसेंस से स्वतंत्र रखे गए। इनकी संख्या 1990-92 में 870 की। तकनीकी आयात के लिए भी सरकार ने उदारीकरण की नीति अपनाई। इसके पीछे मुख्य उद्देश्य तकनीकी की सहायता से निर्यात को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रतियोगी बनाना था।

लेकिन प्रो० जगदीश भगवती और पदमा देसाई का कहना है कि आयात नीति से कई आर्थिक प्रभाव पड़े - जैसे उत्पादन में देरी क्योंकि तकनीकी आदि के लिए आयात पर निर्भरता, प्रतियोगिता की भावना में भी कमी आई क्योंकि हम अपने आप शोध आदि कार्यों ने ध्यान न देकर विदेशी तकनीक पर निर्भर रहे।

2. **निर्यात नीति (सुधार से पहले का समय)** **(Export Policy [Pre-reforms Period])** - त तीय योजना से पहले भारत के निर्यात आमतौर पर स्थिर थे। तीसरी योजना में निर्यात बढाने के लिए कुछ कदम उठाए गए। यह निर्यात का पहला कदम था। दूसरा कदम जून 1965 में सोने के संबंध में रुपए का 36.5 प्रतिशत अवमूल्यन किया गया। सरकार सोचती थी कि अवमूल्यन से निर्यात मे बढ़ोत्तरी होगी अर्थात् निर्यात आय बढ़ेगी क्योंकि भारतीय वस्तुएँ विदेशी बाजार में सस्ती होंगी। दूसरी तरफ आयात घटेंगे क्योंकि आयातित वस्तुओं की कीमतें बढ़ेंगी। यदि निर्यात नीति का अवमूल्यन करें तो इसमें कई बातें उभर कर आती हैं।

   1. 1966 में कैस कंपन्सेटरी स्कीम (CCS) शुरू की। इस योजना के तहत निर्यात द्वारा आगत पर अप्रत्यक्ष कर में छूट आदि प्रदान की गई। CCS 1991 में व्यापार उदारीकरण के बाद खत्म कर दी गई। 1970 में 20 प्रतिशत तथा 1980 में 40 प्रतिशत निर्यात इस CCS के तहत योग्य था।

   2. कस्टम ड्यूटी तथा एक्साइज ड्यूटी में उद्योग में उत्पादित निर्यात माल के लिए प्रयोग गए माल पर छूट दी गई ताकि इसकी उत्पादन लागत कम हो।

   3. जिन निर्यातकर्त्ताओं को निर्यात का आदेश मिला हुआ है उन्हें पहले ही लाइसेंस दिए गए ताकि निर्यातकर्त्ता जो वस्तुएँ इन निर्यात उत्पादन में काम आती है उसे आयात कर सकें।

4. घरेलू कच्चे माल पर सब्सिडी दी गई ताकि घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय कीमत में अंतर न रहे।

5. निर्यात के लिए वित्त छूट भी दी गई। निर्यातकर्त्ताओं के प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कर मे कमी की गई। तथा इन्हें आँशिक तौर पर आयकर से मुक्त रख गया।

6. 1987 में ब्लैक एक्सचेंज परमिट स्कीम शुरू की गई। इसके अन्तर्गत निर्यातकर्त्ता अपने ब्लैक परमिट को दिखाकर विदेशी विनिमय अपनी निर्यात आय 5-10 प्रतिशत निर्यात प्रोत्साहन के लिए प्रयोग कर सकता है।

## व्यापार नीति (सुधार के बाद)
## (Trade Policy (After Reform))

1991 के बाद व्यापार नीति का उदारीकरण किया गया। जैसे हम पहले ही बता चुके है कि अन्तर्राष्ट्रीय ऐजेंसियों का दबाव कम करना तथा निर्यात को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रतियोगी बनाना था। इसी के तहत सरकार ने 1 जनवरी 1995 को WTO का सदस्य बन गया। इसके अन्तर्गत वस्तुओं के आय पर प्रतिबंध खत्म तथा आयात कर भी कम किए जाए तथा देश को विदेशी व्यापार के लिए खोल दिया जिसे हम ग्लोबलाइजेसन का नाम देते है।

1. **आयात तथा निर्यात स्वतंत्र (Import and Exports Free)** - आर्थिक सुधार से पहले व्यापार नीति पर विभिन्न तरह के प्रतिबंध जैसे लाइसेंस आयात प्रणाली आदि। जैसा हम पहले ही बता चुके है 1991 के बाद काफी मात्रा मे आयातित व निर्यातित वस्तुएँ को प्रतिबंध से मुक्त किया गया। मार्च 2000 तक 1905 वस्तुओं को आयात कर से मुक्त किया गया जिसकी संख्या अब कुल 8066 थी। वार्षिक एक्जिम नीति (2000-01) मार्च 31, 2000 तक घोषणा की गई तथा इसमें 714 वस्तुएँ भी कर मुक्त की गई।

2. **आयात ड्यूटी में कमी (Reduction in Import Duty)** - जनवरी 1993 में चलैया कमेटी ने आयात ड्यूटी कम करने की वकालत की। रुपए का अवमूल्यन किया गया। 1985-86 से 1992-93 के रुपए की वास्तविक विनिमय दर 57.45 प्रतिशत कम की गई। 1993-94 में कस्टम ड्यूटी 110 प्रतिशत से 85 प्रतिशत तथा 1994-95 में यह 85 से 65 प्रतिशत व 2000-01 के बीच में 35 प्रतिशत रखी गई। अब केवल चार प्रकार की कस्टम ड्यूटी है, 35, 35, 15 व 5 प्रतिशत। यद्यपि इन पर 10 प्रतिशत का सरचार्ज लगाया जाता है।

3. **विनिमय दर नीति का उदारीकरण (Liberalisation of Exchange Rate Policy)** - इसका मुख्य उद्देश्य सट्टा आदि स्थिति का नियंत्रित करना होता है। 1966 के अवमूल्यन से पहले रुपए की कीमत 4.76 रुपए एक यू०एस० डॉलर ($) के बराबर थी लेकिन इसके बाद बार-बार रुपए का अवमूल्यन किया गया अब डालर की कीमत लगभग 48 रुपए है। इसके अन्तर्गत निम्न उपाय किए गए-

   A. **रुपए का आंशिक परिवर्तन (Partial Convertibility of Rupees)** - 1992-93 के बजट में वित्त मंत्री ने आंशिक तौर पर रुपए को परिवर्तित किया। इस दोहरे विनिमय दर के अन्तर्गत 40 प्रतिशत विदेशी विनिमय सरकारी विनिमय के लिए तथा 60 प्रतिशत मात्रा के निर्धारण पर परिवर्तित किए

जाएँगे। यद्यपि सरकारी विनिमय दर बाजार विनिमय दर से कम है। इसका अभिप्राय सरकार के आयात को सब्सिडी प्राप्त करने के लिए निर्यातकों पर कर लगाना। निर्यात कर 8-12 प्रतिशत था जिसका निर्यातकों ने विरोध किया।

B. **व्यापार लेखा पर पूर्ण परिवर्तन (Full Convertibility on Trade Account)** - 1993-94 में व्यापार लेखा पर रुपए को पूर्ण परिवर्तित किया गया। इसके अन्तर्गत दोहरी विनिमय प्रणाली 60:40 खत्म कर 100 प्रतिशत परिवर्तन किया गया। यह पूर्ण परिवर्तन अधिकार सभी वस्तुओं (आयात तथा निर्यात), सभी प्राप्तियाँ (भुगतान संतुलन के चालू या पूँजी खाता पर) न की भुगतान। इसके साथ RBI के विभिन्न विनिमय नियंत्रण तरीके भी लागू रहे जिन्होंने सभी वस्तुओं के लिए एक ही दर से परिवर्तन पर आज्ञा नहीं दी।

C. **चालू खाता पर पूर्ण परिवर्तन (Full Convertibility on Current Account)** - चालू खाता परिवर्तनशील का अभिप्राय है विदेशी विनिमय के खरीद तथा बेचने पर स्वतन्त्रता। इसके अन्तर्गत RBI ने फरवरी 1994 में इस परिवर्तन को रोकने के लिए कदम उठाए। यह भुगतान का कोटा केवल कुछ ही पहलुओं पर लागू होगा - एक्सचेंज अर्न्स फॉरेन करेंसी एकाउंट, आधारभूत निर्यात कोटा, विदेशों में अध्ययन, उपहार छूट, दान, विदेशी लोगों द्वारा दी गई सेवाओं के लिए भुगतान।

भारत ने चालू खाता पूर्ण परिवर्तन 1994 में किया जब RBI ने IMF के आर्टिकल VIII के अन्तर्गत भारत भुगतान संतुलन के प्रबंधन के लिए चालू खाता पर विनिमय प्रतिबंध का प्रयोग कर सकता है। 1994-95, 1996-97 और 1998-99 में भी कुछ प्रतिबंधों में ठील दी गई।

4. **व्यापार घर (Trading House)** - 1991 की नीति के तहत व्यापार कर तथा निर्यात घरों को काफी मात्रा में आयात करने की अनुमति दी। 1992-97 के अन्तर्गत निर्यात बढ़ाने के लिए ड्यूटी मुक्त आयात किए गए। 1994-95 में नीति में सुपर स्टेट्स प्राप्त करने के लिए एक निर्यातक को गत वर्ष में 925 करोड़ रुपए निर्यात किया होना चाहिए। इन घरों को आयात के लिए स्पेशल लाइसेंस दिए गए थे।

**एक्जिम पॉलिसी (1997-2000) (Exim Policy (1997-2000))** - यह पॉलिसी नवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत चलाई गई। इस नीति के तहत कृषि निर्यात के लिए निर्यात घरों को दोगुनी छूट दी। नई नीति ने सॉफ्टवेयर को भी नए आयाम दिए। सॉफ्टवेयर निर्यातक को कोरियर सेवाओं के अन्तर्गत आँकड़ों की सूचना लेने की अनुमति प्रदान की। बिजली हार्डवेयर की वस्तुओं को 50 प्रतिशत बेचने की अनुमति दी। बिजली की वस्तुओं के लिए तीन सालों के लिए 70 प्रतिशत की छूट थी।

इस नीति के अन्तर्गत आयात पर से भी प्रतिबंध हटा लिया गया तथा काफी मात्रा में वस्तुओं को कर मुक्त कर दिया गया जिसका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं। आयात प्रतिबंध हटाने के अन्तर्गत। इसके साथ-साथ निर्यात को बढ़ाने की स्कीम भी चलाई गई और निर्यातकों को कर छूट (प्रत्यक्ष कर) आदि प्रदान की गई। इस प्रकार इस नीति के शुरू होने पर व्यापार जगत में नए आयाम शुरू हुए।

इस नीति के उदारीकरण का मुख्य कारण WTO के अन्तर्गत किए गए वायदे भी पूरा करना था। अब वर्तमान में केवल 715 वस्तुओं पर प्रतिबंध है। इस नीति के अन्तर्गत स्पेशल जोन बनाए गए जो कि अब चीन में है। इसके पीछे केवल यही विचार था कि आयात व निर्यात से संबंधित कानून इनके बीच में रुकावट न बन पाएँ। यह पूँजीगत वस्तुएँ व कच्चा माल बगैर ड्यूटी के आयात कर सकते हैं और ट्रमिनल एक्साइज ड्यूटी दिए बगैर घरेलू क्षेत्र में आने की अनुमति है।

इस नीति के तहत राज्यों को भी निर्यात प्रोत्साहन करने की भूमिका पर जोर दिया। इसके लिए केन्द्र सरकार ने इनका निर्यात संबंधी सुविधाओं के लिए 250 करोड़ की सहायता दी। सरकार ने डायमंड डॉलर स्कीम भी शुरू की ताकि अधिक मात्रा में डायमंड का निर्यात किया जा सके क्योंकि भारत डायमंड का एक बहुत बड़ा क्षेत्र है।

लेकिन इन सबके बावजूद इस नीति के बुरे परिणाम भी देखने को मिले हैं। आयात पर से प्रतिबंध हटाने पर घरेलू उद्योग को नुकसान उठाना पड़ा। इस प्रकार जिन वस्तुओं पर पहले प्रतिबंध था वे भी प्रतिबंध से बाहर कर दी गई। यदि आँकड़े देखें तो नारियल तेल की कीमतें प्रतिबंध हटने के बाद इतनी गिर गई कि उत्पादक अपनी लागत भी नहीं निकाल पाया। इसलिए सरकार को घरेलू उद्योग को ध्यान में रखते हुए प्रतिबंध हटाने चाहिए।

## विदेशी विनिमय प्रबंधन एक्ट (फेमा)
## (Foreign Exchange Management Act (FEMA))

विदेशी विनिमय प्रबंधन एक्ट (फेमा) अगस्त 4, 1998 को विधानसभा में भारत सरकार द्वारा प्रस्तावित किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य भारत मे विदेशी विनिमय बाजार का प्रबंधन तथा विकास के लिए कानून बनाना जो विदेशी विनिमय को बाहरी व्यापार तथा भुगतान की सुविधा प्रदान कर सके। 1999 में यह विधानसभा द्वारा स्वीकृत किया गया जिसे विदेशी विनिमय प्रबंध एक्ट, 1999 के नाम से जानते हैं। फेमा विदेशी विनिमय के कानून तथा प्रबंध से सम्बन्धित है इसके अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को विदेशी विनिमय हस्तांतरित नहीं कर सकता तथा कोई व्यक्ति जो भारत में रहता है किसी भी हस्तांतरित विनिमय को न रख सकता है न ही हस्तांतरित कर सकता है।

1. **चालू खाता तथा पूँजी खाता लेखा-जोखा (Current Account and Capital Account Transactions)** - कोई भी व्यक्ति विदेशी विनिमय किसी प्रमाणित व्यक्ति से ले सकता है यदि वह बिक्री चालू खाता में दर्ज है। यद्यपि केन्द्रीय बैंक सार्वजनिक हित को देखते हुए रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया से मिलकर इस पर प्रतिबंध लगा सकती है। सैक्शन 6 के सब सैक्सन 1 के अन्तर्गत कोई व्यक्ति प्रमाणित व्यक्ति को पूँजी खाता लेखा के लिए विदेशी विनिमय बेच सकता है। यहाँ पर भी RBI प्रतिबंध लगा सकता है। यद्यपि RBI साधारण तौर पर भी प्रतिबंध लगा सकता है।

   सैक्सन 6 के सब-सैक्सन चार के तहत कोई भी व्यक्ति भारत में रहनेवाला विदेशी विनिमय निवेश, रखना या हस्तांतरित कर सकता है बशर्ते कि यह सब कमाते समय व भारत से बाहर रहा हो। इसी प्रकार कोई भी व्यक्ति भारत में निवेश, संपत्ति आदि खरीद सकता है बेशर्त की यह कमाते समय वह भारत में रहा हो।

2. **जुर्माना (Penalities)** - यदि कोई व्यक्ति इन सब बातों का उल्लंघन करता है तो जितनी संपत्ति उसने विदेशी विनिमय के तहत अर्जित की है उस पर तीन गुणा जुर्माना लगाया जा सकता है तथा जहाँ पैसा नहीं दर्शाया गया है वहाँ दो लाख जुर्माना तथा यह आगे उल्लंघन करता है तो उस पर 5000 रुपए प्रतिदिन के हिसाब से जुर्माना लगाया जाता है जब तक यह खत्म न हो। यह कोई व्यक्ति जुर्माना देने के लिए असफल रहता है तो उस को नौ महीने की सजा काटनी पड़ती है।

3. **प्रार्थना (Appeal)** - केन्द्रीय सरकार सैक्सन 16 के तहत इसके अन्तर्गत पता लगाने के लिए किसी व्यक्ति को नियुक्त कर सकती है ताकि दोषी को अपनी बात कहने का पूरा समय मिले। इस प्रकार ट्रिबुनल आदि की भी स्थापना की जाती है ताकि वह (दोषी) अपनी बात को समुचितरूप से पेश कर सके।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विदेशी विनिमय में FEMA सुधरा हुआ रूप है। इसमें विदेशी विनिमय में लेनदेन करने के लिए RBI की आज्ञा की आवश्यकता नहीं है। FEMA का उद्देश्य बाहरी लेखों में सुधार के साथ विदेशी विनिमय नियंत्रण में ढील तथा तबदीली की तरफ बढ़ना हैं। कुछ समय के दौरान भारत के चालू खातों पर दबाव बढ़ा है। अर्थव्यवस्था में खुलापन रखने के कारण चालू खाता घाटा बढ़ने से विदेशी विनिमय की कठिनाई उत्पन्न होती है। जिन देशों ने विदेशी विनिमय में खुलापन रखा है वह परिणामों को देखकर विदेशी विनिमय पर दोबारा प्रतिबंध लगाना चाहती हैं।

# अध्याय-16
# एक्जिट पॉलिसी - श्रम बाजार सुधार में मुद्दे
# (Exit Policy – Issues in Labour Market Reforms)

सितम्बर 1991 में सबसे पहले एक्जिट पॉलिसी को शुरू करने का कार्यक्रम शुरू किया गया क्योंकि बिना श्रम बाजार की लोच के दुरुस्त औद्योगिकीकरण प्राप्त करना मुश्किल था। वर्ल्ड बैंक और IMF शुरू से दबाव डाल रहे थे कि श्रमिकों को एक इकाई से दूसरी इकाई में हस्तांतरित किया जाए तथा अधिक (फालतू) कर्मचारियों की छँटनी की जाए। लेकिन छँटनी खतरनाक है तथा यह श्रमिक वर्ग में चिन्ता का विषय है। आँकलन के अनुसार बीमार औद्योगिक सार्वजनिक इकाइयों में लगभग 4.5 लाख काम करते हैं जबकि सार्वजनिक क्षेत्र में इस तरह की समस्या नहीं है। यदि बीमार इकाइयाँ बन्द की जाती है तो अधिक संख्या में श्रमिक बेरोजगार हो जाएँगें।

निर्यात की प्रतियोगी ताकत सुधारने के लिए भारतीय घरेलू बाजार में नई आर्थिक नीति ने MNCs के लिए दरवाजे खोल दिए। पिछले पाँच वर्षों से विदेशी कंपनियों के साथ सहमति जताई गई है। अब काफी भारतीय कम्पनियों पर MNCs का नियंत्रण है। लेकिन इस तरह की सोच श्रमिकों के लिए घातक है क्योंकि MNCs पूँजी प्रधान तकनीक का प्रयोग करती है। स्वचालित मशीनों द्वारा उत्पादन इकाईयों को कुछ ही मजदूरों की सहायता से पूरा किया जा सकता है। और इससे काफी संख्या में मजूदरों के बेरोजगार होने का खतरा है। यदि MNCs इस तरह का कार्य करती है तो भारतीय कम्पनी भी अधिक-से-अधिक पूँजी प्रधान तकनीकों का प्रयोग करेंगी। इस तरह से न कि बीमार इकाइयाँ बल्कि स्वस्थ इकाइयाँ सार्वजनिक व निजी क्षेत्र में भी MNCs के साथ प्रतियोगिता बढ़ाने के लिए इस तरह का काम करेंगी। इसलिए इस तरह हर जगह खतरे की घँटी दिखाई देती है। सर्वेक्षण दिखाता है कि 100 से अधिक कम्पनियों ने वोलेन्टरी रिटायरमेंट स्कीम (VRS) शुरू की है। कुछ कम्पनियों ने भी VRS शुरू की है ताकि वे अपने नुकसान कम कर सकें तथा कुछ ने इसलिए ताकि अपने लाभ की दर बढ़ा सकें। क्योंकि विदेशी कंपनियों के डर से घरेलू कंपनी प्रतियोगिता पर ध्यान देती है न कि विस्तार पर। ऐसी अवस्था में गरीब मजदूर इस तरह की चालाकी का शिकार बने हुए हैं। कुछ कम्पनियों ने पुराने व्यवसाय बंद कर दिए है ताकि वे श्रमिकों को बाहर निकाल नया व्यवसाय शुरू कर लाभ अर्जित कर सकें।

ऊपर कथित बहस दिखाती है कि ढाँचा एडजस्टमेंट व औद्योगिक नवनिर्मित कार्यक्रम से श्रमिक वर्ग पर बुरे प्रभाव पड़ते है और इसका परिणाम है अधिक संख्या में श्रमिकों की छुट्टी। भारत सरकार के औद्योगिक मंत्रालय के अनुसार 1993-94 से 152 सार्वजनिक क्षेत्र इकाई बंद की जा चुकी है जिसमें 1,20,000 श्रमिक थे। NTC मिल में 2300 कर्मचारी बाहर किए जा चुके हैं। भारत कोकिंग कोल, HMT आदि कई सार्वजनिक क्षेत्र इकाई बंद की जा चुकी है।

इस समस्या के निदान के लिए सरकार भारत सरकार ने कर्मचारियों की छँटनी रोकने के लिए 1992 में नेशनल रेनिवेल फंड (NRF) लागू किया। इसके उद्देश्य निम्नलिखित थे-

1. उद्योगों के ढाँचे में परिवर्तन से आधुनिकीकरण तथा तकनीकी क्षमता बढ़ाने से कर्मचारियों की प्रशिक्षण के लिए लगने वाली लागत के लिए खर्च प्रदान करना।
2. सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में औद्योगिक इकाइयाँ बंद होने से कर्मचारियों को मुआवजा देना।
3. श्रम को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए संगठित तथा असंगठित क्षेत्र में रोजगार बढ़ानेवाली स्कीम लागू करना।

NRF के अन्तर्गत तीन तरह का कार्य किया जाता है एक है (1) रोजगार बढ़ाने के लिए फंड, (ii) नेशनल रेनिवेल ग्राट फंड (NRGF) और (iii) श्रमिकों तथा कर्मचारियों के लिए बीमा फंड। पहले के अन्तर्गत संगठित तथा असंगठित क्षेत्र में रोजगार बढ़ाने संबंधी स्कीम लागू करना है। NRGF का संबंध VRS से जो इकाई बंद होने पर कर्मचारियों को मुआवजा दिया जाता है। और तीसरा कर्मचारियों की भविष्य की जरूरतों को ध्यान में रखकर बनाया गया है।

लेकिन ये सभी नीतियाँ जो Exit नीति के अन्तर्गत लागू की गई थी कर्मचारियों को ज्यादा लाभ प्रदान नहीं कर पाई। इसलिए सरकार ने जून 1, 1998 को सार्वजनिक क्षेत्रों के बंद होने पर मुआवजा तथा सहायता आदि में उदारीकरण करने का फैसला किया। लेकिन यह फैसला अभी पूर्ण रूप से लागू नहीं हो पाया। इकाई बंद होने पर कर्मचारी को औद्योगिक एक्ट के अन्तर्गत मुआवजा दिया जाता है। यह केवल नौकरी के प्रत्येक वर्ष के ऊपर 15 दिन की मजदूरी का प्रावधान है। VRS के अन्तर्गत नौकरी के प्रत्येक वर्ष पूरा होने पर 45 दिन की मजदूरी दी जाती है। लेकिन 1999-2000 के बजट के अन्तर्गत महसूस किया गया कि VRS की वजह से सरकार के ऊपर पड़नेवाले भार को कम करने की सलाह दी।

यदि देखा जाए तो NRF केवल VRS को पूरा करने से ही संबंधित नहीं था बल्कि इसने बाकी उद्देश्यों को छोड़ दिया गया कर्मचारी को प्रशिक्षित देने का उद्देश्य जो कि अहम था उसकी तरफ भी कोई ध्यान नहीं दिया गया। सरकार अब इस बात को महसूस करती है। इसलिए अब सरकार ने एम्पलायमैंट रिसोर्स सैंटर, एम्पलाई एसीसटैंस सैंटर (EAS) स्थापित किए है। लगभग 65,000 श्रमिक EAS के तहत लिए गए है।

लेकिन सरकार के लिए सबसे बड़ी चुनौती औद्योगिक इकाइयों को बदलने के बाद रोजगार खो देनेवाले कर्मचारियों को रोजगार प्रदान करने की है। देश में पहले ही बेरोजगारी की समस्या है ऐसी अवस्था में छँटनी किए गए कर्मचारियों को रोजगार देना बहुत मुश्किल है। अधिक संख्या में कुशल, अकुशल कर्मचारी पहले ही रोजगार के लिए घूम रहे हैं ऐसी अवस्था में औद्योगिक इकाइयों से बाहर निकाले गए कर्मचारियों को रोजगार देना सरकार के लिए चुनौती पूर्ण है। ढाँचात्मक परिवर्तन से लगता नहीं कि नए रोजगार के साधन उत्पन्न होंगे बल्कि बेरोजगार सेना की भीड़ अवश्य तैयार हो जाएगी क्योंकि औद्योगिक परिवर्तन से बेरोजगारी की समस्या लगातार बढ़ती जा रही है।

## श्रम पर राष्ट्रीय कमीशन
## (National Commission Labour)

श्रम पर पहला राष्ट्रीय श्रम कमीशन दिसम्बर 24, 1966 को बनाया तथा इसने अपनी रिपोर्ट

1969 को प्रस्तुत की। लेकिन 1991 के उदारीकरण के बाद वर्तमान श्रम कानूनों को परिवर्तित करने की जरूरत महसूस हुई और इसमें परिवर्तन किए गए। दूसरा श्रम कानून 1998 में बना जो श्रम कानून/नीति में परिवर्तन की सलाह दे सके। 1999 नए श्रम कमीशन की स्थापना कर दी गई जिसमें महिलाएँ, व्यापार यूनियन, उद्योग और महिला विशेषज्ञ सदस्य थी, इस कमीशन को अपनी रिपोर्ट 24 महीने में देनी थी। इसमें निम्न बातें थी-

1. असंगठित क्षेत्र में श्रमिकों के बचाव के लिए कानून।
2. संगठित क्षेत्र में वर्तमान कानूनों में फेरबदल।

इसलिए इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए इस कमीशन के अन्तर्गत श्रमिकों के लिए आर्थिक माहौल पैदा करने पर जोर दिया गया ताकि नए उत्पाद के तरीकों तथा तकनीकी विकास (परिवर्तन) तथा फैक्ट्री में काम के समय तथा प्रकृति पर भी ध्यान दिया गया। ये कानून श्रमिकों की प्राथमिकता के साथ-साथ श्रम बाजार की आवश्यकताओं तथा जरूरतों के आधार पर बनाए गए।

# अध्याय-17
# भुगतान संतुलन व विदेशी पूँजी
# (Balance of Payments and Foreign Capital)

## भुगतान संतुलन
## (Balance of Payments)

भुगतान संतुलन का अभिप्राय एक निश्चित समय में भारत तथा दूसरे देशों के बीच सभी आर्थिक लेन-देन का रिकॉर्ड है। यह निर्यात से होनेवाली आय तथा आयात की गई वस्तुओं के बदले किए गए भुगतान से है - चालू खाता तथा पूँजी खाता। चालू खाता में वस्तु, सेवा तथा आय से संबंधित लेखा तथा चालू खाता पर होनेवाले घाटे तथा आधिक्य इस पूँजी खाते से लिए जाते हैं। इन चालू व पूँजी खाता का लेखा-जोखा से संबंधित रखनेवाली जानकारी अथवा संतुलन का ही भुगतान संतुलन का नाम देते हैं। भुगतान असंतुलन को संतुलित बनाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा फंड (IMF) एक महत्त्वपूर्ण एजेंसी है इससे धन संबंधी सहायता ली जाती हैं। इसके साथ अपने अन्तर्राष्ट्रीय रिजर्व भी बनाकर रखती है। भुगतान संतुलन दो लेखा प्रणाली चालू खाता तथा पूँजी खाता को लिया जाता है।

जब भारत स्वतन्त्र हुआ भारत में 1733 करोड़ रुपए का बैलेंस था इसके कारण दूसरे विश्व युद्ध के दौरान यू०के० के साथ किए गए व्यापार से होनेवाला आधिक्य है। पहली पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत व्यापार संतुलन में घाटा 541.9 करोड़ रुपए था। वास्तव में चालू खाता पर घाटा 4.23 करोड़ रुपए थे। चालू खाता में निजी पूँजी, बैकिंग पूँजी तथा ऑफिसल पूँजी ली जाती है। यदि भुगतान संतुलन स्थिति का आँकलन किया जाए तो इसकी स्थिति उभर कर सामने आएगी। जिसको हमनें विभिन्न भागों में बाँटा है-

1. **1956-57 से 1975-76 (1956-57 to 1975-76)** - इस समय के दौरान भुगतान संतुलन में भारी घाटा था। इस दौरान भारत को तीन युद्धों का सामना करना पड़ा (1962 में चीन, 1965 और 1971 में पाकिस्तान के साथ) तथा में देश में सूखा भी पड़ा (1965-66, 1966-67)। यद्यपि सरकार ने आयात नियंत्रण के लिए काफी उपाय किए फिर भी इसको नहीं कर पाई। इस घाटा की पूर्ति के लिए सरकार ने कम दर पर आयात भुगतान के विदेशी सहायता भी ली क्योंकि विदेशी विनिमय रिजर्व कम थे। इसके लिए सरकार ने पहला कदम आधारभूत तथा पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों को स्थापित करने पर महत्त्व दिया। इसके लिए मशीनरी तथा तकनीकी वस्तुओं की आवश्यकता हुई इसलिए निर्यात न के बराबर तथा आयात काफी अधिक मात्रा में थे। इसका परिणाम 2,261.3 करोड़ रुपए का व्यापार संतुलन घाटा हुआ। भारत के निर्यात अधिकतर परम्परागत थे जिनसे आय बढ़ाना काफी मुश्किल था। सूखा के कारण खाद्यान्न वस्तुओं का आयात भी अधिक मात्रा में करना पड़ा। इसलिए त तीय पंचवर्षीय योजना का भुगतान संतुलन में घाटा 2000 करोड़ से भी ज्यादा था।

इसी प्रकार यह सिलसिला लगातार चलता रहा तथा चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भी आयात में व द्धि हुई। अन्तर्राष्ट्रीय कीमतें बढ़ने से आयात के मूल्य में भी व द्धि हुई। जैसे पेट्रोलियम पदार्थ, खाद, लोहा व इस्पात, पूँजीगत वस्तुओं की कीमतों में व द्धि जो 1972 से 1974 तक बढ़ी। इसके परिणामस्वरूप आयात मूल्य 1969-70 में 1,582.3 करोड़ रुपए से बढ़कर 1973-74 में 2,729.3 करोड़ रुपए हो गया। अन्तर्राष्ट्रीय कीमतें बढ़ने से निर्यात का स्तर भी बढ़ा। जो निर्यात 1969-70 में 1,403.9 रुपए थे वे 1973-74 में बढ़कर 2,3507.7 करोड़ रुपए हो गए। इससे कुछ घाटा में कमी आई लेकिन फिर भी यह घाटा 670.2 करोड़ रुपए था।

इसके बावजूद ऑरगेनाइजेशन पेट्रोलियम एक्सपोरटिंग कन्ट्रीज (OPEC) ने कच्चे तेल की कीमतों में कुछ व द्धि की जिससे आयात करने से अल्पविकसित देशों पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार भारत का आयात बिल 1973 में 2,729.3 करोड़ से बढ़कर 1974-75 में 4,156.9 करोड़ रुपए हो गया इसलिए 1974-75 में व्यापार का संतुलन घाटा 977.2 करोड़ था।

2. **1976-77 से 1979-80 (1976-77 to 1979-80)** - यह समय भुगतान संतुलन घाटा आँकड़े का काफी थोड़ा समय है। इस दौरान भारत में चालू खाता आधिक्य सिर्फ GDP का 0.6 प्रतिशत थे और केवल 7 महीने के आयात के लिए ही विदेशी रिजर्व थे। इस दौरान भारत के अधिकतर श्रमिक, कुशल श्रमिक, अकुशल श्रमिक, नर्स आदि तेल निर्यात करनेवाले देशों में कुछ समय के लिए (अस्थाई काम करने के लिए स्थानांतरित हो गए। वे अपनी आय को अपने परिवारों को भेजते थे इसलिए इससे होनेवाली आय (निजी) 3,128.7 करोड़ रुपए थी। इस प्रकार प्राप्तियों में कुछ व द्धि हुई। यद्यपि आयात प्रतिस्थापन के लिए घेरलू उत्पाद में 13.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से 1969-79 में व द्धि हुई। इसी प्रकार आयात प्रतिस्थापन के कार्यक्रम चलाए गए ताकि आयात को कम किया जा सके। अन्तर्राष्ट्रीय तथा घरेलू बाजार में सोने की कीमतों में अंतर को खत्म किया इस कारण सोने का समगल ट्रेड में कमी होने से RBI के भुगतान तथा प्राप्ति में अच्छे परिणाम देखने को मिले।

भारत ने पहला तेल झटका को भी तेजी से एडजस्ट किया। इन सबके बावजूद 1976-77 और 1977-78 में चालू खाता पर आधिक्य था क्योंकि भारत पहले ही अन्तर्राष्ट्रीय ऐजेंसी IMF आदि से फंड ले चुका था। लेकिन चालू खाता पर व्यापार घाटा 1,146 करोड़ रुपए था। भारत को दूसरा तेल झटका 1979-80 में OPEC द्वारा तेल की कीमतें बढ़ाने पर लगा। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक परिणाम थे। व्यापार घाटा जो 1978-79 में 1,843 करोड़ रुपए था बढ़कर 1980-81 में 5,967 करोड़ रुपए हो गया। यद्यपि साथ-साथ प्राप्तियों से 1979-80 में चालू खाता पर घाटा 2345 करोड़ रुपए था जो 1980-81 में बढ़कर 1,657 करोड़ रुपए हो गया।

3. **1980-81 से 1992-93 (1980-81 to 1992-93)** - यह समय भारत के लिए अर्थव्यवस्था के लिए काफी मुश्किल भरा था। छठीं पंचवर्षीय योजना में व्यापार में संतुलन घाटा 6,000 करोड़ रुपए प्रतिवर्ष हो गया। 1990-91 में इस संतुलन घाटे ने आसमान छूना आरम्भ कर दिया तथा बढ़कर 12,000 करोड़ रुपए प्रतिवर्ष हो गया। यद्यपि यह 1991-92 में कुछ कम हुआ लेकिन 1992-93 में इसमें दोबारा बढ़ोत्तरी होकर 14,101 करोड़ रुपए हो गया। भुगतान संतुलन के स्तर पर भारत के लिए यह बहुत बड़ी समस्या थी।

इस मुख्य कारण 1990-91 का गल्फ संकट था। यदि आँकड़ों का आँकलन किया जाए तो इस भारत को आय की प्राप्ति भी हुई है जो 4,311 करोड़ रुपए थी लेकिन यह लगातार कम होती गई क्योंकि गल्फ देशों में जो लोग काम करने गए थे उन्हें इस संकट से घर वापिस लौटना पड़ा। यद्यपि भारत ने IMF तथा वर्ल्ड बैंक से सहायता लेने के लिए कई ढाँचात्मक कार्यों का गठन किया।

4. **1992-93 के बाद (1992-93 After)** - यद्यपि आर्थिक सुधार के बाद भारतीय व्यापार संतुलन में सुधार हुआ है। इस समय चालू खाता घाटा GDP का केवल 0.4 प्रतिशत था। विदेशी विनियम भँडारों में भी बढ़ोत्तरी हुई। बाहरी सहायता भी इस वर्ष $ 19,01 मिलियन की यद्यपि चालू खाता घाटा $ 1,158 मिलियन थे। आयात की अपेक्षा (6.5%) की अपेक्षा निर्यात (20.2%) में भी रिकार्डतोड़ व द्धि हुई। इस प्रकार चालू खाता घाटा 1992-93 ($ 3.5 बिलियन) से घटकर 1993-94 में $ 1.2 बिलियन रह गए। यह भुगतान संतुलन में सुधार का चिह्न है। 1994-95 की स्थिति भी संतोषजनक थी क्योंकि घाटा केवल GDP का 1.0 प्रतिशत था।

यद्यपि औद्योगिकीकरण में व द्धि से लगातार आयात में व द्धि हुई है लेकिन फिर भी भुगतान संतुलन घाटा की स्थिति उतनी खराब नहीं थी जितनी सुधार से पहले थी। अब भारत का भुगतान संतुलन में लगातार सुधार हो रहा है। इसका एक मुख्य कारण अद श्य वित्त (आय) का भी बढ़ना है जो 1998-99 में व्यापार घाटा का 65 प्रतिशत थी।

## भुगतान संतुलन की समस्या का निवारण
## (Solution to the Problem of Balance of Payment)

इस समस्या का समाधान निम्न तरीकों से किया गया (i) विदेशी सहायता, (ii) विदेशी से निजी छूट, (iii) बाहरी वाणिज्य उधार और NRI की जमा, (iv) व्यापार नीति-आयात तथा निर्यात नीति, (v) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश।

भारत ने विभिन्न देशों से जैसे अमेरिका तथा यू०के०, फ्राँस, जर्मनी तथा रूस से योजना के अन्तर्गत काफी विदेशी सहायता ली जिसको हम विदेशी पूँजी तथा सहायता वाले अध्याय में वर्णित करेंगे। इसी प्रकार दूसरे तरीकों से भी भारत ने काफी मदद ली। लेकिन बाहरी उधार तथा निजी छूट से भुगतान संतुलन की समस्या का निवारण नहीं किया जा सकता। इसलिए एक ही भरोसेमंद तरीका है आयात तथा निर्यात नीति। इस नीति के तहत आयात प्रतिस्थापन तथा निर्यात प्रोत्साहन करके इस भुगतान संतुलन के घाटे को कम किया जा सकता है।

इसके लिए सरकार ने काफी कदम उठाए है जैसे घरेलू तथा औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देकर आयात की मात्रा में काफी कमी हुई है। लेकिन भारत में ये भी सबसे बड़ी मुश्किल है क्योंकि औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देने के लिए पूँजीगत वस्तुओं का आयात करना भारत की मजबूरी रही है। लेकिन उदारीकरण के बाद भारत के भुगतान संतुलन में काफी परिवर्तन हुआ है। नवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत यह महसूस किया गया कि खुली अर्थव्यवस्था के लिए जरूरी है व्यापार करनेवाले उत्पाद तथा सेवाओं में व द्धि की जाए ताकि इससे बाहरी प्रतियोगिता में व द्धि हो। यह तभी संभव है जब हमारे पास निर्यात करने के लिए आधिक्य हो जिससे आयात जरूरतें पूरी हो सकें। दूसरा यह है कि निर्यात बाजार आकर्षक होना चाहिए ताकि घरेलू उत्पादक अपने माल को निर्यात करने के लिए तैयार हो तथा उनको निर्यात संबंधी अधिक अवसर प्राप्त हो।

हालाँकि भारत में इसके परिणाम देखने को मिलें जो आयात तथा निर्यात नीति में उल्लेख किए

गए है। इस अध्याय से हम इसके बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। तथा यहाँ पर यह वर्णित कर सकते है कि आयात निर्यात नीति से किस तरह भुगतान संतुलन में सुधार हुआ है।

## भारत में विदेशी पूँजी और बहुराष्ट्रीय संगठन
## (Foreign Capital and Multinational Corporations in India)

अधिकतर अल्प-विकसित देशों में आय का स्तर तथा पूँजी का चक्रीय क्रम रहता है। यद्यपि, पूँजी की कमी के बावजूद इन देशों ने औद्योगिकीकरण व आर्थिक विकास का मजबूत आधार खड़ा किया है। यद्यपि भारत ने औद्योगिकीकरण के लिए कई कार्यक्रम चलाए लेकिन घरेलू क्षेत्र में साधनों की कमी होने पर विदेशी पूँजी पर निर्भर रहना पड़ा था।

विदेशी पूँजी को विदेशी निवेश या ऋण या सहायता के रूप में प्राप्त किया जा सकता है। विदेशी पूँजी भुगतान संतुलन की समस्या का निवारण NRI की जमा प्राप्त करके भी प्राप्त की जा सकती है। लेकिन यदि विदेशी सहायता कुछ समय के लिए किसी खास संकट के लिए प्राप्त होती जिसे वापिस करने का झंझट नहीं। ऋण आदि लेने पर इन्हें वापिस करना भी सरकार की जिम्मेदारी रहती है। अधिकतर देश अपनी मुद्रा के अन्तर्गत ही ऋण वापसी चाहते हैं लेकिन कुछ खास पहलुओं पर जैसे अमेरीका ने PL 480 के तहत भारत को ऋण अदायगी रुपए में करने की अनुमति प्रदान की। अंत में विदेशी निवेश भी विदेशी पूँजी प्राप्ति का कारण है। आमतौर पर विदेशी निवेश घरेलू क्षेत्र के कुछ क्षेत्रों में निजी निवेश करने की शक्ल में है। लेकिन यदि अल्प-विकसित देश यदि अधिक मात्रा में विदेशी निवेश पर निर्भर करेंगे तो यह अर्थव्यवस्था के लिए घातक होगा क्योंकि इससे देश में हस्तक्षेप अधिक बढ़ेगा तथा यह दीर्घकाल में अर्थव्यवस्था के लिए घातक सिद्ध होगा। भारत में विदेशी पूँजी की आवश्यकता विभिन्न कारणों से है-

1. अल्पविकसित देश कम समय में अपने आपको औद्योगिकीकरण में लाना चाहते है इसके लिए धन (पूँजी की आवश्यकता महसूस होती। अर्थात् निवेश बढ़ाने की जरूरत है। निवेश के लिए उच्च मात्रा में बचतों की आवश्यकता है। लेकिन इन देशों में गरीबी व बेरोजगारी से बचत का स्तर कम रहता है। इसलिए निवेश तथा बचत की खाई का पाटने के लिए विदेशी पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।

2. अल्पविकसित देशों में विकसित देशों की अपेक्षा तकनीकी स्तर निम्न है। इसलिए तकनीक आयात की आवश्यकता पड़ती है और यह तकनीकी विदेशी पूँजी के तहत आता है।

3. अल्पविकसित देशों में प्राकृतिक साधनों का प्रयोग करने के लिए तकनीकी कुशलता की कमी है। इसलिए इसका प्रयोग बढ़ाने के लिए ये देश विदेशी पूँजी पर निर्भर रहते हैं।

4. भुगतान संतुलन स्थिति सुधार के लिए जहाँ आयात तथा निर्यात में अधिक अंतर रहता है। क्योंकि अल्प विकसित देशों में आयात की मात्रा लगातार बढ़ती रहती है इसलिए भुगतान संतुलन को संतुलित बनाने के लिए विदेशी पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।

5. अल्पविकसित देशों में आर्थिक ढाँचा कमजोर रहता है। इसलिए भी इन देशों को इस ढाँचे को ताकतवर बनाने के लिए भी विदेशी पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।

निजी विदेशी निवेश से यह भी फायदा है कि ये अपने साथ नई तकनीक, अच्छा प्रबंधन और संगठन, सस्ता वित्त तथा अच्छा बाजारीकरण लाती है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत में विदेशी पूँजी के प्रति सोच सकारात्मक थी। लेकिन स्वतन्त्रता के पश्चात् इसके प्रति रवैया बदला। NRI से निवेश तथा विदेशी पूँजी को आकर्षित करने के लिए कर में छूट आदि का प्रावधान किया। 1991 में सरकार ने विदेशी निवेश से संबंधित अहम कदम 51 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष निवेश की आज्ञा दी। 1996 तक 51 उद्योगों को इसमें शामिल किया गया। जैसे होटल, पर्यटन क्षेत्र आदि। ऊर्जा क्षेत्र में सरकार ने 100 प्रतिशत विदेशी निवेश तक की अनुमति दी। NRI आदि की 100 प्रतिशत तक इक्विटी बढ़ाने की आज्ञा दी लेकिन इन्हें RBI की अनुमति आवश्यक थी। विदेशी कम्पनियों को घरेलू क्षेत्र के व्यापार चिह्न का प्रयोग करने की भी अनुमति दी गई।

इसके साथ-सरकार ने फोरेन इंस्टीट्यूशनल अथॉरिटी (FIT) को सेबी (SEBI) सिक्योरिटी एंड एक्सचेंज बोर्ड ऑफ इंडिया के तहत विदेशी निवेश करने की अनुमति दी। सेबी को सरकार प्रायः निवेश के लिए विदेशी फंड का प्रबंधन करने के लिए घरेलू फंड प्रबंधक के तहत अनुमति दी गई।

इस प्रकार सरकार ने विदेशी पूँजी को आकर्षित करने के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था को ग्लोबल अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ा। इस प्रकार NRI को भारत में बगैर किसी प्रतिबंध के खाता खोलने की इजाजत तथा उनकी जमा पूँजी पर ग्लोबल बाजार की अपेक्षा अधिक ब्याज प्रदान किया गया। विभिन्न योजना के अन्तर्गत NRI की जमा मार्च 1991 में $ 14 बिलियन थी जो 1996 में $ 17.4 बिलियन, तथा मार्च 1999 के अंत तक यह $ 21.3 बिलियन थी।

यद्यपि सरकार ने विदेशी पूँजी बढ़ाने के लिए विभिन्न कदम उठाए लेकिन इस तरह की विदेशी पूँजी के साथ देश में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की मात्रा भी बढ़ती गई। इन बहुराष्ट्रीय संगठनों ने अल्पविकसित देशों में अपने औद्योगिक संगठन बनाने आरम्भ कर दिए। इन मल्टीनेशनल कॉरपोरेशनस (MNCs) को ट्रासनेशनल कॉरपोरेशन (TNCs) भी कहा जाता है। लाभ कमाने साथ-साथ इन MNCs का मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था में अपना आधार बढ़ाना है। 1982 में 200 बड़े कॉरपोरेशन का संसार के GDP का 24.2 प्रतिशत था जो 1998 में बढ़कर GDP का 28.3 प्रतिशत हो गया। MNCs किसी भी उत्पाद का दूसरे देश में आसानी से बेच सकती है क्योंकि लोग इन द्वारा बनाए गए उत्पाद के क्रेजी (पीछे पागल) हैं।

इस प्रकार इनका उद्देश्य देश से बाहर अधिक-से-अधिक मात्रा में बाजार पर कब्जा ये MNCs बाजार, वित्त व्यवस्था तथा तकनीकी व शोध में अल्पविकसित देशों से काफी आगे हैं। इस प्रकार ये आसानी से व्यापार से संबंधित कठिनाइयों को नियंत्रित कर लेती है।

## MNCs का दबाव
## (Domination of MNCs)

भारतीय अर्थव्यवस्था पर MNC की काफी पकड़ है। भारत में दो दशक पहले भी ये संपत्ति का 53.7 प्रतिशत नियंत्रित करती थी। लाइसेंस पॉलिसी कमेटी के अन्तर्गत 1966 में भारत में 112 कंपनी थी। इन सभी पर विदेशी नियंत्रण था क्योंकि भारतीय कंपनियों ने भारी मात्रा में इनसे ऋण तथा इक्विटी पूँजी ली हुई थी। इसलिए पश्चिमी विदेशी पूँजी भारत के औद्योगिक क्षेत्र को पूर्ण रूप से दबाव रखती थी।

इन MNC के बारे में सबसे बड़ी रोचक बात यह है कि इन्होंने अधिक पूँजी का भाग भारतीय

अर्थव्यवस्था में से ही बनाया है। यदि 1956-75 के आँकड़े देखें तो विदेशी साधनों से 5.4 प्रतिशत तथा घरेलू साधनों से 94.6 प्रतिशत इन कंपनियों के लिए जुटाया गया है। इसलिए यह बिल्कुल गलत (झूठ) है कि ये MNCs अपने साथ विदेशी पूँजी लाती हैं। MNCs के लिए वास्तविक स्थिति ये है कि अधिकतर पूँजी ये उसी देश से ही इकट्ठा तथा अपने लाभों का अधिक भाग अपने देश में भेजती हैं।

MNCs के बारे में साधारण सी बात है कि भारतीय उद्योगकर्त्ताओं के साथ मिलकर भारतीय उद्योग में प्रवेश करती हैं। भारतीय कंपनियों तथा विदेशी पार्टियों के बीच विदेशी मेलजोल सहमति बनाई जाती है- तकनीक तथा अन्तिम उत्पाद के लिए विदेशी ब्रॉड का प्रयोग आदि। इन MNCs की स्थापना भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् हुई है। इस उदारीकरण को बढ़ाने के लिए भारतीय सरकार ने 1991 में उदारीकरण विदेशी निवेश नीति की घोषणा की। अगस्त 1991 से अक्टूबर 1999 तक भारत 6381 विदेशी तकनीकी सहयोग, 9686 विदेशी प्रत्यक्ष निवेश प्रस्ताव स्वीकृत किए। इस प्रक्रिया के लिए कुल विदेशी निवेश 2,05,187 करोड़ रुपए मंजूर किया। यद्यपि वास्तविक निवेश जो देश में आया 64,170 करोड़ रुपए था। इस पूँजी का उपयोग वस्तुओं में हिस्सा 12.9 प्रतिशत, पूँजीगत वस्तुओं में 10.8 प्रतिशत तथा सेवा क्षेत्र में 9.8 प्रतिशत था।

लेकिन विदेशी सहयोग के क्षेत्र में सरकार की नीति की आलोचना की गई।

i. अधिकतर सहमति उन उत्पादनो के पैदा करने के लिए हुई जो भारत के लिए गैर-जरूरी थे या जिसे लोकल तकनीक से भी उत्पादित किया जा सकता था।

ii. सरकार ने जिन वस्तुओं का आयात होता था उन्हीं से संबंधित वस्तुओं का विदेशी निवेश सहयोग किया। मतलब एक ही तरह की तकनीक का बार-बार उत्पादन।

iii. अधिकतर समझौते विदेशी सहयोग के पक्ष में तथा भारतीय रुचि के विरुद्ध थे। इससे भारत की तरफ से मोलभाव स्थिति की कमी रही और भारतीय सरकार की भारतीय विनिमय घाटे के सूरत में विदेशी सहयोग की उत्सुकता नहीं रहीं।

iv. विदेशी सहयोग से एकाधिकारी की भावना में व द्धि हुई।

v. विदेशी सहयोग के अन्तर्गत काफी प्रतिबंध लगाए गए जैसे तकनीकी का एक हाथ से दूसरे हाथ में न जाना, जो उत्पादित किया है उसका लोकल उपभोग करना पड़ेगा।

इन दबाव के साथ-साथ भारतीय अर्थव्यवस्था पर MNCs का बुरा प्रभाव पड़ा। जो इस प्रकार है।

1. अधिकतर मात्रा में पैसा भारत से बाहर गया जैसे विदेशी पूँजी पर ब्याज, लाभाँश, लाभ आदि।

2. MNCs से घरेलू उद्योगों पर विपरीत प्रभाव पड़ा। क्योंकि घरेलू क्षेत्रों की अपेक्षा विज्ञापन आदि पर खर्च, अर्थव्यवस्था को गैर-तकनीक भेजना आदि।

3. इन MNCs के पास अधिक वित्तीय ताकत और तकनीकी ताकत अधिक होने पर इन्होंने अल्पविकसित देशों की फैसला करने की प्रक्रिया को प्रभावित (हस्तक्षेप) किया।

4. तकनीकी हस्तांतरण का अभिप्रायः यह नहीं है कि ये विकास को प्रभावित करता है क्योंकि MNCs बताती है कि उन्होंने प्रक्रिया अपने देश में ही रखी तथा शोध व विकास के लिए वे अल्पविकसित देशों की प्रक्रिया में शामिल नहीं हुई। यद्यपि ये MNCs

इस तरह का कार्य अपने देश में ही करती थी लेकिन इनका खर्च आदि भारतीय भुगतान में से ही करता था।

भारतीय सरकार ने महसूस किया कि MNCs का नियंत्रण करना अति आवश्यक है क्योंकि अकेले विदेशी पूँजी निवेश के लालच से हम अपनी अर्थव्यवस्था को तबाही के मंजर में नहीं धकेल सकते है। इस प्रकार इन MNCs को नियंत्रित करने की प्रक्रिया आरम्भ की। इनको विभिन्न सरकारी एजेसियाँ नियंत्रित करती है (i) मिनिस्टिरी ऑफ कंपनी अफेयर्स, (ii) RBI, (iii) दि मिनिस्टरी ऑफ इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट, (iv) मिनिस्टिरी ऑफ फाइनेंस आदि। यद्यपि ये एक दूसरे से मिलकर काम नहीं करती इसलिए इनको कार्यों में कोई सहयोग नहीं है। इस प्रकार इन MNCs को नियंत्रित करने का सबसे प्रभावी एक्ट 1973 में फॉरेन एक्सचेंज रेगुलेशन एक्ट (FERA) शुरू किया तथा 1974 में यह काम करने की स्थिति (लागू) किया गया। इसके साथ 1999 में फॉरेन एक्सचेंज मैनेजमेंट एक्ट (FEMA) का आरम्भ किया। जिसका हम EXIM पॉलिसी के अन्तर्गत वर्णन कर चुके है।

FERA के अन्तर्गत कम्पनी का विदेशी इक्विटी 40 प्रतिशत बढ़ने पर स्वीकृति आवश्यक। इसके अन्तर्गत 60 प्रतिशत लोकल इक्विटी होगी। हर एक विदेशी कंपनी को अपनी इक्विटी 40 प्रतिशत से कम करनी होगी। लेकिन यदि FERA के प्रभावीपन को देखा जाए तो यह ज्यादा प्रभावी नहीं हो सका क्योंकि इसको लागू करने में काफी समय लग गया। इसका मुख्य कारण था बहुत-सी कम्पनियों ने जो दिशा निर्देश दिए गए थे। उनको मानने में आनाकानी की। इसके अन्तर्गत भी कंपनियों का वर्गीकरण किया गया 240 कम्पनियों को 40 प्रतिशत की सीमा से मुक्त किया गया। 116 कंपनियों को 51 से अधिक तथा 74 प्रतिशत तक विदेशी इक्विटी रखते हुए अपना कार्य करने की अनुमति दी गई। 1998 तथा 1999 में सभी को इससे मुक्त कर दिया गया जिन कम्पनी के विदेशी शेयरधारक हैं वे अपनी विदेशी इक्विटी 51 प्रतिशत तक बढ़ा सकती है। सोना तथा चाँदी के आयात व निर्यात को FERA से मुक्त किया गया तथा अब EXIM पॉलिसी इसको नियंत्रित करती है। विदेशियों को भारत में रोजगार प्राप्त करने से पहले FERA की सहमति (अनुमति) की आवश्यकता नहीं। लेकिन यदि हम विदेशी पूँजी के प्रभावों पर गौर करें जिसे हम पहले ही वर्णित कर चुके हैं। पता चलता है कि यह हमारे देश के हित की बजाय अहित में ज्यादा है क्योंकि अल्पविकसित देश समझौते के अन्तर्गत इनके साथ मोल-भाव करने में असमर्थ रहते हैं। हालाँकि तकनीकी हस्तांतरण के नजरिए से देखें तो हमें लाभ दिखाई देता है लेकिन विदेशी सहयोगियों द्वारा तकनीक हस्तांतरण पर प्रतिबंध लगने पर हमें इसका फायदा भारतीय उद्योग के लिए दिखाई नहीं देता।

# अध्याय-18
# भारत का विदेशी व्यापार - ढाँचा व दिशा
# (India's Foreign Trade – Structure and Direction)

अधिकतर अल्पविकसित देशों का इतिहास इनका ब्रिटिश ताकतों द्वारा नियंत्रण रहा है। इस शोषण का महत्त्वपूर्ण पहलू विदेशी व्यापार रहा है। क्योंकि अल्पविकसित देश प्राथमिक वस्तुओं का निर्यात तथा निर्मित वस्तुओं का आयात करते थे जिनकी कीमतों के बीच काफी अंतर है निर्मित वस्तुओं की कीमत प्राथमिक वस्तुओं से ज्यादा है अधिकतर अल्पविकसित देशों ने अपना औद्योगिक आधार बनाना आरम्भ किया जिसे हम आयात प्रतिस्थापन का नाम देते हैं।

यद्यपि अब कुछ परिवर्तन हुआ है अधिकतर अल्पविकसित देशों ने आयात उदारीकरण और निर्यात को बढ़ावा देनेवाले कार्यक्रम अपनाकर काफी सफलता अर्जित की है। भारत सरकार ने भी व्यापार उदारीकरण की नीति लागू की है। भारतीय अर्थव्यवस्था को विदेशी व्यापार के लिए खुला रखने के लिए 1991 में व्यापार नीति सुधार की घोषणा की, इसको अधिक बल देने के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था में नए आयाम के लिए 1995 में WTO (वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गनाइजेशन) की स्थापना की। यदि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देखा जाए तो भारत में आयात तथा निर्यात की मात्रा में व द्धि हुई है। 1950-51 से निर्यात $ 1,269 मिलियन से बढ़कर 1998-99 में $33659 मिलियन हो गया। इसी प्रकार आयात 1950-51 से बढ़कर $ 1273 मिलियन से $ 41,844 मिलियन हो गए। यह भी कह सकते हैं कि इस समय देश में व्यापार घाटा था। 1999-2000 केवल दो सालों में ही व्यापार सन्तुलन धनात्मक था। नहीं तो योजनाओं के अन्तर्गत देश में व्यापार घाटा ही रहा।

## व्यापार का ढाँचा
## (Structure of Trade)

व्यापार ढाँचा के अन्तर्गत देश के आयात तथा निर्यात लिए जाते हैं। यदि किसी देश में कच्चा माल तथा खाद्यान्न का निर्यात तथा निर्मित वस्तुओं, पूँजीगत वस्तुओं का आयात होता है तो हम कह सकते हैं कि वह देश अल्पविकसित है। यदि इस देश में निर्मित वस्तुओं के आयात में कमी आ रही है तो यह देश विकास की तरफ बढ़ रहा है।

भारत में योजना से पहले व्यापार की यही स्थिति थी लेकिन योजना के अन्तर्गत औद्योगिक प्रक्रिया तथा आर्थिक विकास ने विदेशी व्यापार के ढाँचे में काफी परिवर्तन किए हैं जो इस प्रकार हैं-

1. **आयात का ढ़ाँचा** (Structure of Imports) - 1947-48 के दौरान भारत में लगभग

70 प्रतिशत आयात सभी तरह की मशीनरी, खाद्यान्न वस्तुओं, दवाओं, पेपर आदि का होता था। लेकिन 1951-52 में योजना के अन्तर्गत दूसरी पंचवर्षीय योजना में (1956-61) औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया आरंभ की तथा पूँजीगत वस्तुओं तथा आधारभूत उद्योगों को स्थापित किया। इस परिणामस्वरूप काफी पूँजीगत वस्तुओं के आयात करने की आवश्यकता महसूस की। कुछ समय के पश्चात् इन पूँजीगत वस्तुओं के स्पेयर पार्टस की आवश्यकता महसूस होने लगी। इसलिए आयातित वस्तुओं को बनाए रखने के लिए और अधिक आयात करना पड़ा।

भारतीय व्यापार (आयात ढाँचा) को चार भागों में बाँटा है - (i) पूँजीगत वस्तुएँ, (ii) खाद्यान्न वस्तुएँ, (iii) कच्चा माल तथा मध्यस्थ वस्तुएँ, (iv) दूसरी वस्तुएँ। भारत में कुल आयात इन सभी चारों को मिलाकर 1960-61 में $ 2,353 मिलियन था इसमें एक ही महत्त्वपूर्ण अंतर आया खाद्यान्न वस्तुओं के आयात में कमी हुई। यह 1960-61 में 16.1 प्रतिशत था घटकर 1998-99 में 0.6 प्रतिशत हो गया दूसरे कच्चा माल आदि में पेट्रोल, खाद आदि की खपत बढ़ने से इसके आयात में व द्धि हुई। पूँजीगत वस्तुओं का आयात कम होकर जो 1960-61 में कुल आयात का 1/3 था घटकर 16.6 प्रतिशत रह गया। लेकिन आर्थिक उदारीकरण के बाद 1997-98 में सोना व चाँदी का आयात $ 3200 मिलियन था बढ़कर 1998-99 में $ 4,876 मिलियन हो गया। नग व गहना उद्योग की माँग बढ़ने के बाद भी आयात में व द्धि हुई है। 1996-97 में इनका आयात $ 2,925 था जो 1998-99 में बढ़कर $ 3,762 हो गया।

घरेलू क्षेत्र में माँग बढ़ने से कुछ सालों में तेल के आयात में काफी व द्धि हुई। 1985-86 में इसका आयात $ 600 मिलियन था जो 1998-99 में बढ़कर $ 1695 मिलियन हो गया जो कुल आयात का 0.4 प्रतिशत था। इसके साथ घरेलू क्षेत्र में लोहा तथा इस्पात की उपभोग मात्रा में भी व द्धि हुई तथा लोहा तथा इस्पात का आयात जो 1970-71 में $ 1,934 मिलियन था (3.5 प्रतिशत) बढ़कर 1996-97 में 4.9 प्रतिशत बढ़ा हालांकि 1997-98 में 3.2 प्रतिशत गिरा तथा 1998-99 में 2.7 प्रतिशत गिरा। इसी प्रकार खाद आयात में भी काफी व द्धि हुई जो 1970-71 में $ 113 मिलियन की बढ़कर 1995-96 में $ 1,683 हो गई।

यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में खाद्यान्न आयात में कुछ कमी आई है लेकिन जिस हिसाब से भारत ने सोचा था यह कमी वैसी नहीं है।

2. **निर्यात का ढाँचा (Structure of Exports)** - पिछले कुछ वर्षों में यदि निर्यात संबंधी आँकड़ों को देखा जाए तो कुल निर्यात मे कृषि संबंधित उत्पादों की महत्ता में कमी तथा निर्मित वस्तुओं के उत्पाद की महत्ता में बढ़ोत्तरी हुई है। कुल निर्यात में, 1960-61 में कृषि तथा कृषि संबंधित वस्तुओं का हिस्सा जो 44.2 प्रतिशत था घटकर 18.2 प्रतिशत रह गया तथा निर्मित वस्तुओं का हिस्सा बढ़कर 45.3 प्रतिशत से 78.7 प्रतिशत हो गया। इस बात से प्रतीत होता है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएँ भी कृषि प्रधान उत्पादों से हटकर औद्योगिकीकरण की तरह बढ़ रही है।

स्वतंत्रता के समय भारत का निर्यात तीन महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ जूट, चाय व कॉटन में होता था। इसके निर्यात से लगभग कुल निर्यात का 50 प्रतिशत की आय थी। लेकिन औद्योगिकीकरण के बाद नए द्वार खुले तथा इन वस्तुओं का निर्यात घटकर 1970-

71 में 31 प्रतिशत तथा 1998-99 में 10 प्रतिशत रह गया। इसी प्रकार इंजीनियरिंग उत्पादों का निर्यात बढ़कर जो 1960-61 में केवल 3.4 प्रतिशत 1998-99 में 13.0 प्रतिशत हो गया।

इसी तरह से बनाए गए (तैयार) कपड़ों के निर्यात से विदेशी विनियम में व द्धि हुई। 1970-71 में इन कपड़ों का निर्यात $ 2 मिलियन तथा जो 1998-99 में बढ़कर $ 4,444 मिलियन हो गया। अब निर्यात में हाथ से निर्मित वस्तु वस्तुओं के निर्यात के बाद इनका दूसरा स्थान है। कैमिकल उत्पाद से भी निर्यात में व द्धि हुई जो 1970-71 में $ 39 मिलियन था बढ़कर 1998-99 में $ 3,372 मिलियन हो गया। इस समय इसका स्थान निर्यात में चौथा था। लेदर से निर्मित वस्तुओं का भी निर्यात में अहम स्थान है। 1998 में इसका योगदान $ 1620 मिलियन था। कच्चे लोहे के निर्यात में भी व द्धि हुई। यह 1970-71 में $ 155 मिलियन से बढ़कर 1998-99 में $ 380 मिलियन हो गया। हालाँकि प्रतिशत के हिसाब से देखें तो कुल निर्यात में यह इसी समय में 7.6 प्रतिशत से घटकर 1.1 प्रतिशत रह गया।

## व्यापार की दिशा
## (Direction of Trade)

स्वतन्त्रता से पहले भारत में व्यापार की दिशा ब्रिटिश राज्य द्वारा निर्धारित की गई थी। इसका मुख्य कारण भारत व ब्रिटेन के बीच औपनिवेशिक संबंध थे। ब्रिटेन ने ही फैसला कर रखा था कि भारत किस देश को निर्यात कर सकता है तथा कौन से देश भारत से आयात कर सकते हैं। भारत का अधिकतर व्यापार भारत व इसकी औपनिवेशों से था। यदि 1950-51 के आँकड़े देखें तो भारत की निर्यात आय 42 प्रतिशत यू०के० तथा यू०एस०ए० से थी और भारत के आयात में उनका हिस्सा 39.1 प्रतिशत था, दूसरे पूँजीवादी देश - फ्राँस, जर्मनी, इटली तथा जापान से भारत के कोई व्यापारिक संबंध नहीं थे। लेकिन समय के साथ राजनैतिक संबंधों का तथा आपसी संबंधों में विस्तार होने पर दूसरे देशों के साथ व्यापार संबंधों में बढ़ोत्तरी हुई।

1. **व्यापार की दिशा (निर्यात)** **(Direction of Trade (Exports)** - भारत के व्यापार में OECD ग्रुप का बड़ा हिस्सा था। लेकिन 1960-61 में जो हिस्सा 66.1 प्रतिशत था घटकर 1998-99 में 58.0 प्रतिशत रह गया। 1998-99 में OPEC ग्रुप का हिस्सा में बढ़ोत्तरी हुई। 1960-61 में 4.1 प्रतिशत था 1998 में यह 10.1 प्रतिशत हो गया। रसिया के साथ भी भारतीय निर्यात में व द्धि हुई। 1960-61 में यह 7 प्रतिशत था जो 1980-81 में बढ़कर 22.1 प्रतिशत हो गया। लेकिन 1998-99 आते-आते यह गिरकर केवल 2.7 प्रतिशत रह गया।

   इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के निर्यात पर जो केवल ब्रिटिश का शासन था अथवा नियंत्रण था वह धीरे-धीरे घटकर अन्य देशों रशिया तथा अन्य पूर्वी यूरोपीय-देशों के साथ जुड़ना आरम्भ हो गया था। यद्यपि यू०के० तथा यू०एस०ए० का हिस्सा बाकी देशों की अपेक्षा ज्यादा था लेकिन जो पहले इन्हीं देशों का भारत का निर्यात पर एकाधिकार था अब वह खत्म हो गया था। यद्यपि 1950-51 में रशिया ने भारत से सिर्फ 11 करोड़ का माल खरीदा था (1950-51) यह बढ़कर 1970-71 में 210 करोड़ तथा 1985-86 में 2006 करोड़ रुपए का हो गया था। भारत के निर्यात में पहला स्थान अमेरिका, रशिया का दूसरा, जापान का तीसरा स्थान था।

2. **आयात की दिशा (Direction of Imports)** - इसी प्रकार आयात बाँटा है। जो इस प्रकार है OECD, OPEC, पश्चिमी यूरोप तथा विकासशील व दूसरे देश। आयात के अन्तर्गत OECD की महत्ता में कमी आई जो इस ग्रुप का भारतीय आयात में हिस्सा घटकर (1960-61 में 78 प्रतिशत) 1998-99 में 51.0 प्रतिशत रह गया। OPEC तेल उत्पादित करने वाली संस्था (ग्रुप) का हिस्सा बढ़कर 1998-99 में 18.7 प्रतिशत हो गया जो 1960-61 में केवल 4.6 प्रतिशत था। समाजवादी देशों से संबंध बढ़ने के बाद पूर्वी-यूरोप देशों का भी आयात में हिस्सा बढ़ा जो 1960-61 में 3.4 प्रतिशत था बढ़कर 1990-91 में 7.8 प्रतिशत हो गया। लेकिन रूस के साथ संबंध जुड़ने के बाद पूर्वी यूरोप देशों के साथ आयात 1998-99 में घटकर 1.6 प्रतिशत रह गया। स्वतन्त्रता के समय भारत में रूस से आयात बिल्कुल न के बराबर था। 1960-61 में यह केवल 16 करोड़ रुपए था। यद्यपि इसके पश्चात् इसमें काफी तेजी आई। इसलिए रसिया (रूस) से आयात जो 1960-61 में 1.4 प्रतिशत था, 1970-71 में बढ़कर 6.5 प्रतिशत हो गया। आयात करनेवाले देशों में अमरीका का पहला स्थान, जापान और रूस का दूसरा तथा तीसरा स्थान था। यह सब बदलाव 1985-86 के बाद देखने को मिला तथा लगातार 1998-99 तक अमरीका से आयात करने में भारत का स्थान पहला (8.7 प्रतिशत), यू०के० (6.1 प्रतिशत), बेलजियम (6 प्रतिशत), जापान (5.7 प्रतिशत), जर्मनी (5.1 प्रतिशत) और सऊदी अरब (4.5 प्रतिशत) हिस्सा था।

## भारत में व्यापार सुधार
## (Trade Reforms in India)

जुलाई 1991 से शुरू करते हुए भारत सरकार ने व्यापार उदारीकरण अथवा व्यापार क्षेत्र को खुला रखने के लिए कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाए। सबसे पहले 1991 में रुपए का अवमूल्यन किया गया ताकि निर्यात को प्रोत्साहन मिले वास्तव में 1991 की व्यापार नीति ने भारतीय व्यापार की दिशा ही बदल दी। सबसे पहले विदेशी व्यापार का विस्तार किया गया जो इस प्रकार है-

व्यापार सुधार के पश्चात् भारत का व्यापार बढ़ा है। भारत का व्यापार स्तर अमेरिका के साथ 1991-92 में $ 75.6 बिलियन जो 1998 में बढ़कर $ 75.6 बिलियन हो गया। यद्यपि 1992-93 में आयात की दर निर्यात की अपेक्षा ज्यादा थी। इस परिणामस्वरूप व्यापार घाटा 1991-92 में $ 1.5 बिलियन, 1992-93 में $ 3.3 बिलियन, 1997-98 में $ 6.5 बिलियन व 1998-99 में 8.2 बिलियन था।

लेकिन व्यापार घाटा के बावजूद भी भारतीय निर्यात में पहले की अपेक्षा अधिक व द्धि हुई है। 1990 के दशक में भारत निर्यात बढ़कर 9.8 प्रतिशत हो गए जो 1980 के दशक में 8.2 प्रतिशत थे। उदारीकरण के बाद व्यापार GDP अनुपात बढ़ने के साथ, भारत के व्यापार घाटा GDP अनुपात कम हुआ है। यह इस बात से साफ होगा कि निर्यात GDP अनुपात और आयात GDP अनुपात में औसत आधार पर अस्सी के दशक में 2.7 प्रतिशत की कमी तथा नब्बे के दशक में 1.2 प्रतिशत की कमी हुई है। साधारणतया आयात-निर्यात अनुपात जो आयात का अनुपात जो निर्यात प्राप्ति द्वारा पूरा किया जाता है। अस्सी के दशक से बढ़कर 65.1 प्रतिशत से नब्बे के दशक में 87.0 प्रतिशत हो गया।

इसका मुख्य कारण भारत ने परम्परागत कृषि निर्यात को छोड़कर औद्योगिकीकरण के बाद

निर्मित वस्तुओं का निर्यात आरम्भ किया। इसी प्रकार भारतीय निर्यात में जो निर्मित वस्तुओं का हिस्सा 66 प्रतिशत या 1991-92 में बढ़कर 77.3 प्रतिशत हो गया जबकि प्राथमिक इकाइयों (वस्तुएँ) मात्र केवल 23.1 प्रतिशत निर्यात की जाती थी यद्यपि मशीनरी और औजार आदि के निर्यात में 30.6 प्रतिशत से 21.7 प्रतिशत की कमी हुई। लेकिन यदि इसका आँकलन किया जाए तो पहले की अपेक्षा निर्यात में व द्धि हुई है।

यद्यपि आयात तथा निर्यात से संबंधित आँकड़ों को व्यापार की दिशा आयात तथा निर्यात में भी वर्णित कर चुके हैं। इसलिए व्यापार सुधार से संबंधित आँकड़ों की जानकारी अथवा इसका व्याख्यान वहाँ से ले सकते हैं।

# इकाई-3

# अध्याय-19
# केन्द्र-राज्य वित्तीय संबंध
# (Centre-state Financial Relations)

सरकार को यूनिटरी (एकल) फेडरल में वर्गीकरण कर सकते हैं यह केन्द्र व लोकल अथॉरिटी के बीच संबंध व उनकी ताकत के अनुसार ही वर्गीकृत की जाती है। यूनिटरी पद्धति के अन्तर्गत पूरा नियंत्रण एक ही सरकार का होता है तथा लोकल अथॉरिटी को केन्द्र के अनुसार चलना पड़ता है। फेडरल पद्धति के तहत सरकार की ताकत का वितरण केन्द्र व राज्यों के बीच है। आम रुचिवाले कार्य केन्द्र सरकार के नियंत्रण में तथा बाकी (लोकल कार्य) राज्य सरकार के पास होते हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत ने सरकार की फेडरल पद्धति को अपनाया।

देश में फेडरल पद्धति का मतलब केन्द्र व राज्य सरकार के बीच वित्तीय संबंध से है। यद्यपि इसमें भी कई समस्याएँ उभरकर आती हैं। जैसे दोनों केन्द्र व राज्य के पास अपने कार्यों को पूरा करने के लिए पर्याप्त आय तथा प्रत्येक सरकार के पास स्वतन्त्र वित्त। स्वतन्त्रक्ति मतलब हर सरकार के पास अपनी आय के अलग साधन होने चाहिए व सभी राज्यों में वित्त (करों) से संबंधी समानता होनी चाहिए, न कि एक राज्य व दूसरे राज्य में करों में अंतर नहीं होना चाहिए। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण है साधनों का बँटवारा।

## साधनों का बँटवारा
## (Division of Resources)

यदि केन्द्र व राज्यों में साधनों को देखा जाए तो केन्द्र सरकार के पास साधनों की भरपूर मात्रा रहती है तथा राज्य सरकार घाटे की समस्या से घिरी रहती है। इसलिए इस तरह की पद्धति बनाई गई है ताकि केन्द्र सरकार से राज्य के पास साधनों का हस्तान्तरण किया जाए। आर्टिकल 275 के तहत केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को सहायता प्रदान करती है। संविधान के आर्टिकल 282 के तहत केन्द्र सरकार सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए राज्य सरकार को सहायता प्रदान करती है। राज्य सरकारें विभिन्न कार्यक्रमों के लिए केन्द्र सरकार से उधार भी लेती हैं। साधनों का हस्तान्तरण (केन्द्र से राज्य) तीन मदों में किया जाता है। (i) कर व ड्यूटी में हिस्सा, (ii) सहायता, (iii) ऋण।

## केन्द्र से राज्यों को साधन हस्तांतरण
## (Transferred of Resources from Centre to States)

योजना के अन्तर्गत केन्द्र से राज्यों को साधनों के हस्तान्तरण में काफी व द्धि हुई। ज्यों-ज्यों

योजनाओं की समय अवधि बढ़ती गई है त्यों-त्यों केन्द्र से राज्यों को जानेवाले धन में व द्धि हुई है। राज्यों के कुल खर्च में लगभग केन्द्र का हिस्सा जो हस्तान्तरित होता है लगभग 35 से 45 प्रतिशत के बीच रहता है। इन आँकड़ों से अंदाजा लगा सकते हैं कि राज्यों की निर्भरता केन्द्र पर बहुत अधिक है।

यदि कर, ड्यूटी, सहायता तथा ऋण देखा जाए तो 1951-52 से 197-98 के बीच केन्द्र से राज्यों को साधनों का हस्तांतरण इस प्रकार है। कुल साधन जो केन्द्र को हस्तांतरित हुए हैं वो हैं 7,07,731 करोड़ रुपए जिनमें कर व ड्यूटी 2,19,489 करोड़ रुपए प्राप्त हुए हैं तथा ऋण के रूप में 2,22,090 करोड़ रुपए हस्तान्तरित हुए हैं। इसका मतलब लगातार राज्यों की निर्भरता केन्द्र पर बढ़ रही है जो आंकड़ों के अनुसार ऋण तथा कर व ड्यूटी में यह हस्तान्तरण ज्यादा है। केन्द्र के साथ-साथ वित्त कमीशन के माध्यम से भी राज्यों को वित्त हस्तांतरित होता है। नियुक्ति की जाती है। यह नियुक्ति संविधान के आर्टिकल 280 के तहत की जाती है। दसवाँ वित्त कमीशन के०सी० पंत चेयरमैन के साथ नियुक्त किया गया। इसका समय 1995-2000 था। वित्त कमीशन का संबंध आयकर, यूनियन, एक्साइज ड्यूटी, एक्साइज की एडिसनल ड्यूटीज, कृषि भूमि को छोड़कर संपत्ति पर एस्टेट ड्यूटी, जूट निर्यात के लिए सहायता, रेलवे किराए व भाड़े पर कर और राज्य के बजट घाटे का पूरा करने संबंधी सहायता आदि से है।

सबसे महत्त्वपूर्ण हस्तांतरण (केन्द्र से राज्य) आयकर तथा यूनियन एक्साईज ड्यूटी है। पहले वित्त कमीशन से अब तक के 10वें वित्त कमीशन से आयकर में राज्य का हिस्सा 55 से 85 प्रतिशत रहा है। अब प्रश्न यह उठता है कि राज्यों का बँटवारा किस आधार पर किया जाए। पहले वित्त कमीशन ने सिफारिश की थी साधनों का हस्तांतरण (बँटवारा) राज्यों की संपत्ति के अनुसार किया जाना चाहिए तथा साथ में राज्यों की आयकर इकट्ठा करने की क्षमता अथवा कितने लोग कर देनेवाले हैं। लेकिन द्वितीय वित्त कमीशन ने इसके अन्दर परिवर्तन किए तथा ज्यादा हिस्सा जनसंख्या के आधार पर तथा कम हिस्सा आयकर इकट्ठा करने की क्षमता पर (उदाहरण के तौर पर 90 व 10 प्रतिशत, मतलब 90 प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर तथा 10 प्रतिशत आयकर इकट्ठा करने की क्षमता पर) यह पद्धति (तरीका) सातवीं पंचवर्षीय तक चलाता रहा। लेकिन आठवीं, नवीं व दसवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इसमें प्रति व्यक्ति आय का प्रावधान भी रखा गया। मतलब यदि प्रति व्यक्ति आय अधिक है तो हस्तांतरण 60 प्रतिशत के हिसाब से होगा। 5 प्रतिशत राज्य के क्षेत्रानुसार, 5 प्रतिशत इन्फ्रास्ट्रक्चर जो दसवें वित्त आयोग ने तैयार किया है, 20 प्रतिशत जनसंख्या के अनुसार तथा 10 प्रतिशत राज्य के कर क्षमता अनुसार।

इसी प्रकार यूनियन एक्साइज ड्यूटी का भी वितरण राज्य सरकारों को किया गया। पहले वित्त कमीशन ने सिर्फ तीन वस्तुओं (तम्बाकू, सब्जी उत्पादन तथा माचिस) पर मिलनेवाली एक्साइज ड्यूटी का 40 प्रतिशत राज्यों को वितरित किया जाएगा तथा यह वितरण जनसंख्या के आधार पर होगा। यद्यपि यह भाग कम होकर 40 प्रतिशत से 25 प्रतिशत तथा तीसरे वित्त कमीशन द्वारा यह 20 प्रतिशत रखा गया। चतुर्थ वित्त कमीशन ने आगे यह प्रस्तावित किया कि सभी एक्साइज ड्यूटी राज्यों तथा केन्द्र के बीच वितरित की जानी चाहिए। कुल का 20 प्रतिशत राज्यों के लिए रखा गया। राज्यों के बीच वितरण से संबंधित वित्त कमीशन ने कहा कि 80 प्रतिशत जनसंख्या के हिसाब से तथा 20 प्रतिशत आर्थिक पिछड़ापन के हिसाब से रखा जाएगा।

छठे वित्त कमीशन ने यह जनसंख्या संबंधित बँटवारा 80 प्रतिशत से घटाकर 75 प्रतिशत कर दिया और आर्थिक पिछड़ापन संबंधी वितरण बढ़ाकर 20 से 25 प्रतिशत कर दिया। पंजाब को छोड़कर यह सब राज्यों को दिया गया क्योंकि पंजाब में पिछड़ापन कम होने तथा इसकी प्रति

व्यक्ति आय भी ज्यादा थीं इसलिए पिछड़ापन के तहत पंजाब को यह (Excise Duty) नहीं दी गई। आठवें वित्त कमीशन ने प्रस्तावित किया कि इसमें राज्यों का योगदान भी बढ़ना चाहिए। इसके साथ दसवें वित्त कमीशन ने राज्य योगदान बढ़ाकर 45 प्रतिशत से 47.5 प्रतिशत कर दिया। इसका बढ़ाने का मुख्य कारण था कि राज्यों का बजट-घाटा लगातार बढ़ रहा था। जिस प्रकार आयकर से विभिन्न राज्यों की वितरण किया था उसी प्रकार दसवें वित्त कमीशन ने उसी तर्ज पर यह वितरण किया। वितरण की वही पद्धति रखी गई जो आयकर वितरण के समय थी जैसे 20 प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर, 60 प्रतिशत एक राज्य से दूसरे राज्य के बीच प्रति व्यक्ति आय का अंतर अथवा ऊँचे आय स्तर वाले राज्य से तुलना की गई (जैसे पंजाब), 5 प्रतिशत राज्य का क्षेत्र के अनुसार, 5 प्रतिशत इन्फ्रास्ट्रक्चर के सूचकांक अनुसार तथा 10 प्रतिशत राज्य द्वारा कर इकट्ठा करने संबंधी किए गए प्रयत्न के अनुसार था।

**एक्साइज के ऊपर अतिरक्ति भार** केन्द्र सरकार द्वारा लगाया जाता है। इसके अतिरिक्त यह फंड केन्द्र सरकार द्वारा राज्य को उपभोग के आधार पर वितरित करने का प्रावधान है। लेकिन द्वितीय कमीशन ने परिवर्तन करते हुए किया कि राज्यों को वितरण वित्त उनके द्वारा प्राप्त बिक्रीकर (कपड़ा, तम्बाकू व चीनी) के बराबर दिया जाएगा। दसवें वित्त कमीशन ने यह प्रस्तावित किया कि 50 प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर, 40 प्रतिशत राज्य के पिछले तीन वर्षों का औसत घरेलू उत्पाद के अनुसार और 10 प्रतिशत राज्य द्वारा पिछले तीन वर्षों में किया गया बिक्रीकर का औसत अनुसार। लगभग 3 प्रतिशत केन्द्र ने यूनियन टैरिटरी के लिए रखा।

केन्द्र द्वारा राज्यों को वित्त वितरण में **एस्टेट डयूटी** का भी प्रावधान है। यह द्वितीय वित्त कमीशन द्वारा प्रस्तावित किया गया था। इसके अन्तर्गत एक प्रतिशत यूनियन टैटिटरी के बीच वितरित किया जाएगा तथा राज्यों को उनकी अचल सम्पत्ति का सकल मूल्य के आधार पर वितरित किया जाएगा। लेकिन केन्द्र सरकार ने अप्रैल 1, 1985 को एस्टेट डयूटी को खत्म कर दिया था तथा दोबारा इसको लगाने का कोई विचार नहीं है।

संविधान के आर्टिकल 275 व 282 राज्यों को देनेवाली सहायता से संबंधित है। आर्टिकल 275 के तहत राज्य सरकार को जरूरत के समय सहायता दी जाती है लेकिन इसकी मात्रा वित्त कमीशन द्वारा निर्धारित की जाती है। इस प्रकार आर्टिकल 282 के तहत सार्वजनिक उद्देश्य के लिए सहायता दी जाती है तथा इसकी मात्रा केन्द्र सरकार की इच्छा पर निर्भर करती है।

आर्टिकल 275 के तहत सहायता बजट आवश्यकता, कर सुधार तथा राष्ट्रीय महत्त्व के उद्देश्य के लिए सहायता दी जाती है तथा इसकी मात्रा केन्द्र सरकार की इच्छा पर निर्भर करती है।

आर्टिकल 275 के तहत सहायता बजट आवश्यकता, कर सुधार तथा राष्ट्रीय महत्त्व के उद्देश्य से बड़े कार्य आदि से संबंधित है। यद्यपि साधनों का वास्तविक हस्तान्तरण मूल रूप से राज्य की बजट आवश्यकताओं पर निर्भर करता है। चतुर्थ वित्त कमीशन ने भी राज्यों के बजट घाटे संबंधित वित्त हस्तान्तरण को भी महत्ता प्रदान की। जिन राज्यों के पास आधिक्य था उनको इस संबंध में कोई भी सहायता प्रदान नहीं की गई। इस प्रकार की सहायता (बजट संबंधी घाटा) आठवें वित्त कमीशन तक जारी रही। लेकिन नवें-वित्त-कमीशन ने इसे बदलकर (बजट घाटा) राज्यों को उनकी राजकोषीय आवश्यकता पूरी करने में तबदील कर दिया। राज्यों की राजकोषीय आवश्यकता से अभिप्राय निर्धारित आय प्राप्ति तथा गैर योजना खर्च के बीच के अंतर से है। इसके साथ इस कमीशन ने प्रस्तावित किया कि 12 राज्यों को राज्य सरकार की योजना

के आय संबंधी तत्त्वों में घाटा को पूरा करने के लिए 9001.83 करोड़ रुपए प्रदान किए जाने चाहिए।

सहायता के साथ-साथ वित्त कमीशन की सहमति पर केन्द्र से राज्यों को दूसरे साधनों से भी वित्त हस्तान्तरण का प्रावधान है। जो इस प्रकार है -

A. योजना कमीशन से योजना उद्देश्य के लिए सहायता।

B. केन्द्र से राज्य को हस्तांतरण में केन्द्र की अपनी विशेष ताकत।

इसके अन्तर्गत एक-तिहाई हिस्सा वित्त कमीशन की अनुशंसा पर राज्यों को तथा दो-तिहाई केन्द्र सरकार योजना लागू करने के लिए अपने पास रखेगी। यद्यपि राज्यों को वित्त-वितरण के पीछे एक ही उद्देश्य था वह था कि जो योजना उद्देश्य तय किए जाएंगे उनको पूरा करने के लिए इस वित्त का प्रयोग किया जाना चाहिए। यद्यपि इसके लिए कोई फार्मूला तय नहीं किया गया कि किस प्रकार उद्देश्यों की पूर्ति होगी बल्कि वित्त हस्तांत्रण को निर्धारित करने के लिए पूरी योजना अनिर्धारित थी अथवा कुछ समय के लिए थी। राज्यों के बीच योजना सहायता के लिए दो फार्मूलों का प्रयोग किया गया - (1) गाडगिल फार्मूला तथा (2) मुकर्जी फार्मूला गाडगिल फार्मूला के तहत 1969-70 में जनसंख्या के अनुसार 60 प्रतिशत, 10 प्रतिशत प्रति व्यक्ति आय आदि राष्ट्रीय औसत से कम उसके अनुसार, 10 प्रतिशत प्रति व्यक्ति आय संबंध में कर प्रयास, 10 प्रतिशत बड़े व मध्य सिंचाई प्रोजेक्ट पूरा करना तथा 10 प्रति राज्यों को कोई खास समस्या हो आदि के लिए राज्यों को वित्त हस्तान्तरण का प्रावधान है। इस फार्मूला के तहत यह भी निश्चित किया गया कि योजना सहायता को 30 प्रतिशत सहायता के रूप में तथा 70 प्रतिशत ऋण के रूप में प्रदान किया गया। लेकिन जम्मू में यह 10 प्रतिशत ऋण के रूप में तथा 90 प्रतिशत सहायता के रूप में था।

अधिकतर राज्यों ने गाडगिल फार्मूला बदलने पर जोर दिया और प्रणव मुकर्जी की अध्यक्षता में कमेठी का गठन किया गया। इसके अन्तर्गत जो पुराना तरीका था जिसको पहले ही वर्णित कर चुके हैं 60 प्रतिशत, 20 प्रतिशत, 5 प्रतिशत तथा 7.5 प्रतिशत व 7.5 प्रतिशत (कोई खास समस्या)। आठवीं पंचवर्षीय योजना के तहत राज्यों को सहायता 78,500 करोड़ रुपए थी। यह बँटवारा मुकर्जी फार्मूला के तहत किया गया था खास वर्ग राज्यों को वही 90:10 सहायता; ऋण तरीका रखा गया।

## फेडरल वित्त से संबंधित समस्याएँ
## (Problems Related to Fedral Finance)

1. **राज्य सरकार की साधनों और जरूरतों के बीच अंतर (Gap between Resources and needs of Sate Government)** - संविधान के अनुसार केन्द्र व राज्यों में साधनों का बँटवारा संविधान में दिया गया है। यद्यपि आय साधन क्षमता राज्य के पास कम है। बड़े कर जैसे एक्साइज ड्यूटी, कस्टम ड्यूटी तथा दूसरे केन्द्रीय कर जिनकी बढ़ने की क्षमता है, केन्द्र सरकार लगाती है। लेकिन राज्य के पास भूमि सीमित है जिससे भूमि आय भी बढ़ाना मुश्किल है। मोटरकार पर कर तथा मनोरंजन पर भी कर बढ़ना इतना आसान नहीं है। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में आर्थिक व द्धि होने पर (बढ़ने पर) आयकर का आधार तथा कस्टम ड्यूटी में बढ़ोत्तरी हुई है। इस प्रकार केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच साधनों में असमानता होने पर राज्यों का केन्द्र पर निर्भर रहना पड़ता है। केवल बिक्रीकर बढ़ाकर ही राज्य अपनी आय बढ़ा सकता है।

2. **वित्त कमीशन की महत्ता में कमी (The Importance of finance Commission has Reduced)** - जैसा कि पहले भी बताया गया है कि वित्त कमीशन के तहत केवल एक-तिहाई केन्द्र से राज्य को वित्त हस्तान्तरित किया जाता है। इसका मतलब है कि दो तिहाई हिस्सा योजना आयोग या केन्द्र द्वारा सीधा राज्य को दिया जाता है। काफी समय से योजना आयोग को इस तरह की बातों के बारे में कोई निर्देश नहीं दिए गए हैं। इसका मतलब केन्द्र ही अपने अधिकारों का प्रयोग कर राज्यों को वित्त हस्तान्तरित करती है। ऐसी अवस्था में राज्यों के साथ भेदभाव अपनाने की व्यवस्था अपने आप शुरू हो जाती है।

3. **केन्द्र-राज्य संबंध (Centre-state Relations)** - वित्त हस्तान्तरण के समय केन्द्र व राज्यों के संबंध की व्याख्या करना बहुत महत्त्वपूर्ण है। केन्द्र एक एकल सरकार की तरह काम करती है। जहाँ केन्द्रशासित प्रदेश है वहाँ यह समस्या कम है लेकिन जहाँ केन्द्र व राज्य में अलग-अलग सरकारें अथवा राज्य समर्थित सरकारें नहीं है वहाँ भेदभाव की स्थिति जन्म लेती है। उदाहरण के तौर पर यद्यपि कानून व्यवस्था कायम रखना राज्य सरकार का काम है फिर भी केन्द्र सरकार इस क्षेत्र में हस्तक्षेप करती है जैसे सेंट्रल रिजर्व पुलिस तथा बॉर्डर सिक्योरटी फोर्स की नियुक्ति कर अथवा इनके द्वारा राज्यों में हस्तक्षेप करती है।

4. **क्षेत्रीय असमानता की समस्या को सुलझाने में असफल (Failure to Solve the Problem of Regional Imbalance)** - केन्द्र से वित्त हस्तान्तरण के समय इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि प्रतिव्यक्ति आय जिस राज्य की राष्ट्रीय स्तर की अपेक्षा कम होगी। उसे सहायता तथा ऋण प्रदान किया जाएगा। यदि 1969-70 के आँकड़ों को देखें तो हरियाणा तथा पंजाब ने बिहार, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश की अपेक्षा प्रति व्यक्ति सहायता ज्यादा प्राप्त की। बिहार जिसकी प्रति व्यक्ति आय कम है उसे भी सहायता कम मिली।

यद्यपि इसमें काफी खामियाँ हैं लेकिन इन खामियों को दूर करने के लिए कुछ उपाय सुझाए गए हैं। जैसे कुछ राज्यों ने नियमित वित्त कमीशन लगाने की सिफारिश की है। जो वित्त कमीशन अनुशंसा करते हैं उनको पूर्णरूप से लागू किया जाए। इसके साथ-साथ पहले वित्त कमीशनों द्वारा की गई सिफारिश तथा रिकॉर्ड को सँभालकर रखना चाहिए। तथा इन्हें वर्तमान कमीशन को सौंपना चाहिए। किसानों के ऊपर किए गए सर्वेक्षण, आँकड़े आदि का अध्ययन कर उन्हें प्रकाशित करना चाहिए। राज्य सरकारों की आयों (प्राप्तियों) तथा खर्चों पर विशेषरूप से समय-समय पर नजर रखनी चाहिए। राज्यों के बीच भेदभाव खत्म करने के लिए उचित कदम उठाने चाहिए तथा जो सिफारिश की गई है उनको पूर्णरूप से लागू करना चाहिए। पिछड़ी अर्थव्यवस्था से ग्रसित राज्यों के ऊपर विशेष ध्यान देना चाहिए। यह तभी संभव हो सकता है जब पिछड़े राज्यों मे हॉस्पिटल, सड़कें, साक्षरता, प्रति व्यक्ति आय आदि को अधिक महत्त्व देकर इन राज्यों को अधिक सहायता प्रदान की जाए।

# अध्याय-20
# अर्थव्यवस्था में ढाँचात्मक सुधार
# (Structural Reforms in the Economy)

1991 से पहले, भारत में आर्थिक संकट पैदा हो गया। अधिकतर अर्थशास्त्रियों ने माना कि स्वतन्त्रता प्राप्ति से अब तक का यह सबसे बड़ा आर्थिक संकट था। वित्तीय घाटा, स्फीतीकारी दबाव भुगतान संतुलन का असंतुलन आदि काफी समस्याएँ थी। पिछले लगभग 6 वर्षों से सरकार ने बड़े पैमाने पर अर्थव्यवस्था को स्थिर करने की नीति बनाई और निश्चित ढाँचात्मक सुधार प्रस्तावित किए। यद्यपि इस नीति से साहसात्मक परिणाम अर्जित नहीं हुए।

## आर्थिक संकट का आरम्भ
## (The Origin of Economic Crisis)

1991 में पैदा होनेवाला संकट अचानक पैदा नहीं हुआ। यह काफी वर्षों से चलता आ रहा है। यद्यपि संकट का आरम्भ 1980 के दशक से शुरू हुआ था इससे अर्थव्यवस्था में बड़े पैमाने पर असन्तुलन पैदा हो गया। सरकार के प्राप्ति तथा खर्च में अधिक अंतर से वित्त घाटे की समस्या आरम्भ हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार को विदेशों से वित्त उधार लेना पड़ा। प्रो० दीपक नय्यर के अनुसार (वित्त में आंतरिक अस्थिरता) (असंतुलन) और भुगतान में बाहरी असंतुलन दोनों एक दूसरे से संबंधित है। इसका मुख्य कारण अर्थव्यवस्था में बड़े पैमाने पर प्रबंधन की कमी है। यह दो मुख्य कारणों से हैं-(i) निजी क्षेत्र की बचत व निवेश में अंतर (ii) सार्वजनिक क्षेत्र के प्राप्ति व खर्च में अंतर।

1990 गल्फ संकट से भी तेजी से समस्याएँ बढ़ी। उस समय देश में राजनैतिक अस्थिरता थी जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय विश्वास में कमी से अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी व मुद्रा बाजार में देश की साख दर तेजी से गिरी 1970 में भारत की अर्थव्यवस्था काफी मजबूत थी लेकिन 1990 तक स्थिति बदल गई और थोड़े से तेल झटके से इसका अर्थव्यवस्था पर काफी प्रभाव पड़ा और बड़े पैमाने पर वित्तीय घाटा, चालू खाता घाटा कीमतों में व द्धि हुई।

The Fiscal Imbalance (सार्वजनिक आय अस्थिरता) 1991 में सार्वजनिक वित्त घाटा स्थिति एक वर्ष पैदा नहीं हुई। गैर-विकसित खर्चे के दबाव से 1980 के दौरान लगातार यह अस्थिरता बढ़ती गई। सार्वजनिक वित्त अस्थिरता के तत्त्व बताते हैं कि 80 के दौरान यह बढ़ी थी। जो तत्व सार्वजनिक वित्त को मापते है वो-बजट घाटा, आय घाटा (प्राप्ति घाटा) मौद्रिक घाटा तथा सकल वित्त घाटा है। पहले तीन का ट्रेजरी बिल को इस्यू करके वित्त प्रदान किया जाता है। सरकार के साधनों की आय में ज्यादा घाटे को बाजार उधार, लघु-बचत, प्रोविडेंट फंड, बाहरी उधार आदि से उधार लेकर पूरा किया जाता है। 1990-91 के माप दर्शाते हैं कि वित्त संकट गहरा था। 1981-82 में 0.9 प्रतिशत बजट घाटा के विरुद्ध 1990-91 में यह सकल उत्पाद का 2.1 प्रतिशत (1981-82) से बढ़कर 1990-91 में 3.5 प्रतिशत था। सार्वजनिक वित्त घाटा में भी 1975-76 में GDP (सकल घरेलू उत्पाद) का 4.1 प्रतिशत, 1984-85 में 7.5 प्रतिशत व

1990-91 में 8.4 प्रतिशत था। सार्वजनिक वित्त घाटा सरकार अपनी उधार बढ़ाकर पूर्ण करती है जो 1984-85 में GDP का 35 प्रतिशत था, बढ़ाकर 1990-91 के अंत तक GDP का 53 प्रतिशत था।

## भुगतान संतुलन की स्थितियाँ कमजोर
## (Fragile Balance of Payment Situation)

1991 में भुगतान संतुलन स्थिति काफी खराब थी। चालू वित्त घाटा 1980-81 में GDP का 9.7 विलियन था बढ़कर 1985-86 में GDP का 4.9 विलियन और आगे 1990-91 में यह बढ़कर GDP का 97 विलियन हो गया। यह लगातार बढ़ता घाटा उधार लेकर पूरा किया जाता था और इसके प्रभाव से भारत का बाहरी भाग 1980-81 में GDP का 12 प्रतिशत से 1990-91 में GDP का 23 प्रतिशत था। 1991 में गल्फ संकट से ये और भी गहरा गया तथा जून, 1991 में विदेशी मुद्रा भंडार इस तरह गिर गया कि दस दिन के आयात के लिए भी यह मुद्रा भंडार पूरा नहीं बैठता था।

यह स्थिति भारत के लिए काफी खराब थी। इस अवस्था में सरकार को अन्तिम तरीका विदेशी मुद्रा को प्राप्त करने का सिर्फ सोने का स्टॉक प्रयोग करना ही दिखाई पड़ता था क्योंकि ऐसी अवस्था में 1MF से सहायता ली जा सकती है। इसलिए ऐसी अवस्था को काबू करने के लिए सरकार ने 1991-92 में इस तरह के ढाँचात्मक सुधार किए जो देश ऐसी स्थिति से बचा सकें।

## स्फीतिकारी दबाव का नियंत्रण
## (Mounting Inflationary Pressures)

1980 के द्विभाग में स्फीतिकारी दबाव ज्यादा नहीं थे, और स्फीति की औसत दर 6.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी। यद्यपि 1990-91 में स्फीति दर में 10.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष की व द्धि हुई। यह स्फीति दर थोक कीमत सूचकांक के संदर्भ में थी। उपभोक्ता कीमत सूचकांक की स्फीति दर 11.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष तक बढ़ी जो एक चिन्ता का विषय था। तीन अच्छी मानसून के बाद भी यह कीमत सूचकांक लगातार बढ़ा। इसका मुख्य कारण बजट घाटे का मौद्रिकरण तथा मुद्रा पूर्ति की अधिक व द्धि था। इसकी वजह से माँग तथा पूर्ति के अंतर से स्फिति की दर में बढ़ोत्तरी हुई।

1990-91 के संकट को ध्यान में रखते हुए सरकार ने आर्थिक नीति सुधार आरंभ किए जो दो बातों पर आधारित थे। आर्थिक स्थिरता और ढाँचात्मक सुधार यद्यपि स्थिरता माँग प्रबंधन से संबंध रखती है (मौद्रिक नीति तथा ढाँचात्मक सुधार अर्थव्यवस्था के पूर्ति पक्ष की समस्याओं से संबंध रखती है) तथा उसका निवारण करती है।

### आर्थिक स्थिरता
### (Macroeconomic Stablisation)

आर्थिक स्थिरता को यदि अर्थव्यवस्था में स्थिरता कहा जाए तो दोनों बातें बराबर है। अधिकतर इसे स्थिरता के नाम से ही पुकारते हैं—मतलब अर्थव्यवस्था में निम्न व स्थिर स्फीति, वित्त तथा भुगतान संतुलन स्थिति लगातार स्थिरता। संकट को काबू करने के लिए स्थिरता आवश्यक है लेकिन इसकी महत्ता और भी बढ़ जाती है यदि ढाँचात्मक सुधार तथा स्थिरता एक साथ आरम्भ की जाएँ। क्योंकि ढाँचात्मक सुधार से आर्थिक दबाव बढ़ता है। उदाहरण के तौर पर लघु-काल में व्यापार उदारीकरण से भुगतान संतुलन में घाटा बढ़ सकता है तथा सार्वजनिक

उधार की लागत बढ़ने से वित्तीय स्थिति खराब हो जाती है। इसलिए स्थिरता के साथ ढाँचात्मक सुधार प्रक्रिया को खत्म कर सकते हैं। दीर्घकाल में ढाँचात्मक सुधार अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाने के लिए सहायक हैं। सुधार प्रक्रिया की अनुपस्थिति में सार्वजनिक क्षेत्र में हानि से बजट पर लगातार भार बढ़ेगी, व्यापार पर लगाए गए प्रतिबंध निर्यात व द्धि में रुकावट डालेंगे और इससे सरकार निजि बचत को कब्जे में लेगी तो वित्त समस्या पैदा हो सकती है।

1991 में कांग्रेस सरकार ने कुर्सी सम्भालने के बाद पहला काम अर्थव्यवस्था में स्थिरता अर्थव्यवस्था को स्थापित करने का किया। इसके तहत स्फीति को नियंत्रण करने की नीति बनाई तथा सार्वजनिक वित्त सुधार कर भुगतान संतुलन को सुधारने की तरफ कदम उठाए।

1. Control of Inflation (स्फीति का नियंत्रण) 1990-91 में स्फीति दर 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष से ज्यादा थी। इसको कम करने के लिए एक तरफ अर्थव्यवस्था में मौद्रिक तथा सार्वजनिक वित्त कार्य स्थापित किए तथा दूसरी तरफ उत्पादन तथा पूर्ति स्थिति में सुधार किया। इस दिशा में सरकार की उपलब्धि दोनों तरफ मध्यस्थ थी 1991-92 में 1990-91 की अपेक्षा उत्पादन नहीं बढ़ा, अधिक विदेशी विनिमय रिजर्व आने से मुद्रा पूर्ति 206 प्रतिशत बढ़ गई। इससे स्फीति में व द्धि से थोक कीमत सूचकांक 13.7 प्रतिशत बढ़ गया। यद्यपि 1992-93 और स्थिरता कृषि व द्धि बढ़ी तथा साथ में उद्योग भी बढ़ा। इस परिणाम स्वरूप सरकार एहतियात बरतते हुए मुद्रा पूर्ति में 7.6 की व द्धि की। वित्तीय घाटा भी GDP का 5.7 प्रतिशत नीचे लाया गया। इस विस्फीति की स्थिति से कीमतों में कमी हुई तथा स्फीति दर घटकर 1993 के शुरू में 7.0 प्रतिशत रह गई। यद्यपि 1993-94 में वित्त घाटा बढ़ा जो GDP का 7.5 प्रतिशत था लेकिन 1994-95 में यह घाटा GDP का 6.5 प्रतिशत रहा।

यद्यपि 1995-96 में स्फीति की दर में तेजी से कमी आई जो घटकर 5 प्रतिशत रह गई। यह केवल मुद्रा व द्धि में धीरे व द्धि उत्पादन में तेजी से व द्धि, ईधन कीमतों में परिवर्तन नहीं की वजह से था। इस प्रकार ये चक्र चलता रहा। 1997-98 में मुद्रा पूर्ति में व द्धि 16.0 प्रतिशत हुई। ईधन की कीमतें 10 प्रतिशत के करीब बढ़ी। यद्यपि खाद्यान्न वस्तुओं की कीमतों में भी 3.2 प्रतिशत रिकार्ड व द्धि हुई। इन सबके बावजूद स्फीति पर 5.3 प्रतिशत रही। यद्यपि सितम्बर 8.8 प्रतिशत हो गई लेकिन 1999 में इसमें फिर कमी हुई और यह घटकर 4.6 प्रतिशत रह गई जनवरी 29,2000 में स्फीति दर काफी कमजोर थी जो केवल 2.9 प्रतिशत थी। लेकिन बहुत बार निम्न स्फीति भी ऊँची व द्धि को कम करती है। इसलिए इसका ज्यादा, कम होना भी घातक है।

## वित्तीय फेरबदल
## (Fiscal Adjustment)

वित्तीय एडजस्टमेंट दो समस्याएँ - ऊँचा घरेलू स्फीति और भुगतान संतुलन घाटा की समस्या को निपटाने के लिए आवश्यक है। सरकार (केन्द्र, राज्य, यूनियन टैरिटरी) का वित्त घाटा 1970 में GDA का 7 प्रतिशत था। यद्यपि यह 1980 में बढ़कर GDA का 9 प्रतिशत व 1990-91 में बढ़कर GDP का 11 प्रतिशत हो गया। सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व प्राप्ति है जो घाटा को नियंत्रित करती है। 1990-91 में सरकार के पास प्राप्ति (आय) GDP का 0.3 प्रतिशत ज्यादा थी लेकिन 1980 में स्थिति एकदम बदल गई 1985-86 में आय घाटा GDP का 2 प्रतिशत जो 1990-91 में बढ़कर 4 प्रतिशत हो गया। इसलिए इस तरह के घाटे जब आय से पूरे न हो तो वित्त फेरबदल आवश्यक है।

केन्द्रीय सरकार ने वित्त फेरबदल कार्यक्रम शुरू किया जिससे वित्त घाटा 1990-91 में GDP का 8.3 प्रतिशत था घटकर 1991-92 में GDP का 8.3 प्रतिशत था घटकर 1991-92 में 5.9 प्रतिशत और 1992-93 में 5-7 प्रतिशत रह गया। यद्यपि केन्द्र सरकार ने मध्य स्तर पर भी ये कार्यक्रम लागू किया लेकिन इसमें काफी कठिनाई थी और वित्त घाटा बढ़कर 1993-94 में GDP का 7.4 प्रतिशत हो गया। राज्य ने कभी इस तरह के कार्यक्रम नहीं चलाए। राज्य सरकार अपनी लोकप्रियता बढ़ाने के लिए इस तरह गैर-योजना प्राप्ति खर्च को (वापिस) संचालित नहीं करती न ही कर लगाकर अपने साधन बढ़ाती है। इस प्रकार 1998-99 में केन्द्र व राज्य सरकार का वित्त घाटा GDP का 9.3 प्रतिशत था। भारत में वित्तीय घाटा आमतौर पर सार्वजनिक खर्चों की वजह से है। इसलिए वित्त घाटा कम करने के लिए सार्वजनिक खर्च कम करना आवश्यक है। वर्तमान में कर का GDP में अनुपात काफी ज्यादा है इसलिए कर के द्वारा अतिरिक्त साधन जुटाना आसान नहीं। सरकार का 1970-71 में सार्वजनिक खर्च GDP का 19 प्रतिशत था 1980-81 में बढ़कर 30 प्रतिशत तथा 1990-91 में बढ़कर GDP का 37 प्रतिशत हो गया। इसलिए वित्त घाटा कम करने के लिए सार्वजनिक खर्च में 25 प्रतिशत की कमी आवश्यक है। यद्यपि सार्वजनिक खर्च, भारत जैसे देश में आवश्यक है इसको कम करने से पहले सरकार को देखना चाहिए कि सामाजिक क्षेत्र तथा इन्फ्रास्ट्रक्चर का विकास बाधित न हो। इसके अन्तर्गत ब्याज भुगतान, सब्सिडी भुगतान प्रबन्धकीय खर्च तथा सेना संबधी उपभोग खर्च तथा सरकारी उपभोग की तरफ ध्यान देना आवश्यक है।

यद्यपि सरकार ने 1997-98 में कर तथा गैर कर साधनों से आय व द्धि करने के लिए प्राथमिकता दी है। इसके तहत 1997-98 में सरकारी आय GDP का 25 प्रतिशत थी। योजना कमीशन का कहना है कि सरकार कर व द्धि तथा गैर-कर साधनों से अतिरिक्त आय अर्जित कर सकती है। सरकार कुछ प्राप्ति काला धन को लक्ष्य बनाकर जुटा सकती है जो वर्तमान में GDP का 40 प्रतिशत आकलन किया गया। यह लगभग 600,000 करोड़ होगा।

एक क्षेत्र जहाँ आय बढ़ाने का साधन सार्वजनिक सेवाएँ है जैसे सार्वजनिक द्वारा दी गई सेवाएँ-सिंचाई, बिजली, पानी, रोड यातायात और ऊँची शिक्षा। केन्द्र सरकार द्वारा प्रदान की गई सेवाओं पर लगभग 35 प्रतिशत रिकवरी है। राज्य सरकार की रिकवरी 14 प्रतिशत है। जो रिकवरी नहीं की जाती वह सब्सिडी के तौर पर प्रदान की जाती है। सरकार सार्वजनिक प्रयोग जैसे बिजली, सिंचाई, यातायात तथा पानी पर दर बढ़ा सकती है।

यद्यपि सरकार सार्वजनिक प्रयोग सेवाओं की दर बढ़ाकर साधन जुटाने में गंभीर नहीं है। यद्यपि यह उपभोग खर्च तथा सब्सिडी घटाने में भी असफल रही है। सख्त कदम उठाने की बजाए सरकार ने हल्के फुल्के कदम उठाए हैं।

## भुगतान संतुलन की सहमति
## (Balance of Payment Adjustment)

वर्तमान में भुगतान संतुलन की स्थिति वैसी नहीं है जो 1990-91 में थी। विदेशी विनिमय भंडार 1991 में केवल $2.2 विलियन था जो 1999 में बढ़कर $30.4 विलियन हो गया। वर्तमान में विदेशी विनिमय भंडार $204 विलियन है। इसका मुख्य कारण सरकार ने 1999 में उदारीकरण पर ज्यादा जोर दिया।

भुगतान संतुलन से संबंधित नीति जो पिछले 8 सालों से काम कर रही है—दोनों स्थिरता तथा ढाँचात्मक सुधार पर आधारित है। भारत में भुगतान संतुलन की समस्या का उत्पादन होने का कारण निर्यात की प्राप्ति अपेक्षा आयात की भुगतान खर्च ज्यादा है। 1980 के आरम्भ में यह

कवरेज अनुपात केवल 52.4 प्रतिशत था और जिससे व्यापार घाटा पनपा। यद्यपि इसमें कुछ सुधार हुआ है 1990-91 में निर्यात की आय आयात की मूल्य अपेक्षा 66.2 प्रतिशत थी यद्यपि 1991 में रुपये का लगभग 22.2 प्रतिशत अवमूल्यन किया गया। अप्रैल 1991 से मार्च 1996 तक देश में स्फीति दर दूसरे औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं की अपेक्षा ज्यादा थी 1991 से 1993 में भी रुपये की कीमत 41.2 प्रतिशत कम की गई। वास्तव में 1992-93 में द्वि-विनिमय दर पद्धति के अन्तर्गत रुपये की आशिक तब्दीली तथा 1993-94 में व्यापार खाते पर रुपये की पूर्ण तब्दीली और 1994-95 में चालू खाते पर रुपये की पूर्ण तब्दीली में रुपये की ताकत बढ़ाने में काफी योगदान किया।

वर्तमान समय में रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया (RBI) विनिमय दर का प्रबंधन करता है। आवश्यकता पड़ने पर RBI विदेशी विनिमय बाजार में भी हस्तक्षेप करता है। और विदेश में रुपये पर होने वाले पर प्रभाव (हमला) डालने के लिए मौद्रिक तथा दूसरे उपाय लागू करता है और विदेशी विनिमय बाजार शर्तों का ठीक तरह पालन करने के लिए आश्वासन देता है।

भुगतान संतुलन की चालू लेखा स्थिति निर्यात व द्धि से प्रभावित रहती है जो जरुरत से भी कम है। भुगतान संतुलन स्थिति की प्राप्ति के लिए निर्यात 14 प्रतिशत मूल्य में बढ़ाने होंगे। यद्यपि तीव्र निर्यात व द्धि के लिए वास्तविक विनिमय दर जरुरी है क्योंकि व्यापार की प्रतियोगिता इस पर निर्भर करती है। इसलिए निजी क्षेत्र को भी निर्यात बढ़ाने के लिए छूट तथा प्रलोभन दिए जाते हैं।

## ढाँचात्मक सुधार
## (Structural Reforms)

जुलाई 1991 से अर्थव्यवस्था के पूर्ति पक्ष को बढ़ाने के लिए ढाँचात्मक सुधार किए जा चुके हैं। इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण हैं:

### व्यापार व पूँजी प्रवाह
### (Trade and Capital Flow)

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में 1991 के संकट में आर्थिक सुधार का अहम् बिन्दु व्यापार व पूँजी प्रवाह रह चुका है। प्रायः यह भी माना गया कि देश ने कुछ दशकों के ग्लोबल विकास अभ्यास से पाठ सीखा है। कम विकसित देशों के तेजी से बढ़ते हुए अभ्यास बताते हैं अथवा सलाह देते हैं कुछ भार (duty) तथा गैर-भार (duty) कम करने की नीति बनाई जाए जो निर्यात उत्पादक तथा घरेलू उत्पादक को छूट (लाभ) दे तो यह न केवल देश को निर्यात उत्पादन व द्धि के लिए प्रेरित करेगी बल्कि स्थिर तेज आर्थिक विकास भी होगा। इस अवस्था में आयात प्रतिस्थापन पद्धति काम नहीं करती। ऐसी अवस्था में देश न केवल साधनों का सही प्रयोग हो पाएगा बल्कि यह भुगतान संतुलन स्थिर करने में भी फेल होगी। इसलिए, व्यापार सुधार में खुलापन आवश्यक है।

जुलाई 1991 से सरकार ने व्यापार क्षेत्र में सुधार की कड़ियाँ शुरू की विदेश के साथ देश को भी अथवा भारतीय अर्थव्यवस्था को मजबूत तथा अच्छा बनाने में सहायता करेगी। इन सुधारों में एक सुधार 1991 में रुपये का अवमूल्यन किया गया और पहली बार व्यापार लेखे पर रुपये में तब्दीली की गई और फिर यह रुपये की तब्दीली (रुपये के प्रयोग में बदलाव) पूरे चालू लेखा लेन-देन में भी की गई।

1975 में भारत ने स्थिर विनिमय दर पद्धति को खत्म कर दिया और तब से प्रबंध विनिमय

दर प्रवाह लागू है। यद्यपि बाद में यह पद्धति द्वि-विनिमय दर पद्धति द्वारा बदली गई। इस पद्धति के तहत रुपये की आंशिक परिवर्तन (तब्दीली) की उपारंभ की। 1993-94 बजट में व्यापार लेखा पर रुपये का पूरा परिवर्तन किया गया और फिर द्वि-विनिमय दर पद्धति यूनिफेट विनिमय पर पद्धति द्वारा बदली गई। उसके बाद व्यापार लेखा तथा चालू लेखा पर पूर्ण रुपया तब्दीली से रुपये में अच्छी ताकत अथवा शक्तिशाली हुआ।

सरकार ने बाहरी क्षेत्र सुधार की एवज में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के रूप में पूँजी प्रवाह का उदारीकरण किया। इसके एवज में 48 उद्योगों में विदेशी इक्यूविटी बढ़ाकर 51 प्रतिशत की गई जो 1996 में 35 प्रतिशत थी। सेवा क्षेत्र में भी यह विदेशी इक्यूविटी 51 प्रतिशत की गई। फॉरेन एक्सचेंज एंड रेगुलेशन एक्ट (FERA) को फोरन एक्सचेंज मैनेजमेंट एक्ट (FEMA) के द्वारा बदला गया। विदेशी कम्पनियों को अपने व्यापार चिह्न प्रयोग करने पर रोक थी।

## औद्योगिक नियम खत्म
## (Industrial Deregulation)

ऐतिहासिक तौर पर भारत की घरेलू आर्थिक क्रियाओं पर शारीरिक नियंत्रण है। औद्योगिक क्षेत्र में इस तरह के नियंत्रण कई प्रकार के हैं। औद्योगिक लाइसेंस जो प्रवेश व प्रसार का नियंत्रण, अधिकतर उद्योगों के सार्वजनिक व लघु क्षेत्रों के लिए आरक्षित और औद्योगिक उत्पादनों पर कीमत व वितरण नियंत्रण आदि लाइसेंस पद्धति के अन्तर्गत विभिन्न औद्योगिक इकाइयों को क्लीयर करने में काफी समय लगता है। इस प्रकार औद्योगिक इकाइयाँ अपना प्रोजेक्ट समय पर पूरा नहीं कर पाती प्रो० झा ने एकाधिकार और प्रतिबंधक व्यापार व्यवहार अधिनियम (MRTP Act) की भी आलोचना की है। उनका मानना है कि बड़ी औद्योगिक इकाइयों पर एकाधिकार और प्रतिबंधक व्यापार व्यवहार अधिनियम (MRTP) के वहत प्रतिबंध लगाने से उनकी निवेश प्रक्रिया प्रभावित होती है। क्योंकि छोटे उद्योगों पर साधनों की कमी से विस्तार की क्षमता मुश्किल हो जाती है।

इन सब बातों को देखते हुए अब एकाधिकार और प्रतिबंधक व्यापार व्यवहार अधिनियम (MRTP) खत्म कर दिया है। इससे औद्योगिक इकाइयों को बढ़ने की अनुमति मिलेगी तथा वे अपने आर्थिक पैमाने का फायदा उठा पाएँगी। इंडस्ट्रीयल लोकेशन पॉलिसी का भी उदारीकरण किया गया। मैन्यूफैक्चरिंग प्रोग्राम के तहत जहाँ घरेलू उत्पादकों को एक निश्चित समय में अपने उत्पाद के घरेलू आगत बढ़ाने की आवश्यकता थी, नई औद्योगिक नीति के तहत खत्म किए जा चुके हैं। यद्यपि ढाँचात्मक सुधार की सबसे बड़ी सीमा यह है कि इसकी एक्जिट पॉलिसी काफी प्रतिबंधित व समय लेनेवाली है। यही एक कारण है औद्योगिक बीमारी बढ़ने का।

इसलिए 1991 की औद्योगिक नीति औद्योगिक अर्थव्यवस्था के डीरेगुलेशन (विसंगठित से है और निजी क्षेत्र के लिए भी अधिक मात्रा में उद्योग खोलना है। इन छः उत्पादों के लिए औद्योगिक लाइसेंस द्वारा दी गई है वे हैं—एल्कोहल, सिगरेट, इंडस्ट्रीयल एक्सप्लोसिव, ड्रग व फारमास्यूटिकल, इलैक्ट्रॉनिक एरोस्केप आदि।

## सार्वजनिक क्षेत्र सुधार और विनिवेश
## (Public Sector Reforms and Disinvestment)

वास्तव में सार्वजनिक क्षेत्र स्वयं निर्धारित आर्थिक व द्धि का इंजन है। इसे अर्थव्यवस्था में ऊँचे स्तर तथा और नई तकनीकी पाने के बारे में भी जाना जाता है। इस भूमिका को पूरा करने

के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आधिक्य निवेश की आवश्यकता है। इसमें कोई शक नहीं है कि सार्वजनिक क्षेत्र औद्योगिक क्षेत्र के विस्तार का आधार है। यद्यपि आगे विस्तार के लिए यह उपयुक्त साधन जुटाने में असफल रहा है तथा इसे अब आर्थिक विकास में रुकावट माना जाने लगा है। इसलिए सरकार ने उन सार्वजनिक क्षेत्रों में निजी निवेश को बढ़ाने की अनुमति दी है जहाँ सामाजिक क्षेत्र प्रभावित नहीं और चयनित क्षेत्रों में आशिक विनिवेश किया है। सरकार ने निजी निवेश को सार्वजनिक क्षेत्र में बढ़ाने के लिए कई कदम उठाए हैं जो पहले सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा नियंत्रित था सरकार द्वारा राज्य द्वारा नियंत्रित इकाइयों का कुछ भाग निजी क्षेत्र को हस्तान्तरित करना भी विनिवेश है।

दिसम्बर 1999 तक चयनित सार्वजनिक क्षेत्रों की 18,288 करोड़ की इक्विटी सार्वजनिक क्षेत्र वित्तीय संस्थानों, तथा जनता को विनिवेश की गई है। विनिवेश कमीशन की स्थापना 1996 में चयनित सार्वजनिक क्षेत्रों का विनिवेश करने के लिए की गई थी। 1998 तक विनिवेश कमीशन ने 12 सार्वजनिक इकाइयों का विनिवेश किया। आनेवाले वर्षों में राज्य द्वारा अधिकृत इकाइयों की 49 प्रतिशत इक्विटी विनिवेश करने की आशा है। आंशिक मात्रा बेचने के बाद भी सरकार इन इकाइयों का नियंत्रण अपने हाथ में रखना चाहती है। यह बताता है कि सार्वजनिक क्षेत्रों का विनिवेश सार्वजनिक इकाइयों का सुधार नहीं बल्कि वित्त घाटा का नियंत्रण करना है।

अब इन परिणामों से यह विश्वास किया जा सकता है कि विनिवेश सरकार का जल्दी में किया गया फैसला था। सी० रंगराजन के अन्तर्गत बनाई गई कमीशन सार्वजनिक क्षेत्र इकाइयों का विनिवेश ने सलाह दी है कि सार्वजनिक क्षेत्रों का निवेश का सबसे अच्छा तरीका जनता को निश्चित कीमत पर शेयर की ऑफर दी जाए। लेकिन इस समय इनकी कीमत निश्चित करना मुश्किल है क्योंकि वर्तमान में बोली लगानेवाला तरीका अपनाना चाहिए। इसे अपनाया जा सकता है।

## वित्तीय क्षेत्र सुधार
## (Financial Sector Reforms)

अर्थव्यवस्था में सुधार के लिए सही तथा प्रतियोगी वित्तीय तरीका आवश्यक है। कुछ वर्षों से भारतीय बैंक तथा वित्तीय पद्धति को प्रभावी बनाने की कवायद की है ताकि इसका विस्तार हर जगह किया जाए। इस लाभ के बावजूद भी बैंकिंग प्रणाली में गिरावट आई है। आठवीं पंचवर्षीय योजना का ड्राफ्ट दर्शाता है कि वित्तीय क्षेत्रों की परफॉरमेंस की बैलेंस सीट मिश्रित परिणाम दिखाती है।—सामाजिक-आर्थिक तथा साख प्रसार के लक्ष्य प्राप्त करने में प्रभावशाली लेकिन विश्वास करने में कमजोर रही है।

इसलिए सरकार ने एम० नरसिंहम की अध्यक्षता में वित्तीय पद्धति पर कमीशन स्थापित किया। इस कमीशन ने विभिन्न सुझाव दिए।

1. वित्तीय पद्धति को कार्यप्रणाली, लाभ आदि के साथ प्रभावी व सुचारू बनाने की सलाह दी।
2. वित्तीय क्षेत्रों को ज्यादा प्रतियोगी बनाने के लिए बैंको तथा वित्तीय संस्थानों को अर्थव्यवस्था की साख आवश्यकता की तरफ प्रभावी तौर पर ध्यान देना चाहिए।
3. वित्तीय क्षेत्र में वाणिज्य बैंक और उधार देनेवाले संस्थानों की तरफ ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता।

वित्तीय पद्धति पर नरसिंहम कमेटी (दिसम्बर 1991 में) द्वारा दी गई रिपोर्ट अब देश में वित्तीय

क्षेत्र सुधार का आधार है। इस रिपोर्ट में निम्नलिखित परिवर्तन किया गया है।

1. वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) 25 प्रतिशत तक नीचे लाया गया तथा न्यूनतम नकदी अनुपात (CRR) जो स्फीति नियंत्रित करता है 10.5 प्रतिशत तक लाया गया।

2. केन्द्रीय सरकार 1996-97 तक सार्वजनिक क्षेत्रों बैंको का 17,346 करोड़ रुपये की सहायता देने का बजट में प्रावधान किया। यद्यपि यह सभी बैंको के लिए पूर्ण नहीं था इसलिए बैंको को जनता से इक्यूविटी व ऋण बढ़ाना था। मार्च 1997 तक केवल दो सार्वजनिक क्षेत्र बैंक ही निर्धारित 8 प्रतिशत का रिस्क वेट रेश्यो पूरा नहीं कर पाए।

3. वाणिज्य बैंको के पास यदि पूँजी पूरी है तथा सही रूप से काम कर रहे हैं तो उन्हें अपनी शाखाएँ बढ़ाने की अनुमति दी गई।

4. RBI ने निजि क्षेत्र में बैंको की स्थापना के लिए दिशा निर्देश निर्धारित किए तथा इस तरफ 10 निजि बैंक पहले ही काम शुरू कर चुके हैं तथा तीन को और अनुमति दी जा चुकी है।

5. बैंक ऋण पर ब्याज स्तर दर कम करके जो 1989-90 में लगभग 20 था 1994-95 में 2 किया गया।

6. बैकों और वित्तीय संस्थाओं की ऋण उगाही काफी असतुष्ट थी इसलिए 1993 में एक्ट पास करके इसके अन्तर्गत स्पेशल रिकवरी ट्रिब्यूनल स्थापित किया ताकि ऋण की उगाही जल्दी हो।

7. बैंको को अपने वित्त निर्धारण की छूट दी गई तथा ये और भी लचीले बनाए गए। अब बैंक उधार देनेवाले की जरूरतों को देखते हुए अपनी क्रियान्वित पूँजी निर्धारित करने के लिए स्वतन्त्र है।

8. इसके साथ कमजोर बैंको को ताकतवर बैंको के साथ मिलाया जाए ताकि इसकी उपयोगिता बढ़े।

लेकिन इन सबके बावजूद भी 1991 के आर्थिक सुधार अपना उद्देश्य आंशिक रूप से पूरा कर पाए।

## आर्थिक सुधारों का मूल्यांकन
## (Evaluation of Economic Reforms)

1991 के आर्थिक सुधार के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था की स्थिरता तथा ढाँचात्मक सुधार में आंशिक परिवर्तन हुआ। स्फीति दर 2.5 प्रतिशत थी जो भविष्य में बढ़ने की संभावना है। वित्त असमानता ठीक नहीं हो पाई तथा केवल केन्द्र सरकार का सकल वित्त घाटा 1998-99 में GDP का 5 प्रतिशत था। यदि केन्द्र तथा राज्य दोनों को लिया जाए तो यह 1998-99 में लगभग GDP का 9.3 प्रतिशत था केवल इस समय एक ही फायदा हुआ विदेशी विनिमय भंडार (सोने को छोड़कर) दिसम्बर 1999 में $29.4 विलियन थे जो अब $204 विलियन है।

ढाँचात्मक सुधार के कुछ परिणाम आए हैं 1991-92 में लगभग मंदी (स्थिरता) थी। यद्यपि 1992-93 से लगातार GDP 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ा। 1993-94 से औद्योगिक क्षेत्र में भी रिकवरी शुरू हुई और 1993-94 से लगातार 5 वर्ष तक औद्योगिक उत्पादन 7.4 प्रतिशत की दर

से बढ़ा। यद्यपि 1990-91 से तीन वर्षों के लिए बचत तथा निवेश में गिरावट हुई। इसलिए इन फायदों का नकारते हुए इन आर्थिक सुधारों की काफी आलोचना की।

### विस्त त विकसित पद्धति की अनुपस्थिति
### (Absence of a Broder Development Strategy)

आर्थिक स्थापना तथा ढाँचात्मक सुधार दोनों का मकसद औद्योगिक क्षेत्र में प्रतियोगिता लाना था तथा उद्योगकर्ता के फैसले बाजारी ताकतों को देखकर ही निर्धारित होंगे। सरकार की नई औद्योगिक नीति में ये कमी थी। दक्षिण-पश्चिमी एशियन देश जिन्होंने 1960, 1970 और 1970 के दशक में औद्योगिक क्षेत्र में रिकार्ड तोड़ व द्धि की है उन्होंने राज्य हस्तक्षेप को कम अनुमति दी। उन्होंने वर्ल्ड बैंक व IMF की प्रतिबंध के बावजूद भी भारी औद्योगिकीकरण को महत्त्व दिया। लेकिन भारत में राज्य हस्तक्षेप की सीमा भी अधिक है जो औद्योगिक क्षेत्र में अथवा औद्योगिक क्षेत्र में सकारात्मक भूमिका अदा नहीं करती।

### सुधारों में जल्दबाजी
### (Hasty Pace of Reforms)

आर्थिक सुधारों में गति देश के अथवा भारतीय अर्थव्यवस्था के ग्लोबलाइजेशन के साथ आई। इससे औद्योगिक ढाँचे की गुणवत्ता में तेजी से गिरावट हुई। इसलिए सिर्फ निर्यात बढ़ाने पर जोर दिया गया तथा औद्योगिक क्षेत्र पर ध्यान नहीं रखा गया जो आर्थिक सुधार को विपरीत है।

### पहले से चले सुधारों की अनदेखी
### (Prerequisites of Reforms Ignored)

नीतियों अथवा ढाँचात्मक सुधारों के परिणाम तभी सही रूप से देखने को मिलते हैं अथवा कम प्रभावित करते है यदि देश में लोगों का कुछ निम्न स्तर पर पहले ही मानव विकास हो चुका है। साऊथ कोरिया, मलेशिया तथा थाइलैंड इस बात का उदाहरण है इन देशों में न केवल सामाजिक-आर्थिक ढाँचा कृषित्मक है बल्कि मानव विकास संबंधी तत्त्व जैसे जीवन आशा तथा साक्षरता दर ज्यादा है (ऊँची है) यद्यपि सुधार कार्यक्रम शुरू करने से पहले वहाँ शिशु म त्यु दर भी कम थी। इसके विपरीत भारत में मानव विकास व आर्थिक सामाजिक ढाँचा इस तरह का नहीं है।

### मानव विकास लक्ष्य इस पद्धति का हिस्सा नहीं
### (Human Development Goals were not Part of this Strategy)

भारत में यह पद्धति गरीबी, निम्न मानव विकास के बावजूद भी लागू की गई इसकी वजह से समाज के अहम मुद्दे शिक्षा व स्वास्थ्य पर खर्च के स्तर में भी कमी आई थी जो कि समाज अथवा भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। क्योंकि भारत जैसे देश में ढाँचात्मक सुधार मानव विकास को ध्यान में रखते हुए लागू करने चाहिए। दुर्भाग्यवश भारत में इस तरह की कोशिश नहीं की गई।

इस प्रकार आर्थिक सुधारों का फायदा अर्थव्यवस्था को तभी पहुँचना संभव है जब ये देश के हर वर्ग को देखकर लागू किए जाए। अन्यथा भारतीय जनसंख्या जो 70 प्रतिशत गाँव में रहती है यदि उनको इन सुधारों का फायदा न मिले तथा ये देश की जनता के साथ अन्याय है तथा मुट्ठी भर लोग ही इसका आनन्द ले पाएँगे।

# अध्याय-21
# भारतीय मुद्रा बजार
# (Indian Money Market)

भारतीय मुद्रा बाजार एक यूनिट नहीं है बल्कि यह दो भागों में बँटा हुआ है—संगठित तथा असंगठित। दोनों के बीच काफी अंतर है असंगठित मुद्रा बाजारों की अपेक्षा संगठित क्षेत्र ज्यादा सही है। दोनों राष्ट्रीय और निजी क्षेत्र वाणिज्य बैंक संगठित क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। दूसरे क्षेत्र जैसे विदेशी बैंक, सहकारी बैंक और RBI, भारत के घर वित्त प्रदान करनेवाले, विकास वित्त संस्थाएँ जैसे IDBI, ICICI, IFCI और निवेश वित्त कंपनी—LIC, GIC, UTI, ये भी मुद्रा बाजार के संगठित क्षेत्र में आते हैं।

इसका अभिप्राय मुद्रा बाजार इस तरह की पद्धति तैयार करते हैं जहाँ एक तरफ उधार लेनेवाला लघु-दर ऋण प्राप्त करता है तथा दूसरी तरफ उधार लेनेवाले अपनी साख के लिए अथवा मुद्रा के लिए उधार लेने को ढूँढ़ते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण साखा वाणिज्य बैंक हैं। 1935 तक इस देश में केन्द्रीय बैंक नहीं था। भारतीय मुद्रा बाजार में RBI ही एक संगठन है। यह उधारक तथा मुद्रा बाजार को नियंत्रण करता हैं, तथा ठीक कार्यप्रणाली के लिए उत्तरदायी है। अप्रैल 1998 में RBI ने डिस्काउंट एंड फाईनेंन्स हाउस ऑफ इंडिया (DFHI) स्थापित किया जो भारतीय मुद्रा बाजार कार्यों में अथवा कार्यप्रणाली को स्थापित कर सके।

## भारतीय असंगठित मुद्रा बाजार
## (Indian Unorganised Money Market)

कुछ देशी बैंक (Indigenous Bank) तथा मुद्रा बाजार बड़े शहरों में स्थित इनकी बैंक क्रियाएँ कस्बों तथा छोटे गाँवों में भी है जहाँ आधुनिक बैंकिंग सुविधा नहीं है। किसान, काश्तकार और दूसरे छोटे पैमाने के उत्पादक यहाँ से ऋण सुविधा प्रदान करते हैं।

भारत में कई प्रकार के गैर-संगठित बैंक है। इसमें सबसे अधिक ऋण या वित्त कंपनी, चिट्ट फंड और निजिस। वित्त कंपनी देश के हर कोने में पाई जाती हैं। ये कंपनी ब्याज की उच्च दर जो 36 से 48 प्रतिशत के बीच है। इनसे वही ऋण लेते हैं जिनको वाणिज्य बैंको से ऋण नहीं मिलता है।

चिट्ट फंड कंपनी बचत संस्थान है। RBI का इस पर कोई नियंत्रण नहीं है। निधि आमतौर पर दक्षिण भारत में है। ये आमतौर पर म्यूचुअल फंड के लिए हैं। आमतौर पर मध्यम वर्ग के लोग इसकी सेवाएँ लेते हैं।

देशी बैंक (Indigenous Bank) निजी फर्म हैं जो जमा स्वीकृत करती है व ऋण देती है और एक बैंक के रूप में कार्य करती हैं। इंडिजिनियस बैंक असंगठित क्षेत्र से संबंध रखते हैं। आधुनिक बैकिंग प्रणाली स्थापित होने पर इन्हें काफी धक्का लगा। ये आमतौर पर देश के पश्चिमी व दक्षिणी हिस्से में हैं जो परम्परागत व्यापार प्रणाली में संलग्न हैं। ये बैकिंग के साथ गैर-बैकिंग कार्य प्रणाली में भी संलिप्त रहते हैं।

मुद्रा उधारक भी इसी प्रकार से कार्य करते हैं। यह भी गाँव स्तर पर ही चालू रहते हैं तथा ब्याज की ऊँची दर व कई बुराइयों में संलिप्त हैं। इस प्रकार असंगठित क्षेत्र में छोटे-उधार लेने वालों का शोषण रहता है। क्योंकि ये कानून के दायरे से भी बाहर हैं। इनके ऊपर इस तरह का कोई नियंत्रण नहीं हैं।

# संगठित मुद्रा बाजार
## (Organised Money Market)

भारतीय मुद्रा बाजार का आधुनिक क्षेत्र अच्छी तरह संगठित है। कुछ उच्च विकसित वित्तीय क्षेत्रों को छोड़कर भारतीय मुद्रा बाजार का संगठित क्षेत्र अधिक देशों के मुद्रा बाजार को छोड़कर विकसित है। संगठित क्षेत्र में RBI, SBI, वाणिज्य बैंक, विदेशी बैंक, सहकारी बैंक, वित्त कारपोरेशन, म्यूचुअल फंड और DFHI हैं।

भारतीय मुद्रा बाजार के संगठित क्षेत्र मुम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, चेन्नई, अहमदाबाद व बंगलौर शमिल हैं। यद्यपि ये संगठित क्षेत्र में स्थित बैंक अच्छी तरह विकसित हो चुके हैं लेकिन फिर भी इनकी न्यूयार्क, या लंदन मुद्रा बाजार से तुलना नहीं कर सकते। आमतौर पर भारतीय मुद्रा बाजार में निम्न शामिल हैं (i) ट्रेजरी बिल बाजार (ii) कॉल मुद्रा बाजार (iii) वाणिज्य बिल बाजार (iv) जमा बाजार का सर्टीफिकेट (v) मुद्रा बाजार म्यूचुअल फंड।

### कॉल मुद्रा बाजार
### (Call Money Market)

स्थित कॉल मुद्रा बाजार अधिकतर सभी विकसित मुद्रा बाजारों में है। यह वित्त पद्धति का सबसे विकसित माध्यम है। भारत में काल मुद्रा बाजार के केन्द्र मुम्बई, कलकत्ता व चेन्नई में हैं, यू०, टी०, आई०, LIC, GIC, IDBI, नाबार्ड और DFHI इन कॉल मुद्रा बाजार में उधार देने का व्यापार कर सकते हैं। इसको आंतरिक बैंक कॉल मुद्रा बाजार भी कहते हैं। जिसमें DFHI वाणिज्य बैंक साथ काम करते हैं। इनके अंतर्गत दलालों की अहम् भूमिका है क्योंकि वे बैंक व वित्तीय संस्थाओं से जुड़े रहते हैं। इनकी ब्याज दर अधिकतर इनकी तरलता से निर्धारित होती है। DFHI को 1988 में स्थापित किया गया। यह दोनों जगह उधार देनेवाला तथा जमा पूँजी लेने वाला काम कर सकता है। भारतीय बैंक एसोसियशन द्वारा निर्धारित बैंक दर से इसे मुक्त कर दिया गया। इसके योगदान से कॉल मुद्रा बाजार में वार्षिक लेन-देन में व द्धि हुई।

मई 1990 में, RBI ने नाबार्ड, G.I.C, IDBI बैकों का उधार देने के लिए शामिल होने पर सहमति दी। मई 1989 में, काल मुद्रा दर पर सीमितता हटा दी गई। अक्टूबर 1993 में शामिल हुए विकसित बैंक और वित्तीय संस्थाओं को व्यक्तिगत तौर पर 1000 करोड़ रुपये उधार लेने की सीमा निर्धारित की। यद्यपि कॉल मुद्रा बाजारों की तरलता व ब्याज दर समय-समय पर बदलती रहती है। 1999-2000 वित्तिय वर्ष में यह गिरावट 25-35 प्रतिशत की छू गई थी मध्य नवम्बर 1999 से कॉल मुद्रा दर लगभग 8 प्रतिशत के नजदीक रही है।

### खजाना बिल बाजार
### (Treasury Bill Market)

जो बाजार खजाना बिल का लेन-देन करता है उसे खजाना बिल बाजार कहते हैं। भारत में यह काफी अविकसित है। ट्रेजरी (खजाना) बिल लघु समय के लिए केन्द्र सरकार का दायित्त्व है। आमतौर पर खजाना बिल अनियमित घाटा पूरा करने के लिए वहाँ प्रयोग किये जाते हैं जहाँ सरकार की आय खर्च से ज्यादा हो। भारत में अब तक यह सरकार की नियमित आय है क्योंकि

निकालने की अपेक्षा इसमें जमा व द्धि लगातार बढ़ती रहती है। RBI (रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया की बजाय किसी के पास इनकी मात्रा ज्यादा नहीं है।) वास्तव में इनका धारक RBI ही है जो सरकार के देने पर खरीदता या बैंको द्वारा या दूसरों द्वारा प्रदान किए गए खजाना बिलों पर दोबारा कटौती भी करता है। इसकी वजह से सार्वजनिक घाटा का मौद्रिकरण होने पर कीमत स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वर्तमान में RBI, ही इन बिलों का सबसे बड़ा धारक है। दूसरे गैर वित्तीय संस्थान जो इसे नहीं रख सकते हैं—LIC, UTI, कारपोरेट फर्म व गैर कारपोरेट फर्म। वाणिज्य बैंक, राज्य सरकार इनको ज्यादा मात्रा में नहीं रख सकती। अप्रैल 1997 से इसमें काफी परिवर्तन किया गया है। अब इन्हें (एडहोक और नॉन-टोप खजाना बिल) केन्द्र सरकार के अनियमित घाटे को पूरा करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

वर्तमान में निम्नलिखत प्रकार के बिल खजाने हैं।

### 14 दिन के मध्यस्थ बिल खजाना
### (14 day Intermediate Treasury Bills)

टैप-खजाना बिल के खत्म होने पर, केन्द्र सरकार ने राज्य सरकार विदेशी केन्द्रीय सरकार को अपनी बचत का निवेश करने के लिए यह योजना लागू की। इसके अंतर्गत RBI के साथ संबंध रखनेवाले राज्यों, केन्द्रीय बैंको को ही ये बिल बेचे जा सकेंगे। 14 दिन खत्म होने पर इनको ही ये बिल बेचे जा सकेंगे। 14 दिन खत्म होने पर इनको दोबारा रिन्यू किया जाता है। ये बिल गैर-हस्तान्तरण आधार पर न्यूनतम रकम 1,00,000 के बेचे जा सकेंगे।

### 14 दिन आबंटित खजाना बिल
### (14 day Auction Treasury Bill)

RBI ने 1997 से साप्ताहिक आधार पर 14 दिन के लिए आबंटित खजाना बिल योजना शुरू की। इसके दोहरे उद्देश्य थे—अर्थव्यवस्था के लिए विभिन्न कार्यों के लिए नकद प्रबंध करना तथा ऋण संबंधी तत्त्वों की कीमतों में होनेवाले परिवर्तन की जानकारी रखना।

### 182 दिन और 364 दिन खजाना बिल
### (182 day and 364 day Treasury Bills)

182 दिन वाला बिल 26 मई 1999 तथा 364 दिन वाला खजाना बिल अप्रैल 1992 में शुरू किया। ये दोनों ही बिल आबंटित किए जाएँगे (15 दिन के लिए)। 1999-2000 में 364 दिन खजाना बिल में स्थिरता थी।

### वाणिज्य बिल बाजार
### (The Commercial Bill Market)

यह वह बाजार बिल है जहाँ व्यापार बिल या वाणिज्य बिलों का व्यापार किया जाता है। यह वह बिल है जो एक व्यापारी फर्म द्वारा दूसरी पर निकाला जाता है। अधिकतर ये बिल घरेलू लेन-देन से पैदा होते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य खरीददारों द्वारा भुगतान देरी की वजह से बिक्रीकर्ता को होनेवाली परेशानी को खत्म करने के लिए धन प्रबंध करना है। क्योंकि खरीददार बहुत बार भुगतान करने में अनिच्छा जाहिर करते हैं। वाणिज्य बिल साख का एक तत्त्व है जो व्यापारी फर्म व बैंक के लिए लाभकारी है। इन बिलों को निकालनेवाले आमतौर पर दोबारा बेचने पर या इनके समय अवधि पूरा होने पर बेचने पर इनकी लागत वसूल कर लेते हैं। केन्द्रीय बैंक के लिए भी इन बिलों के लिए वित्त प्रबंध में कोई परेशानी नहीं होती। इसलिए RBI ने भी इनको विकसित करने के लिए काफी प्रयत्न किए हैं। जनवरी 1952 में लागू की गई पुरानी बिल बाजार में काफी कमियाँ थी इसलिए नवम्बर 1970 में RBI ने नई बिल बाजार योजना शुरू की। इसके

अन्तर्गत केवल सही बिलों का ही व्यापार होगा तथा यह दोबारा छूट का भी प्रावधान रखेगी। यद्यपि यह योजना जो देश में बिल बाजार को विकसित करने के लिए बनाई थी सफल नहीं हो पाई। इसकी सबसे बड़ी समस्या नकद प्रबंध या साख भुगतान के लिए नकद प्रबंध है क्योंकि इसकी नकद प्रबंध की जिम्मेदारी बैंको पर रहती है। इसकी सबसे बड़ी सफलता उधार लेने वालों द्वारा वित्तीय भुगतान करने से हैं अथवा समय पर भुगतान करने पर है। इसलिए जुलाई 1992 में RBI ने इस तरह का प्रावधान न रखनेवाले बैंको को इन बिलों के लिए वित्त देने पर रोक लगा दी थी। यद्यपि बिल पद्धति को बढ़ावा देने के लिए अक्टूबर 1997 में RBI ने बैकों को निर्देश दिए कि साख खरीद का 25 प्रतिशत बिल माध्यम से होना चाहिए।

## जमा बाजार का प्रमाण पत्र
## (The Certificate of Deposit (CD) Market)

निश्चित समय के लिए बैंको के पास फंड जमा रहने पर यह प्रमाण पत्र बैंक द्वारा प्रदान किया जाता। CDs परम्परागत प्रणाली की तरह है लेकिन लघु-स्तर मुद्रा बाजार में इनका सौदा किया जा सकता है। यद्यपि यह महसूस किया गया है कि ये पूरी तरह से विकसित नहीं हो पाई। RBI ने इस पद्धति को साख का विस्तार करने के लिए शुरू किया था। ये CDs केवल सेडयूल्ड कॉमर्शियल बैंकों द्वारा केवल 25 लाख तक प्रदान की जाएगी। इनकी समय सीमा पूरा होने की तीन महीने के बीच होगी। 1993 में छः वित्तीय संस्थान—इंडस्ट्रीयल डेवलपमेंट बैंक ऑफ इंडिया, इंडस्ट्रील क्रेडिट एंड इंवेस्टमेंट कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया, इंडस्ट्रीयल फाइनेंस कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया, स्माल इंडस्ट्रीज डेवलपमेंट बैंक ऑफ इंडिया और एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट बैंक ऑफ इंडिया को 1 साल से तीन साल के लिए CDs प्रदान करने की अनुमति दी गई। बैंक इन CDs पर ऊँची ब्याज दर प्रदान करते हैं इसलिए जमा करवाने वाले इनको बैंको में ही जमा रखना चाहते हैं। यद्यपि 1995-96 से इनकी (CDs) की ब्याज दर में काफी सुधार आया और जुलाई 1996 में CDs पर औसत ब्याज दर में भारी गिरावट हुई।

## वाणिज्य पेपर बाजार
## (The Commercial Paper Market (CP))

यह कारपोटेट द्वारा फंड बढ़ाने का लघु माध्यम है। वाधल कमेटी की सिफारिशों के बाद जनवरी 1990 में भारतीय मुद्रा बाजार में CP को शुरू किया गया। CP की सूची में शामिल कंपनी जिसकी क्रियाशील पूँजी 5 करोड़ से कम न हो, को ही CP को जारी कर सकती है। CP का पूरा होने का समय 3 महीने से 6 महीने है तथा ब्याज दर 9.35 से 20.9 प्रतिशत प्रतिवर्ष है। इसका मुख्य उद्देश्य कारपोरेट क्षेत्र को सस्ता लागत पर लघु दर वित्त प्रदान करना था ताकि इससे उनकी स्थिति में सुधार हो सके।

## मुद्रा बाजार म्यूचुअल फंड
## (Money Market Mutual Funds (MMMFS))

MMMFS की योजना RBI द्वारा 1992 में शुरू की गई। इसका उद्देश्य व्यक्तिगत निवेशक को लघु-स्तर के लिए धन प्रदान करना था। इसकी शुरूआत ज्यादा आकार्षक नहीं थी इसलिए इसको ज्यादा महत्त्व नहीं मिला। इस योजना को और आकर्षक बनाने के लिए RBI ने नवम्बर 1995 में कुछ छूट थी। MMMFs पर जो 50 करोड़ रुपये की सीमा निर्धारित थी वह हटा ली गई बाद में जो समय सीमा 45 दिन थी उसे घटाकर 15 दिन कर दिया गया। इस प्रकार RBI ने इसमें छूट देकर इसे और प्रभावशाली बनाने की कोशिश की।

# भारतीय मुद्रा बाजार की विशेषताएँ
## (Characteristics of Indian Money Market)

भारतीय मुद्रा बाजार की यदि विकसित देशों के मुद्रा बाजार से तुलना की जाए तो इसमें काफी कमियाँ है जो इस प्रकार हैं।

### समन्वय की कमी
**(Lack of Co-ordination)**

जैसा हम पहले ही बता चुके हैं भारतीय मुदा बाजार दो भागों में बंटा हुआ है—संगठित तथा असंगठित क्षेत्र। यदि इनकी कार्यप्रणाली देखें तो दोनों बिल्कुल विपरीत है। इन दोनों में सहमति की बजाय प्रतिस्पर्धा है। इनमें से कुछ का RBI के साथ भी कोई संबंध नहीं है। यद्यपि इतने दशकों (लगभग छः दशक) से RBI की मौद्रिक नीति के बाद भी इसकी ब्याज दर नीति प्रभावी नहीं है। इसलिए हम कह सकते हैं कि मुद्रा बाजार में पूर्णरूप से समन्वय नही हैं।

### ब्याज दर ढाँचा बराबर नहीं
**(Unequal interest rate structure)**

इसके अन्तर्गत आनेवाले विभिन्न वित्तीय संस्थानों की ब्याज दर भी बराबर नहीं है। इसका अभिप्राय है कि विभिन्न वित्तीय संस्थानों में समन्वय की कमी है। इसकी ब्याज दर का बराबर न होने का मुख्य कारण है। ब्याज दर में बहुत अधिक छूट, वाणिज्य बैकों की उधार तथा जमा ब्याज दर में अपर्याप्तता तथा सरकारी प्रतिभूतियों पर कम दर प्राप्ति आदि हैं। इनकी वजह से RBI कीमत नियंत्रण के लिए केस रिजर्व रेश्यो (CRR) पर ही निर्भर करती है। भारत में सहकारी बैंक, वाणिज्य बैंक तथा स्टेट बैंक ऑफ इंडिया (SBI) के केवल ब्याज दर ही विभिन्न नहीं है बल्कि इनके बिल वित्त दर भी हुंडी पर से विभिन्न है।

### मुद्रा बाजार में अपर्याप्त फंड
**(Insufficient funds in the Money Market)**

मुद्रा बाजार अपर्याप्त फंड की समस्या से ग्रसित है। बाजार में पूर्ति की अपेक्षा ऋण की माँग ज्यादा है। क्योंकि प्रति व्यक्ति आय कम की वजह से बचत की मात्रा कम है। दूसरा गरीबी की वजह से अधिकतर संख्या में जनसंख्या के पास बचत करने की क्षमता कम है। इसके साथ-साथ लोगों में बैंक आदतों की भी कमी है। इस प्रकार यदि बचत कम होगी तो निवेश की मात्रा अपने आप ही कम होगी। अधिकतर देश के हिस्सों में बैंक सुविधाओं की भी कमी है इसलिए लोग बचत को अपने आप इकट्ठा कर रखते है। हालांकि बैंको की संख्या में सुधार होने पर इसमें अन्तर देखने को मिला है फिर भी देश में ऋण देने वाले फंडों की कमी है।

### फंडो में मौसमी प्रकृति
**(Seasonal nature of fundss)**

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इसलिए कृषि की मौसमी प्रक ति होने की वजह से फंड की प्रकृति भी मौसमी रहती है तथा ब्याज दर स्थिर न रहकर ऊपर नीचे रहती है। इसलिए अतिरिक्त फंडों की आवश्यकता रहती है। यदि इस तरह की अतिरिक्त फंडों की समस्या पूरी नहीं होगी तो ब्याज दर भी स्थिर नहीं रह सकेगी जो कि बहुत आवश्यक है।

ऊपर कहे गए अथवा किए गए वर्णन से पता चलता है कि मुद्रा बाजार सुचारू रूप से अपनी भूमिका का निर्वाह नहीं कर पाए। इसलिए इनकी पद्धति को सुचारू रूप से चलाने के लिए सरकार तथा RBI ने कुछ महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं जो इस प्रकार हैं:—

1. 1989 में सरकार ने इन बिलों पर से स्टैम्प ड्यूटी खत्म कर दी है। जो कि एक सबसे बड़ी रुकावट थी।

2. मुद्रा ब्याज दर को RBI द्वारा मई 1989 से अनियमित किया है जिससे इसमें और लचीलापन आएगा।

3. अप्रैल 1988 को DFHI को स्थापित किया जिसका मुख्य उद्देश्य मुद्रा बाजार के अन्तर्गत सभी वित्तीय संस्थानों को लाना है।

4. आखिरी RBI तथा वाणिज्य बैंको के बीच दोबारा खरीद के लिए समन्वय स्थापित करना है। ताकि कमी के समय सम्पत्तियों का प्रयोग किया जा सके।

# अध्याय-22
# भारत में पूँजी बाजार
# (Capital Market in India)

पूँजी का अभिप्राय है उत्पादन में धन का प्रयोग करना आगे धन बढ़ाने के लिए। प्रत्येक व्यवसाय में वित्त की आवश्यकता पूरी करने के लिए मुद्रा की जरूरत है। मुद्रा को जमीन, और इमारत, मशीन व औजार आदि के उत्पादन में प्रयोग किया जाता है।

एक व्यवसायिक इकाई विभिन्न साधनों से पूँजी बढ़ा सकता है। दीर्घकालीन फंड सिक्योरिटी को जारी कर या निश्चित संस्थानों से उधार लेकर जुटाए जा सकते हैं। व्यापारिक इकाइयों के साथ-साथ सरकारें भी अधिक मात्रा में फंड उधार लेती हैं। इन फंडों को उधार देनेवाले व्यक्तिगत निवेशक, संस्थागत निवेशक, बैंक और औद्योगिक वित्तीय संस्थान है। इसमें दो संस्थान शामिल है मुद्रा बाजार व पूँजी बाजार मुद्रा बाजार अल्प-काल के लिए तथा पूँजी बाजार के माध्यम तथा दीर्घकाल के लिए धन मुहैया कराते हैं। मुद्रा बाजार का हम पहले ही वर्णन कर चुके है। दोनों ही मुद्रा व पूँजी बाजार स्वतंत्र हैं इसकी आत्मनिर्भरता का मुख्य कारण है—क्योंकि पूर्तीकर्ता दोनों तरह (अल्पकाल, दीर्घकाल) का ऋण देना चाहते हैं। दोनों बाजारों के बीच धन का आवागमन स्वतन्त्र है तथा ब्याज दर भी एक दूसरे से प्रभावित रहती है, कुछ संस्थाएँ तो दोनो तरह के बाजारों में अपनी सेवाएँ प्रदान करती है। उदारहण के तौर पर वाणिज्य बैंक मुद्रा बाजार के सबसे बड़े सहायक हैं। उसी प्रकार दलाल भी सरकार की प्रतिभूतियों में दीर्घकाल तथा अल्पकाल खरीद बेच करते हैं।

## पूँजी बाजार का ढाँचा
## (Structure of Capital Market)

पूँजी बाजार का दो भागों—(i) वित्तीय संस्थाएँ—ICICI, IFCI, SFCS, LIC, UTI आदि तथा (1) प्रतिभूति बाजार में बॉटते है। प्रतिभूति बाजार में दो शमिल है (ii) गिल्ट एज मार्किट का मतलब सरकार द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों में व्यापार करना। सरकारी प्रतिभूतियों में कोई जोखिम नही हैं क्योंकि सरकार कभी भी भुगतान के लिए दोषी नहीं होना चाहती। कॉरपोरेट बाजार वह बाजार है जहाँ प्रतिभूतियाँ फर्म द्वारा जारी कि जाती है यह फर्म द्वारा स्वतन्त्र रूप से खरीदी व बेची जाती है। इसमें शायद बाँड और डिबेंचर हैं। इसमें स्टॉक एक्सचेंज द्वितीय बाजार तथा नए इस्यू प्राथमिक बाजार में शामिल है। नए इस्यू मे नए शेयर, बाँड व डिबेंचर शामिल रहते हैं। जो व्यापार बढ़ाने के लिए फर्म द्वारा जारी किए जाते हैं। स्टॉक एक्सचेंज में सूचीगत शेयर बाँड व डिबेंचर में खरीद व बिक्री की जाती है। यह पूर्णरूप से संगठित क्षेत्र है।

# पूँजी बाजारों की संव द्धि
# (Growth of Capital Markets)

1. **सरकारी प्रतिभूतियाँ बाजार (Government Securities Market):** यदि ऑकड़ों का आंकलन करें तो सरकारी प्रतिभूति बाजार के प्राथमिक इस्यू में 10 गुना व द्धि हुई है। बैंक व बीमा कारपोरेशन के साथ-साथ वित्त कम्पनी, कारपोरेट तथा वित्तीय संस्थाओं ने भी सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश करना आरंभ किया है। सरकारी प्रतिभूतियों में द्वितीय बाजार लेन-देन भी बढ़ा है। यह 1994 में शुरू हुआ था तथा 50, 569 करोड़ रुपये था 1999 में यह बढ़कर 2, 27, 288 करोड़ रुपये हो गया। इस बात से साबित होता है कि सरकार का निवेश आधार बढ़ा है।

2. **कारपोरेट प्रतिभूति बाजार (Corporate Securities Market):** उदारीकरण के बाद (1991 के बाद) मई 29, 1992 से पूँजी जारी नियंत्रण हटाने के बाद कारपोरेट प्रतिभूतियाँ बाजार में काफी व द्धि हुई है। इसके अन्तर्गत निम्न को शामिल किया गया है जिसका हम पहले वर्णन कर चुके हैं।

   a) प्राथमिक बाजार (Primary Market): इसके अन्तर्गत निजी क्षेत्र द्वारा नए इस्यू जारी किए जाते हैं। 1990.91 में निजि क्षेत्रों द्वारा जारी नई पूँजी इस्यू 4,32 करोड थे जो 1994.95 में बढ़कर 26,417 करोड़ रुपये के हो गए पूँजी इस्यू में दो तरह के शमिल है—शेयर व डिबेंचर। उदारीकरण से पहले लघु-स्तर फंड बढ़ाने का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन डिबेंचर थे और लगभग पूँजी का 7० प्रतिशत इनसे पूरा किया जाता था। उदारीकरण के पश्चाय शेयर से पूँजी अर्जित करने की मात्रा में भी व द्धि हुई। लेकिन 1997.98 में इसमें उल्टा परिवर्तन आया। साधनों का 37 प्रतिशत शेयर से तथा 67 प्रतिशत डिबेंचर से जुटाया गया। जिसके पास शेयर हैं उसे शेयर धारक तथा कंपनी में हिस्सेदार कहते हैं। इनको वोट डालने का अधिकार तथा लाभांश के रूप लाभ का हिस्सा मिलता है। इसी प्रकार डिबेंचर धारक को कम्पनी की भागेदारी में कोई अधिकार नही है। डिबेंचर का मतलब ऋण है जिसका ब्याज डिबेंचर धारक को सालाना (वार्षिक) प्राप्त होता है। यह दो तरह का है तबदील तथा गैर-तबदील तबदील-शेयर में परिवर्तित तथा गैर-तबदील शेयर में परिवर्तित नहीं होता।

   b) सार्वजनिक क्षेत्र बाँड (Public Secgtor Bonds): यह दो प्रकार के हैं—कर मुक्त व कर सहित बाँड। कर मुक्त बॉड में ब्याज की दर 9.5 से 10.5 प्रतिशत तथा कर सहित बॉड में ब्याज की दर 12 से 15 प्रतिशत है। इनको भी फंड जुटाने के लिए जारी किया जाता है।

   c) म्यूचुअल फंड (Mutual Fund): म्यूचुअल फंड (MFs) साधनों को बढ़ाने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण यंत्र साबित हुए हैं। यह तभी संभव हुआ जब सार्वजनिक क्षेत्र बैकों को इनमें व्यापार करने की अनुमति दी गई। 1997-98 में इनकी संख्या 34 थी जो UTI, LIC, GIC तथा निजी क्षेत्र द्वारा जारी किए गए थे। 1997-98 तथा 1998-99 में म्यूचुअल फंड 4,002 करोड़ और 3,060 करोड़ रुपए के फंड को बढ़ाने में कामयाब हुए।

2. **द्वितीय बाजार (Secondary Market):** हम पहले ही बता चुके हैं कि इसमें लेनदेन स्टॉक एक्सचेंज के तहत होता है। इसको निम्न भागों में बाँटा गया है:—

a) **औद्योगिक प्रतिभूति बाजार (Industrial Security Market):** इसके अन्तर्गत औद्योगिक प्रतिभूतियों का लेन-देन होता है। 1992.92 के वित्तीय वर्ष के दौरान शेयर कीमतों में परिवर्तन से तथा इकाइयों में बड़े पैमाने पर व द्धि से स्टॉक बाजार में काफी उतार-चढ़ाव हुए। यद्यपि 1992-93 में बाजार नीचे रहा। लेकिन 1993-94 में सूचकांक 1331.7 तक बढ़ा। इसका मुख्य कारण भुगतान संतुलन में सुधार, कम्पनियों के अर्द्ध-वार्षिक नतीजों में बढ़ोत्तरी तथा विदेशी वित्त निवेशकों द्वारा निवेश बढ़ाना था। यद्यपि 1997 में एशिया वित्त संकट बढ़ने से भारतीय स्टॉक बाजार पर बुरा असर पड़ा और विदेशी वित्तीय संस्थानों के निवेश में भी तेजी से गिरावट आई। इसका एक और भी कारण है कि औद्योगिक उत्पादन में कमी से आर्थिक व द्धि में भी कमी आई।

b) **मुम्बई स्टॉक एक्सचेंज (Mumbai Stock Exchange):** मुम्बई स्टॉक एक्सचेंज पर हलचल होने पर भी कम या ज्यादा प्रभाव जरूर पड़ता है। अर्थव्यवस्था में BSE का बाजार पूँजीकरण, GDP का प्रतिशत है यह पूँजी बाजार की व द्धि को मापने का एक यंत्र है।

c) **भारत का राष्ट्रीय स्टॉक विनिमय (National Stock Exchange of India [NSE]):** NSE 1992 में शुरू हुआ तथा इसको व्यापार प्रक्रिया जून 30, 1994 में शुरू हुआ। शुरू में NSE का ऋण बाजार शुरू हुआ। NSE का इक्विटी बाजार में प्रक्रिया नवम्बर 3, 1994 में शुरू हुआ। यह स्टॉक एक्सचेंज इक्विटी यंत्र, वारंट, डिबेंचर तथा प्राथमिक शेयरों में व्यापार करने की सुविधा प्रदान करता है। NSE ने पारदर्शी कार्यप्रणाली अपनाई हुई है जिसके तहत व्यापारी सदस्यों के अपने कार्यालय से संचार व्यवस्था के तहत व्यापार कर सकते है।

## भारत में पूँजी बाजार की व द्धि को प्रभावित करनेवाले तत्त्व
## (Factors Affecting the Growth of Capital Market in India)

स्टॉक एक्स्चेंज में व द्धि उदारीकरण के बाद आरम्भ हुई है। मुसीबतों (झटकों) के बाद भी इसमें व्यापार का लेन-देन काफी बढ़ा है। अब हम उन तत्त्वों (घटकों) का वर्णन करेंगे जिन्होंने इसकी व द्धि में अपना योगदान किया।

1. **बैंक और वित्तीय संस्थानों की स्थापना (Establishment of Banks and Financial Institutions) :** उद्योगों को दीर्घकाल ऋण प्रदान करने के लिए सरकार ने IFCI (इंडस्ट्रीयल फाइनेंन्स कॉरपोरेशन की स्थापना 1948 में की। इसके साथ ही काफी वित्तिय संस्थान ICICI 1955 में, IDBI 1964 में, इंडस्ट्रीयल रीकन्सट्रक्सन कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया (IRCI) 1971 में, UTI 1964 में, LIC तथा इसके साथ 20 बैंको का राष्ट्रीयकरण किया गया जो 14 बैंक 1969 में 6 1980 में राष्ट्रीयकृत किया इन सभी संस्थानों ने भारत में पूँजी बाजार बढ़ाने में काफी मदद की।

2. **कानूनी बचाव (Legal Protection) :** सरकार ने 1956 में कम्पनी एक्ट पास किया जिसके अन्तर्गत सरकार को इन कारपोरेट के विकास तथा नियंत्रण के पूर्ण अधिकार हैं। इस एक्ट को 1992 में बदल दिया गया क्योंकि यह महसूस किया गया कि पूँजी बाजार की व द्धि में यह एक रुकावट है।

3. **सेबी को स्थापित करना TO SET UP SEBI :** एक्युरिटी एंड एकसचेंज बोर्ड (SEBI 1988 में स्थापित किया तथा इसको वैधानितकता 1992 में करना था जिसमें एक्योरिटि

बाजार माध्यम से साधनों का जुटाया जा सके तथा इनका सही तरीके से प्रयोग किया जाए।

4. **जनता का विश्वास बढ़ाना (To Boost the confidence of Public) :** उदारीकरण के एकदम बाद छोटे-छोटे निवेशकों ने बैंको तथा दूसरे वित्तीय संस्थाओं की अपेक्षा अपना पैसा यहाँ निवेश करना आरम्भ किया। अधिकतर कम्पनियों के सार्वजनिक इस्यू मात्रा से भी ज्यादा बढ़े। लेकिन कुछ वर्षों में कम्पनी के लाभ में गिरावट तथा अनियमिता की वजह से इसकी साख को धक्का लगा। जनता ने अपना पैसे इनको खरीदने की बजाय या स्टॉक एक्सचेंज में लगाने की बजाय बैंको में जमा करना शुरू कर दिया।

इसके बावजूद भी भारतीय पूँजी बाजार की काफी समस्याएँ रही है लेकिन ये अधिकतर उदारीकरण से पहले की है जैसे पहले बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज (BSE) का ही एकाधिकार था। शेयर खरीदने बेचने वाले से बदला के तौर पर दलाली की जाती थी। लेकिन अब सरकार ने इसको मजबूत करने के लिए कदम उठाने आरंभ किए है। जो इस प्रकार है–

1) भारत सरकार की मध्यम व दीर्घ-काल प्रतिभूतियो को आबंटित करने का तरीका जून 3, 1992 में शुरू किया। कुछ आविष्कारिक कार्य जैसे जीरो कूपन, पूँजी सूचकांक डिब्बा, का शुभारंभ तथा ट्रेजरी बिल के आबंटन को प्रतिभूतियों में बदला गया।

2. प्राथमिक दलाली का तरीका मार्च 1995 में स्थापित किया गया।

3. रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया ने म्यूचुअल फंड की सहायता करना आरम्भ की।

4. विदेशी संस्थान निदेशक को 100 प्रतिशत ऋण फंड के साथ सरकारी प्रतिभूतियाँ व खजाना बिल में निवेश करने की सहमति।

5. सरकारी प्रतिभूतियाँ पर ब्याज आय को उसी समय कट काटने संबंधी व्यवस्था से मुक्त किया गया।

6. जिसका हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं 364 दिन के खजाना बिल का आबंटन की व्यवस्था की गई। 14 दिन के खजाना बिल को भी शुरू किया गया।

## सेबी और पूँजी बाजार
## (SEBI and Capital Market)

SEBI 1988 में स्थापित किया गया तथा इसे वैधानिक दर्जा 1992 में प्राप्त हुआ। इसका मुख्य उद्देश्य स्टॉफ बाजार व प्रतिभूति बाजार में व्यापार करना था, प्रतिभूति बाजार के साथ काम करनेवाले दलाल तथा मध्यस्थों को पंजीकृत करना था, स्वयं नियमित संगठन को नियमित करना, निवेशक को शिक्षा और मध्यस्थ को ट्रेनिंग देना था। SEBI के अन्दर 1995 में परिवर्तन करके इसे अधिकार दिए गए कि वह पूँजी बाजार में नए मध्यस्थों को पंजीकृत कर सके। इस सशक्तिकरण के साथ जो प्रतिभूति बाजार के साथ जुड़े अब SEBI इनका संचालन करता है।

इस प्रकार SEBI ने पूँजी बाजार की कार्यप्रणाली को सुधारों के लिए कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाए जो इस प्रकार है–

1. SEBI ने स्टॉक एक्सचेंज का निरीक्षण करने की कमेटी को वापिस ले लिया क्योंकि कुछ का निरीक्षण पहले ही हो चुका था।

2. SEBI ने प्राथमिक बाजार को सुधारने के लिए कई उपाय किए। विज्ञापनों पर विशेष ध्यान दिया गया ताकि निवेशकों को गुमराह न किया जा सके।

3. स्टॉक दलाल और सब-दलाल को पंजीकृत करने के लिए SEBI, 1992 के तहत लिया गया। SEBI, से प्रमाण पत्र न लेने पर कोई भी दलाल प्रतिभूतियों में खरीद, बेच नहीं कर सकता।

4. व्यापारी बैकिंग भी SEBI के अन्तर्गत लाई गई।

5. SEBI ने सितम्बर 1992 में वित्तिय संस्थाओं के विकास के लिए अलग से निर्देश जारी किए ताकि बाजार से फंड बढ़ाने के लिए फंड बढ़ाने में कोई परेशानी न हो।

6. लेनदेन में पारदर्शिता लाने के लिए SEBI ने दलालों को अपने लिए तथा अपने ग्राहकों के लिए अलग-अलग खाते खोलने के निर्देश दिए। उन्हें अपने ग्राहकों के लिए शेयर कीमत तथा दलाली अलग-अलग दिखानी चाहिए। उन्हें अपनी कापियाँ (खाता कापियों) का भी ऑडिट कराना चाहिए।

7. SEBI ने स्टॉक एक्सचेंज को निर्देश दिए कि वह अपने तथा ग्राहक के बीच 24 घंटे के अंदर अपना ठेका निर्धारित कर लें। इसमें बिक्री क्रिया के लिए समय सीमा तथा ग्राहक द्वारा धन देने संबंधी व्यवस्था समय पर होनी चाहिए।

8. जारी करनेवाले बैंक भी SEBI के नीचे लाए गए जैसे UTI भी SEBI के अन्तर्गत लाया गया है।

9. सितम्बर 1998 को SEBI ने इस्यू जारी करने के लिए संस्थागत खर्च की छूट दी गई। उनको जनता को इक्विटी का 25 प्रतिशत ऑफर करने की छूट भी दी गई।

10. कम्पनी ऑर्डिनेन्स (अक्टूबर 31, 1998 और जनवरी, 7, 1999) ने SEBI के निर्देश पर कंम्पनियों द्वारा अपने बेचे गए शेयरों को दोबारा खरीदने की अनुमति प्रदान की।

11. SEBI ने 10 रुपये व 100 रुपये शेयर कीमत निश्चित की थी उसे खत्म कर दिया गया और कम्पनी को अपने शेयर की कीमत निश्चित करने की स्वतंत्रता प्रदान की।

12. SEBI ने क्लेक्टिव इनवेस्टमेंट स्कीम (CIS) के लिए निर्देश व नियम अक्टूबर 15, 1999 में निश्चित किए। यदि कोई एजेंसी प्रमाण पत्र नहीं होती है तो वह अपना कार्य आरंभ नहीं कर सकती। यदि वे प्रणामपत्र के बिना काम करती है तो उन्हें ये धंधा बंद करके निवेशक का पैसा वापिस करना होगा।

सुधार प्रक्रिया के बाद किए गए संस्थागत परिवर्तन ने भारतीय पूँजी बाजार को प्रभावित किया और इन विभिन्न प्रभावों ने कुछ सालों में पूँजी बाजार को और ताकतवर बना दिया। निवेशकों की जरूरत के अनुसार SEBI द्वारा विभिन्न उपाए किए गए। जैसे हम पहले बता चुके हैं कि 1997-98 में सूचकांक में काफी परिवर्तन हुआ तथा साधनों का आवागमन केवल 3,138 करोड़ रुपये था जो 90 के दशक में सबसे कम है। इसका मुख्य कारण निवेशक की कम रुचि दिखाई देती है। पूँजी बाजार में अनिश्चित वापसी से छोटे निवेशकों ने प्राथमिक तथा द्वितीय बाजार से बाहर निकलना आरंभ किया। दूसरी तरफ भारतीय संस्थागत निवेशकों के पास फंड की कमी थी। जो प्रभावी क्रय शक्ति रखते थे वे विदेशी संस्थागत निवेशक थे। यद्यपि इन संस्थाओं की खरीद बेच विश्व स्तर पर होती है जिसमें भारतीय बाजार लगातार सीमांत भूमिका निभाता है। भारत देश के 10 ऊँच बाजारों मे से है।

# अध्याय-23
# विश्वव्यापारीकरण और डब्ल्यू०टी०ओ०
# (Globalisation and WTO)

## Introduction

विश्वव्यापारीकरण का मतलब है कि एक देश की अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ना। भारत के संदर्भ में, भारत में आर्थिक क्षेत्र में विदेशी कंपनियों को सुविधा प्रदान कर अर्थव्यवस्था को विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के लिए खोलना। अर्थात् बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भारत में प्रवेश करने पर प्रतिबंध हटाना (अर्थात् फेरा (FERA) के तहत रुकावट (प्रतिबंध) हटाकर) विश्वव्यापारीकरण को चार अंगों में विभाजित किया गया है। (1) व्यापार अवरोधकों को खत्म करना ताकि एक देश से दूसरे देश में विभिन्न वस्तुओं का बेरोक-टोक आदान प्रदान हो सके। (ii) तकनीक का निर्वाध प्रवाह हो सके (iii) तथा ऐसी परिस्थिति कायम करना जिसमें विभिन्न राज्यों में पूँजी का स्वतंत्ररूप से प्रवाह हो सके। (iv) इसके साथ-साथ ऐसा वातावरण कायम करना चाहिए जिसमें विभिन्न देशों में श्रम का निर्बाध प्रवाह हो। इस सरकार ने 1991 में नई आर्थिक नीति का शुभांरभ किया। 1991 की आर्थिक नीति के तहत ही देश को विश्व के साथ जोड़ने की परंपरा शुरू हुई। इस संबंध में हम ढाँचात्मक सुधारवाले अध्याय में व्यापक रूप से वर्णन कर चुके हैं तथा विभिन्न अध्याय जो 1991 की आर्थिक नीति से प्रभावित रहे हैं उनमें भी इसका वर्णन कर चुके हैं।

## विश्वव्यापारीकरण की तरफ कदम
## (Step to initiate Globalisation)

विश्वव्यापारीकरण को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने कई कदम उठाए-

(1) **रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता (Full Convertibility of Rupees) -** सबसे महत्त्वपूर्ण कदम घरेलू अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ने के लिए रुपये को पूर्ण रूप से परिवर्तित किया गया अर्थात् बिना कार्यालय रुकावट के अपनी विनिमय दर को विदेशी व्यापार में निर्धारित करने की आज्ञा प्रदान करना। इस माप के तहत विनिमय नियंत्रण के ऊपर प्रतिबंध हटाया गया। पहला कदम, IME ने जुलाई 1991 में रुपये का अवमूल्यन 13 प्रतिशत कम करने पर जोर दिया। सरकार ने स्फीति दर का लक्ष्य 9 प्रतिशत रखा ताकि IMF तथा वर्ल्ड बैंक को रुपये की कीमत 22 प्रतिशत कम करने की जरूरत पड़े। इसलिए वित्त मंत्री ने दो स्तरों पर जुलाई 1, 1991 तथा जुलाई 3, 1991 को रुपये का अवमूल्यन किया। इसलिए IMF पर सरकार द्वारा सहायता के लिए जो शर्त थोपी गई थी वह पूरी हुई।

पिछले (गत) कुछ वर्षों में सरकार ने रुपये का पूर्णरूप से परिवर्तन होने पर आगे

कदम बढ़ाया है। जिसका हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं। अध्याय है भारत में व्यापार सुधार (विदेशी व्यापार)।

(2) **आयातों का उदारीकरण (Liberalisation of Imports)**— विश्वव्यापारीकरण में आयात के उदारीकरण पर भी जोर दिया गया। अगस्त 13, 1991 में व्यापार नीति ने 20 वस्तुओं के आयात पर प्रतिबंध हटा दिया। साथ में आयात कर की मात्रा भी घटाकर 255 से 150 प्रतिशत की गई। यह 35 वस्तुओं पर थी। लेकिन 1992-97 की आयात-निर्यात नीति में भारतीय अर्थव्यवस्था में सभी वस्तुओं- पूँजीगत वस्तुएँ, कच्चा माल तथा उपयोग वस्तुओं के स्वतंत्र आयात करने की अनुमति प्रदान की।

आयात कर घटाने के साथ-साथ भारत विदेशी संगठन का सदस्य बनकर वस्तुओं के आयात ने ऊपर लगे प्रतिबंध को खत्म करने 6 साल तक हटाने की हामी भरी और यह समय 1997 से शुरू हो चुका है। यू०एस०ए० की अपील के बाद जो भारत के विरुद्ध की थी अब यह प्रतिबंध अप्रैल 2001 से पूर्ण रूप से खत्म हो चुका है। आयात की उदारीकरण के पीछे यही तर्क था कि आयात बढ़ने से अंतर्राष्ट्रीय उपयोगी पूंजीगत वस्तुओं के साथ तथा निर्यात करनेवाली कंपनियों के पास जो आगत है उससे घरेलू क्षेत्र मे उपयोगिता तथा तकनीक में सुधार होगा।

(3) **विदेशी पूँजी के लिए द्वार खोलना (To Open doors for foreign capital)**— विदेशी पूँजी के आकर्षण के लिए और भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व से जोड़ने के लिए, सरकार ने विदेशी निवेशकों के लिए दरवाजे खोले। इसको हम फेरा (FERA), फेमा (FEMA) तथा विदेशी पूँजी व बहुराष्ट्रीय कंपनियों वाले अध्याय में पूर्ण रूप से वर्णित कर चुके हैं। 1991 की नई आर्थिक नीति में सरकार ने ऊँची तकनीक उद्योगों की भारत में निवेश करने की सूची जारी की। दिसंबर 1996 तक 35 उद्योगों को अपने आप RBI की सहमति पर विदेशी निवेश को 51 प्रतिशत बढ़ाने की सहमति प्रदान की। नौ व्यापारिक घरों में यह सीमा बढ़ाकर 74 प्रतिशत कर दी गई। NRI आदि को 100 प्रतिशत निवेश करने की सहमति भी प्रदान की गई, यह सुविधा केवल निर्यात घर, व्यापार, हास्पिटल, विमान उद्योग व होटल में ही प्रदान की गई।

## विश्वव्यापारीकरण के प्रभाव
## (Effects of Globalisation)

(1) **बाहरी क्षेत्र (External Sector)**— विश्वव्यापारीकरण की प्रक्रिया 1991 में आरंभ हुई। यदि इसका आंकलन किया जाए तो बाहरी क्षेत्र में इसका प्रभाव साफ दिखाई देता है। 1991 में विदेशी मुद्रा रिजर्व एक बिलियन डॉलर थे जो 2004 में बढ़कर 24 बिलियन डॉलर हो गए। डॉलर की कीमत में गिरावट होने पर निर्यात में भी व द्धि हुई। यद्यपि आयात भी बढ़े हैं फिर भी भुगतान संतुलन स्थिति खराब नहीं है। भारत में अंतर्राष्ट्रीय विश्वास बढ़ा है। इस प्रकार गत तीन-चार वर्षों में प्रत्यक्ष निवेश में व द्धि हुई है।

यद्यपि 1995 में, चालू खाता घाटा GDP का 1.7 प्रतिशत बढ़ा है जो कि 1994-95 में 1.0 प्रशित था। 1996-97 के आर्थिक सर्वेक्षण में कहा गया है कि इसको कोई खतरा नहीं है क्योंकि यह पूंजी के देश में आवागमन से आसानी से पूरा किया जा सकता है। भंडार के कम होने पर भी यह (विदेशी मुद्रा संपत्ति) 1995-96 में 5.6 प्रतिशत, 1996-97 में 4.5 प्रतिशत तथा 1998-99 में घटकर 3.9 प्रतिशत रह गए। इसलिए भुगतान संतुलन के प्रबंधन में यह एक बहुत बड़ा कारण है।

(2) **भारतीय क्षेत्र (Indian Sector) –** विश्वव्यापारीकरण की प्रक्रिया से भारत में गैर बराबरी प्रतियोगिता शुरू हो गई है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ तथा भारतीय क्षेत्र (उद्योगों) के बीच प्रतियोगिता। इसका मुख्य कारण मल्टी नेशनल कार्पोरेशन (MNCs) की अपेक्षा भारतीय व्यापार के लिए पूँजी की लागत ज्यादा है। क्योंकि ब्याज की दर भारत में बाहर की अपेक्षा ज्यादा है। राज्य सरकारें कुछ क्षेत्रों में इस तरह की रणनीति बनाती हैं जो MNCs के पक्ष में ज्यादा है जैसे ऊर्जा क्षेत्र में भारतीय फर्मों को वो छूट नहीं दी जाती है। जो MNCs को दी जाती है। MNCs के पक्ष में ज्यादा है जैसे उर्जा क्षेत्र में भारतीय फर्मो को वो छूट नही दी जाती है। जो MNCs को दी जाती है। MNCs की वित्तीय ताकत भारतीय फर्मों की अपेक्षा ज्यादा है। वे किसी भी समय भारतीय फर्म को खरीदने की स्थिति मे है।

इसलिए विश्वव्यापीकरण ने नए संसार का निर्माण किया है। एक ऐसा संसार जहाँ विदेशी पूँजी का आगमन ज्यादा तथा घरेलू क्षेत्र ने पहली बार महसूस किया कि वे विदेशी निवेशकों से लाभ अर्जित करनेवाले में नहीं बल्कि उनका लक्ष्य बन गए हैं कि किस तरह घरेलू क्षेत्र को हथिया लिया जाए। MNCs के आने से लगता है कि दोबारा ईस्ट इंडिया कंपनी का आगमन हुआ है।

## विश्व व्यापार संगठन (WTO)
## (World Trade Organisation (WTO))

दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात बहुत से देशों ने इकट्ठा काम करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को स्थापित करने की बात कही। इसका परिणाम यह निकला कि 1947 में GATT (जनरल एग्रीमेंट ऑन टैरिफस एंड ट्रेड पर 23 देशों ने हस्ताक्षर किए भारत भी GATT का सदस्य था। समय के साथ GATT की सदस्यता बढ़ती गई और 1994 में 118 तक पहुँच गई। GATT का संबंध आयात कर घटाकर तथा सदस्य देशों के साथ भेदभाव की स्थिति न रखकर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ाना था। इसका मुख्य उद्देश्य सभी देशों की एक जैसी भागीदारी तथा विदेशी व्यापार को फैलाना था। GATT ने भी स्वतंत्र व्यापार की वकालत की।

इस प्रकार GATT के कई चक्र चले पहला चक्र बवाना में 1947 में 23 देशों के साथ हुआ। इसी प्रकार चलते हुए सातवां चक्र जिसे टोक्यो राउंड कहा जाता है। 1973-79 में टोक्यो में हुआ। आठवाँ व आखिरी चक्र 1986 में उरुग्वे में हुआ जिसे उरुग्वे राऊंड कहते हैं। इसने लगभग आठ साल लिए तथा 1994 में उरुग्वे राऊंड के अंतिम एक्ट पर हस्ताक्षर किए गए और इसके साथ ही 104 देशों के हस्ताक्षर के साथ जनवरी 1995 में WTO की स्थापना की गई। यद्यपि GATT एक संगठन नहीं था, यह एक कानूनी प्रबंध था। यदि WTO के ऊपर गौर किया जाए तो लगता है कि यह विकसित देशों (खासकर अमेरिका) द्वारा प्रभावित रहा है। सबसे पहले हम भारत सरकार द्वारा WTO को की गई बातों पर गौर करेंगे तथा उसके बाद भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़नेवाले प्रभावों का वर्णन करेंगे।

## भारत और WTO
## (India and WTO)

(1) **आयात कर स्तर (Tariff Level) –** WTO के सदस्य बनने के बाद भारत आयात कर स्तर 67 प्रतिशत रखने पर प्रतिबंधित है जबकि यह उरुग्वे राऊंड में 6 प्रतिशत था। भारत मार्च 1995 से 2005 तक गैर क षि उत्पादों पर 40 प्रतिशत तक की सीमा और

25 प्रतिशत मध्यस्थ वस्तुएँ मशीनरी व औजारों पर की गई। क षि पर सहमति के अंतर्गत यह 100 से 300 प्रतिशत तक हो सकती है, उत्पादन अधिकता सब्सिडी या आयात कर में कमी पर कोई हामी नहीं भरी हुई है।

(i) **सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) –** इनमें हथियारों तथा गोला-बारूद के निर्माण, परमाणु शक्ति के उत्पादन व नियंत्रण तथा रेल परिवहन के स्वामित्व और प्रबंध संबंधी उद्योग शामिल किए गए। यहाँ यह भी उल्लेख किया गया कि सरकार किसी भी ऐसे उद्योग को अपने हाथ में ले सकती है, जो राष्ट्र की सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण हो।

(2) **मात्रात्मक प्रतिबंध (Quantitative Restrictions) –** मात्रात्मक प्रतिबंध अथवा QRs भुगतान संतुलन के आधार पर 1997 में 2714 आयात रेखा पर किया गया। भुगतान संतुलन प्रतिबंध कमेटी की सिफारिशों पर भारत ने अमेरिका को छोड़कर इन देशों के साथ व्यापार संबंधो पर सहमति जताई। यह समय केवल 6 साल के लिए था जो 1997 में शुरू हुआ। लेकिन इस कमेटी ने अमेरिका की बात मानकर यह प्रतिबंध 6 वर्ष से भी कम कर दिया जो अमेरिका के पक्ष तथा भारत के विरुद्ध था। इसके अंतर्गत भारत को अप्रैल 1, 2001 तक सभी प्रतिबंध हटाने थे। एक्जिम पॉलिसी के तहत 714 वस्तुओं पर प्रतिबंध हटाए गए तथा बाकी 715 वस्तुओं पर प्रतिबंध अप्रैल 1, 2001 तक चलेगा।

(3) **गैटस (GATTs) –** जनरल एग्रीमेंट ऑन ट्रेड इन सर्विसेज़ (GATTs) के अंतर्गत भारत ने 33 क्रियाओं में विदेशी सेवा प्रवेश करने की अनुमति प्रदान की। भारत सरकार के द्वारा इसका चुनाव राष्ट्रीय हित को देखकर किया जाएगा।

(4) **ट्रिपस (TRIPs) –** इसके अंतर्गत अमेरिका तथा सोवियत संघ ने शिकायत की कि भारत आर्टिकल 70.8 तथा आर्टिकल 70.9 (जो मेल बॉक्स स्थापित करने व बाजार अधिकार) देने से संबंधित है को स्थापित करने में असफल रहा है। इसके तहत भारत सरकार ने 1999 में पेटेंट अमेंडमेंट एक्ट पास किया। जो बाजार अधिकार प्रदान करता है। TRIPs के अंतर्गत नकल आदि रोकने के लिए 1957 के कॉपीराइट एक्ट को बदलकर (परिवर्तित) करके 1994 में TRIPs की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए पास किया। अंतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार व्यापार चिह्न एक्ट 1958 महत्त्वपूर्ण है।

(5) **ट्रिमस (TRIMs) –** इसके अंतर्गत विकासशील देशों के पास 31 दिसंबर, 1999 तक पाँच साल का समय है। जिसके अंतर्गत वे एग्रीमेंट में दिए गए माप को लागू करने का प्रबंध कर सकती है। भारत सरकार ने दो TRIMs बनाए एक जो लोकल स्तर पर दवाइयों के उत्पादन की जरूरतों को ध्यान में रखेगा तथा दूसरा इन जरूरतों को पूरा करने के लिए उपभोक्ता वस्तुओं की 22 क्रियाओं के उत्पादन में निवेश करेगा।

यह बातें भारत ने WTO को आश्वासन दिया कि वह पूरा करेगा। अब हम भारत के लिए WTO के फायदों पर चर्चा करेंगे।

## भारत को लाभ
## (Benefits to India)

वर्ल्ड बैंक, OECD और GATT ने अंदाज़ा लगाया कि उरुग्वे राऊंड पैकेज को लागू करने के बाद देश की आय में 213 और 273 बिलियन के बीच जुड़ेगी। GATT ने बताया कि यह बढ़ोत्तरी

कपड़ा (60 प्रतिशत), क षि, वन और अच्छी उत्पादन (20 प्रतिशत) और खाने की वस्तुएँ (19 प्रतिशत) की व द्धि होगी। भारत सरकार के अनुसार भारत देश इन वस्तुओं के निर्यात करने में प्रतियोगिता है। इसलिए भारत को इन क्षेत्रों में फायदा होगा। यह माना गया है कि भारत का देश के निर्यात में हिस्सा 0.5 प्रतिशत से 1.0 प्रतिशत बढ़ने की आशा है। लेकिन कई अर्थशास्त्रियों ने इस पर आशंका जताई है। उनका मानना है कि GATT के इन अंदाज़ों की अपने आप में विश्वसनीयता नहीं है। यदि स्तर को देखें तो भारत में निर्यात घटा है।

मल्टीफाइबर एरेजमेंट (MFA) को 2005 तक खत्म करने से भारत के निर्यात में व द्धि होगी क्योंकि भारत कपड़े का निर्यात करता है। विकसित देशों ने इसे 15 वर्ष तक के समय की माँग की थी लेकिन अल्पविकसित देश जैसे भारत ने इसे 10 वर्ष तक का समय रखने की बात कही है। यदि इसका आंकलन किया जाए तो यह भी विकसित देशों के पक्ष में है। कारण ज्यादा कोटा (49 प्रतिशत) विकसित देशों के पास है जो 2005 तक ही खत्म होगा (10वाँ वर्ष)। यदि यह कोटा हटा भी दिया तो यह केवल अकेले भारत के लिए नहीं होगा बल्कि हर एक के लिए होगा।

भारत आशा करता है कि क षि निर्यात के अवसर सुधर सकते हैं। क षि के घरेलू कीमत कम होने तथा व्यापार पर प्रतिबंध हटने पर क षि की वर्ल्ड प्राइस बढ़ेगी। दूसरा भारत सोचता है कि अमेरिका तथा यूरोपियन देशों में सब्सिडी घटने पर क षि निर्यात से आय बढ़ेगी। उसके साथ जो क षि पर सहमति की गई है उसको PDS में किया गया बदलाव प्रभावित नहीं करेगा।

## भारत को हानि
## (Disadvantages to India)

सबसे महत्त्वपूर्ण जो फायदा देखा गया है वह यह है कि इससे व्यापार का स्तर बढ़ेगा। इसके परिणामस्वरूप भारत को निर्यात से आय बढ़ेगी। यद्यपि यह महसूस किया गया है कि ये केवल अवसर ही दिखाई देंगे क्योंकि कपड़े पर निर्यात उदारीकरण 2005 तक कम ही दिखाई देता है। कर कम होने पर भी भारत को कम फायदा होगा क्योंकि इसमें निर्यात करने की क्षमता कम है। सबसे बड़ा नुकसान TRIPs, TRIMs को हमने दूसरे देशों को सेवाओं में निवेश करने की अनुमति दी है इससे देश की स्वतंत्रता को खतरा तथा दूसरे देशों का हस्तक्षेप भी बढ़ेगा।

TRIPs के अंतर्गत जो प्रोटेक्शन ऑफ इंटलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स- पेटेंट, कॉपीराइट, व्यापार चिह्न आदि सब बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हक में तथा विकसित देशों के हक में है। यह जिनके पास पैंटेंट अधिकार है उनके हक में है। जो TRIPs में समझौता हुआ है वह भारत के विरुद्ध है। क्योंकि भारत में 1970 पैंटेंट राइट एक्ट केवल भोजन, कैमिकल तथा दवाइयों में पेटेंट प्रक्रिया देने की बात करता है जबकि TRIPs समझौते के अंतर्गत इनमें उत्पादन पेटेंट का भी प्रावधान है।

TRIPs समझौता साधारणतया 20 वर्ष के समय की बात करता है जबकि भारत 14 वर्ष के समय के पक्ष में है। भारत सार्वजनिक रूचि के अनुसार इन पेटेंट का प्रयोग करता है जबकि TRIPs समझौते में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। क षि क्षेत्र मं इंटलेक्चुअल प्रॉपर्टी में राइट के बढ़ाने से भारत पर इसके गलत प्रभाव पड़ेंगे क्योंकि भारत में पौधों का तथा बीजों का उत्पादन अधिकतर जनता के हाथ में है। इस तरह का काम क षि विश्वविद्यालयों संस्थानों द्वारा किया जाता है जिसका उद्देश्य लाभ कमाना नहीं बल्कि जनसंख्या को खाधान्न के लिए आत्म निर्भर बनाना है।

इसी प्रकार TRIMs के अंतर्गत भी विकसित देश जो चाहते थे वही उन्हें मिला। यदि भारत के

विचार से देखा जाए तो इसे बैलेंस (समयायी) करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय कानून बनाना चाहिए। यद्यपि इस मामले में TRIMs बिल्कुल चुप है। इसमें केवल व्यापार से संबंधित निवेश प्रतिबंध हटाने का प्रावधान है जो अल्पविकसित देशों में विदेशी निवेशकों के पक्ष में देखा जाए तो यह आत्मनिर्भरता संबंधी ढाँचे को प्रभावित करेगा जो लोकल स्तर पर मिलनेवाली तकनीक तथा साधनों पर निर्भर है। यह भी हो सकता है कि यह अल्पविकसित देशों विनिमय भंडार खाली करने का भी कारण बन जाए जिससे भुगतान संतुलन प्रभावित होगा।

## सेवाएँ
## (Services)

जैसे हम पहले ही बता चुके हैं कि जैसे विकसित सेवाएँ- बैंकिंग, बीमा, दूरभाष आदि को विकसित देश तथा अल्पविकसित देशों में काफी अंतर है। इसलिए यदि सेवाओं में शामिल किया गया तो यह विकसित देशों के हक में होगा। आँकड़े बताते हैं कि 1993 में सेवाओं का वर्ल्ड ट्रेड $ 1000 बिलियन था जिसका $ 950 बिलियन केवल विकसित देशों का था अथवा 95 प्रतिशत। यदि यूरूगये राऊंड में इस तरह का समझौता किया जाता है तो उरुग्वे राउंड में इस तरह का समझौता किया जाता है तो इससे अल्पविकसित देशों का हिस्सा और कम होगा। अल्पविकसित देशों में सेवा उद्योग प्रारंभिक स्तर पर है, यदि इस तरह के नए समझौते होंगे तो इसकी उन्नति को धक्का लगेगा। भारत की ये अधिकतर सेवाएं जैसे बैंकिंग समाज कल्याण को ध्यान में रखकर बनाई गई है जैसे 1969 में 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया था। विदेशी कंपनियों के आने पर भारतीय बैंक इस तरह के सामाजिक कल्याण के उद्देश्य को पूरा करने में असमर्थ होंगे।

इन सब बातों पर गौर किया जाए तो हम देख सकते हैं कि WTO के पाँच साल पूरा होने पर क्या सही रहा है। विकसित देशों के बीच, विकसित तथा अल्पविकसित देशों के बीच इसके लागू होने पर झगड़े बढ़े हैं। GATT के 47 वर्ष के समय में केवल 200 झगड़ों (विरोध / के मामले थे जबकि WTO के कुछ साल बाद ही पहले तीन वर्षों में इस विरोध में 118 शिकायतें 83 मामलों में दर्ज की गई। अल्पविकसित देश अपने आपको ठगा महसूस करते हैं क्योंकि उनको विदेशी देशों के लिए बाजार खोलने पर मजबूर किया गया है। जैसा हम पहले ही बता चुके हैं कि यह विकसित देशों के पक्ष में तथा अल्पविकसित देशों के विपक्ष में है। TRIPs, TRIMs समझौतों के बारे में हम पहले ही बता चुके हैं। सेवा क्षेत्र में विदेशी निवेश के क्या नुकसान होंगे, इसका भी वर्णन कर चुके हैं। भुगतान संतुलन स्थिति तथा आत्मनिर्भरता पर हमला को भी हम वर्णित कर चुके हैं। एग्रीमेंट ऑन एग्रीकल्चर (AOA) की यह विकसित देशों के पक्ष में तथा अल्पविकसित देशों के विपक्ष में हैं को भी वर्णित कर चुके हैं। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा यह है कि AOA अल्पविकसित देशों की खाद्यान्न सुरक्षा के बारे में बात नहीं करता जबकि अल्पविकसित देशों के सामने खाद्यान्न सुरक्षा महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। खाद्यान्न वस्तुओं के लिए आयात पर निर्भरता देश के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। इसकी वजह से विकसित देशों का अल्पविकसित देशों में हस्तक्षेप बढ़ेगा। भारत के संदर्भ में PL480 के तहत मँगवाए जानेवाले खाद्यान्न आयात के बारे में इसका परिणाम पहले ही देख चुके हैं क्योंकि विकसित देश अपने स्वार्थ के लिए अल्पविकसित देशों का राजनैतिक प्रयोग करते हैं।

WTO की कार्यप्रणाली का सबसे ज्यादा संशय पैदा करनेवाली स्थिति विकसित देशों तथा अल्पविकसित देशों के बीच झगड़े निपटानेवाली स्थिति के बारे में है। यह साफतौर पर विकसित देशों के पक्ष में तथा गरीब देशों के विरुद्ध है। क्योंकि यह हम झगड़े निपटाने की बात करते

हैं तो दो बराबर पक्षों के बीच (दो ताकतवर व्यापारी साझेदारों) झगड़ा सही रूप से निपटाया जा सकता है न कि एक ताकतवर व कमजोर वर्ग के बीच। पिछले कुछ मामलों में अमेरिकी प्रबंधकों का दबाव साफ दिखाई देता है। अल्पविकसित देशों में दो महत्त्वपूर्ण मुद्दे श्रम स्तर (Standard) तथा पर्यावरण है। विकसित देश जैसे बाल श्रम, श्रम स्तर आदि को व्यापार के साथ जोड़ने की वकालत करते हैं। उनका मानना है कि बाल श्रमिकों को काम की बजाए स्कूल जाना चाहिए। यद्यपि यह माँग सही है लेकिन अल्पविकसित देशों की समस्याएँ अलग हैं। ये इस वास्तविकता को अनदेखा करते हैं। क्योंकि यदि बच्चे काम की बजाए स्कूल जाएँगे तो इससे उनके परिवार की आय नीचे आएगी और जो परिवार पहले ही गरीब हैं वो और भी गरीबी की अवस्था में होंगे। बांग्लादेश की स्थिति को हम अच्छी तरह जानते हैं सोवियत संघ ने बाल श्रम की वजह से गारमेंट उद्योग को अलग कर दिया क्योंकि वहाँ ये बाल श्रम करते थे। अधिकतर बच्चों के काम खत्म हो गए हैं तथा वे और भी खराब काम जहाँ वेतन कम मिलता है चले गए हैं। कुछ तो गलत धंधों में भी शामिल हो गए हैं। अल्पविकसित देश इस तरह की स्थिति में नहीं है कि वे इस तरह के श्रम स्तरों को निर्धारित कर सकें। इसी प्रकार पर्यावरण संबंधी स्तर निर्धारण में भी समस्या है। प्रो० जगदीश भगवती के अनुसार इसका सबसे बड़ा नुकसान अल्पविकसित देशों को ही भुगतना पड़ेगा तथा वे ही इसकी चपेट में आएँगे। क्योंकि ये देश इसकी बजाय पीने के पानी गुणवत्ता में सुधार करने पर खर्च करना चाहेंगे, न कि पर्यावरण सुधार के लिए।

TRIPs, सेवाएँ, क षि, श्रम स्तर निर्धारण तथा पर्यावरण से संबंधित बातें जो WTO में निर्धारित की गई है। भारत को उसके लिए तैयार रहना चाहिए तथा भविष्य में उभरनेवाली चुनौतियों का सामना करने के लिए राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय नीति निर्धारित करनी चाहिए तभी भारत की मोल-भाव करने की क्षमता बढ़ेगी।

# अध्याय-24
# RBI की मौद्रिक नीति का अवलोकन
# (Review of Monetary Policy of RBI)

रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया (RBI) की स्थापना अप्रैल 1, 1935 को हुई। 1947 में आजादी मिलने के पश्चात् जनवरी 1, 1949 को इसको राष्ट्रीयकरण किया गया।

दूसरे केन्द्रीय बैंकों की तरह RBI भी सभी तरह के परम्परागत केन्द्रिय बैंकिंग कार्य करता है। लेकिन भारत की अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की प्रव त्ति होने की वजह से यह विकासात्मक कार्य भी करता है। RBI के मुख्य कार्य करेंसी नोट प्रदान करना, सरकार का बैंकर, बैंकों का बैंक विनिमय प्रबंधन तथा नियंत्रण, साख नियंत्रण, कृषि वित्त, तथा आँकड़ों का इकट्ठा करना तथा प्रकाशित करना है। सरकार भी RBI से न केवल मामलों तथा आर्थिक समस्याओं के बारे में भी सलाह लेती है। यह देश की योजना प्रक्रिया भी अहम् भूमिका निभाता है।

## RBI की मौद्रिक नीति
## (Monetary Policy of RBI)

मौद्रिक नीति को रेगुलेटरी पॉलिसी भी कहा जाता है जबकि केन्द्रीय बैंक आर्थिक उद्देश्य पूरा करने के लिए इसकी मुद्रा की पूर्ति पर नियंत्रण रखता है। यह तत्त्व केवल विकसित देशों पर लागू है जबकि अल्पविकसित देश जैसे भारत में यह केवल मुद्रा की पूर्ति को बनाए रखने के लिए ही सीमित नहीं रहती। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया की मौद्रिक नीति के सन्दर्भ में यह अल्पविकसित देशों की जरूरतों को ध्यान में रखकर बनाई जाती है। RBI का केवल साख पर प्रतिबंध लगाना ही नहीं है बल्कि बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय बैंक का कार्य अनुत्पादक क्रियाओं को छोड़कर या नियंत्रित करके उत्पादक क्रियाएँ जैसे कृषि तथा उद्योग में इसकी बढ़ी हुई साख जरूरतों को पूरा करना है। इसलिए बैंक ने इसे साख का नाम दिया है। भारत में मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य कीमत स्थिरता, सामाजिक न्याय तथा वित्तीय संस्थान हैं। योजनाओं के अन्तर्गत मौद्रिक नीति का प्रयोग राष्ट्रीय आर्थिक तथा उद्देश्य पूरा करने के लिए समय-समय पर किया है जो कि इस नीति पर बगैर बात का दबाव है। इसलिए भारत में मौद्रिक नीति का उद्देश्य केवल साख नियंत्रण नहीं है। यह भी स्वीकार किया गया है कि भारत में आर्थिक नीति का उद्देश्य कीमत स्थिरता तथा आर्थिक संव द्धि है तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मुद्रा की पूर्ति का रेगुलेशन करना आवश्यक है।

RBI का मुद्रा की पूर्ति तथा साख पर पूरा नियंत्रण रखने के लिए इसे नोट छापने का अधिकार है। यह निर्णय करने के लिए कि कैसे RBI इन उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल है तो हमें देश में विभिन्न प्रकार की मुद्रा के चक्रीय प्रवाह की महत्ता को जानना होगा। अधिकतर देशों में विनिमय का माध्यम लीगल टेण्डर मनी (सिक्के व कागज के नोट) है। अधिकतर देशों में इसकी अपेक्षा भुगतान चैक द्वारा किया जाता है।

वर्तमान में भारत में करेंसी नोट तथा चैक दोनों का प्रयोग भुगतान के लिए किया जाता है।

सिक्कों का मुद्रा में थोड़ा हिस्सा है तथा यह थोड़ा भुगतान करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

## RBI द्वारा करेंसी का नियंत्रण
## (Control of Currency by the RBI)

करेंसी के नियंत्रण का मतलब है करें करेंसी नोट व सिक्कों की पूर्ति पर नियंत्रण। जैसे हम पहले भी बता चुके है कि सिक्के की मात्रा कम है इसलिए इसके लिए अथवा इसको नियंत्रित करने के लिए कोई स्पेशल माप की आवश्यकता नहीं है। करेंसी की मात्रा का नियंत्रण करना बहुत महत्त्वपूर्ण है तथा RBI को इसको इस्यू करने में एकाधिकार है। RBI सोने के रिजर्व के आधार पर कितने भी नोट छाप सकता है। इसकी एक ही शर्त है कि सोना व विदेशी रिजर्व 200 करोड़ रुपये से नीचे नहीं गिरने चाहिए जिसमें सोना का हिस्सा हमेशा 115 करोड़ होना चाहिए।

नोट छापने का तरीका बहुत आसान है बैक (RBI) बैकिंग विभाग से प्रतिभूतियाँ आदि इस्यू विभाग को हस्तान्तरित कर देता है तथा जितने की भी प्रतिभूतियाँ हैं उतनी ही मात्रा में नोटों को छाप दिया जाता है। RBI खाजाना बिल के आधार पर भी नोट छाप सकता है। यद्यपि RBI की सफलता पर कई अर्थशास्त्रियों ने प्रश्न चिह्न लगाए हैं उनका मानना है कि इसे कीमत स्फीति की स्थिति उत्पन्न होती है कुछ अर्थशास्त्रियों का मानना है कि कीमत स्फीति की स्थिति सरकार उत्पन्न करती है। उनके अनुसार RBI पूर्णरूप से सरकार के आधीन है तथा यह कोई भी नीति स्वतन्त्र रूप से लागू नहीं कर सकता जबकि सरकार योजनाओं के अन्तर्गत घाटे की अवस्था में है। यद्यपि देश में दो मौद्रिक संगठन है। एक है केन्द्र सरकार तथा दूसरा RBI और इन दोनों में केन्द्र सरकार ज्यादा शक्तिशाली है।

मुद्रा की पूर्ति के निर्धारण में सरकार तथा विभिन्न मौद्रिक संस्थाओं की भूमिका समझने के लिए, मुद्रा गुणक प्रक्रिया रिजर्व मुद्रा के साधन तथा रिजर्व मुद्रा के तत्त्व को समझना आवश्यक है। रिजर्व मुद्रा को प्राथमिक मुद्रा या मुद्रा आधार भी कहते हैं। बैंकों की मुद्रा की जमा अवस्था रिजर्व पर निर्भर करती है। यद्यपि सिक्के RBI का दायित्व नहीं है। यह सरकार की तरफ केवल जारी करता है। नोट रखने की जिम्मेदारी RBI की है। RBI के पास बैंकों की जमा भी है। यद्यपि भारत में रिजर्व मुद्रा (रक्षित मुद्रा) के मुख्य तत्त्व है- (i) RBI के साथ बैकों की जमा, (ii) मुद्रा का चलन आदि।

1990-91 से रक्षित मुद्रा में तेजी से व द्धि हुई तथा इसने मुद्रा की पूर्ति का बड़े पैमाने पर विस्तार किया है रक्षित मुद्रा बढ़ने के साथ-साथ मौद्रिक संस्थाओं का अध्ययन भी आवश्यक है। जैसा कि हम पहले भी बता चुके हैं कि करेंसी RBI जारी करता है तथा सिक्के व एक रुपये का नोट केन्द्र सरकार जारी करती है। यह भी धारणा है कि RBI ही मुद्रा का सबसे बड़ा नियंत्रक है। लेकिन यह सही नहीं है क्योंकि RBI केवल करेंसी नोट जारी करता है लेकिन यह पूर्ण रूप से सरकार के नियंत्रण में काम करता है क्योंकि सरकार द्वारा दिए गए सभी ट्रेजरी बिलों को इसे खरीदना पड़ता है। इसकी जमा पूँजी भी रक्षित मुद्रा पर निर्भर करती है। तथा इसका कुछ हिस्सा जनता के पास करेंसी नोट के रूप में रहता है। रक्षित मुद्रा में निम्न शामिल हैं, बैकों को RBI की साख व्यापारिक क्षेत्र को, RBI की कुल विदेशी मुद्रा संपत्ति।

## RBI द्वारा साख का नियंत्रण
## (Control of Currency by the RBI)

भारत में RBI को साख नियंत्रण के लिए काफी अधिकार प्राप्त है लेकिन साख की पूर्ति पर RBI का नियंत्रण काफी कमजोर है। इसका मुख्य कारण भारतीय मुद्रा बाजार का अविकसित

होना है। परम्परागत क्षेत्र में भी देशी बैंक तथा मनी लैंडर का पूरा नियंत्रण है। RBI निम्न तरीकों से साख का नियंत्रण करता है-

1. **बैंक दर नीति (The Bank Rate Policy)** - दूसरे बैकों की तरह, RBI भी साख का नियंत्रण बैक दर की सहायता से करता है। यद्यपि अर्द्ध विकसित देशों में विनियोग का प्रोत्साहन देने के लिए ब्याज की दर का ढाँचा सहायक नहीं है। लेकिन RBI ब्याज दर बढ़ाकर ही साख का नियंत्रण करता है। 1980 के दौरान ब्याज 10 प्रतिशत थी यह जुलाई 1991 में 11 प्रतिशत तथा अक्टूबर 8, 1991 में बढ़ाकर 12 प्रतिशत की गई। यह कीमत स्फीति को नियंत्रण करने का RBI का औजार था। लेकिन भारत में जिस तरह की स्थिति है उसे बैंक ब्याज दर से नियंत्रण करना मुश्किल है क्योंकि भारतीय मुद्रा बाजार सही नहीं है। भूतपर्व RBI गवर्नर ने कहा था बढ़ी ब्याज केवल लोगों के लिए एक सिग्नल है यह स्फीतिकारी प्रभावों को नियंत्रित नहीं कर पाती।

   यद्यपि आर्थिक सुधार के बाद RBI ने वित्तीय क्षेत्र सुधार के रूप में बैंक दर नीति को मौद्रिक तथा साख नीति को नियंत्रण करने के लिए तथा बैंक दर नीति को प्रभावी बनाने के लिए कदम उठाए हैं। इस नई भूमिका में बैंक दर को घटाकर 7 प्रतिशत कर दिया है। बैंक दर में अन्तिम कटौती अप्रैल 1, 2000 को हुई थी।

2. **खुले बाजार की क्रियाएँ (Open Market Operations)** - इसकी जरुरत जब महसूस की गई जब साख नियंत्रण में बैक दर नीति कमजोर साबित हुई। बैंक दर तथा खुले बाजार की क्रियाएँ एक दूसरे के पूरक हैं। यद्यपि भारत जैसे अर्द्ध विकसित देश में बैंक दर नीति का प्रभाव नहीं है क्योंकि मुद्रा बाजार की प्रकृति अविकसित है। इस प्रकार खुले बाजार की क्रियाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। भारत में सरकार प्रतिभूति बाजार पूर्णरूप से विकसित है। RBI Act के द्वारा RBI सरकारी प्रतिभूतियाँ ट्रेजरी बिल और दूसरी स्वीकृत प्रतिभूति की खरीद से बेच का कार्य का संचालन करता है। RBI को भी लघु स्तर के व्यापारिक बिल खरीदने बेचने का अधिकार है। खुले बाजार की क्रियाएँ बैक दर नीति से ज्यादा प्रभावी है क्योंकि RBI को व्यापारिक बैंकों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता लेकिन बैक दर में ऐसा नहीं है। अब RBI नकद देकर सरकारी प्रतिभूतियाँ नहीं खरीदता बल्कि यह स्वीच ट्रांजेक्सन के तहत खरीदता है जिसका उद्देश्य तरलता में अनियंत्रित बढ़ोत्तरी को रोकना है।

3. **नकद रक्षित अनुपात (Case Reserve Ratio (CRR))** - साख नियंत्रण का यह भी महत्त्वपूर्ण यंत्र है। RBI एक्ट 1962 के तहत, RBI को व्यापारिक बैकों के लिए CRR को 3 से 15 प्रतिशत के बीच निश्चित करने का अधिकार है। यह 1970 तथा 1980 में स्फीति नियंत्रण के लिए की गई थी।

   यद्यपि नरसिंहम कमेटी ने नवम्बर 1991 में CRR का स्फीति नियंत्रण में प्रयोग करने की वकालत नहीं की। उनके मतानुसार ऊँची CRR बैक लाभ को प्रभावित करता है यह बैक पर व्यापारिक क्षेत्रों को ऋण पर ऊँची ब्याज दर लेने पर भी दबाव डालता है। इसलिए 1996 में CRR घटाकर 13 प्रतिशत कर दिया गया जो 1995 में 14 प्रतिशत था। CRR में अन्तिम कटौती 8 प्रतिशत अप्रैल 2000 को की गई। इस कटौती से नकद की मात्रा बढ़ने से व्यापारिक बैंकों की उधार देने की क्षमता भी बढ़ी।

4. **सांविधिक तरलता अनुपात (Statutory Liquidity Ratio (SLR))** - बैंक रेगुलेशन (अमैडमैन्ट) एक्ट 1962 के तहत बैकों को अपनी कुल माँग व दायित्व का न्यूनतम 25 प्रतिशत SLR के रूप में रखना है। इस एक्ट के तहत RBI को SLR 40 प्रतिशत बढ़ाने

की आजादी है यदि यह तरलता नियंत्रण के लिए आवश्यक है तो, सितम्बर 22, 1990 को RBI ने व्यापारिक बैंकों की कुल माँग तथा समय दायित्व का 38.5 प्रतिशत बढ़ा दिया। इसका मुख्य कारण भी स्फीतिकारी दबाव कम करना था।

नरसिंहम कमेटी ने इसका समर्थन नहीं किया क्योंकि उसका मानना था कि केन्द्र व राज्य सरकार के बजट के लिए साधन जुटाने का एक यंत्र बन गया है। इसलिए इसको 38.5 प्रतिशत से घटाकर 25 प्रतिशत कर दिया।

5. **चयनित साख नियंत्रण** (Selctive Credit Control) - इसका मुख्य उद्देश्य मुख्य उद्देश्यों के लिए साख जुटाना है। मात्रात्मक साख नियंत्रण की बजाय चयनित साख नियंत्रण प्रणाली सही है। 1956 से पहले RBI ने इसे विकसित नहीं किया था। इसके तहत RBI व्यापारिक बैंकों को निर्देश देती है कौन-से ऋणों का लेन-देन नहीं करना। यद्यपि चयनित साख नीति के तहत उत्पादन के लिए साख, निर्यात तथा वस्तुओं के आदान-प्रदान पर प्रतिबंध नहीं है क्योंकि इससे अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है।

1996-97 में इसका उदारीकरण कर दिया गया कि बैंक दाल, तेल तथा बीज तेल पर ऋण प्रदान कर सकते हैं। यद्यपि इससे कीमत प्रभावित होने का तथा स्फीति बढ़ने का खतरा था।

इसलिए हम कह सकते हैं कि मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था में संव द्धि का बढ़ाना था। यद्यपि RBI की मौद्रिक नीति को सरकार ने स्फीति पर पूर्ण नियंत्रण करने की छूट नहीं दी थी क्योंकि यह डर था कि कहीं अर्थव्यवस्था की परमोटमैन्स को धक्का न लगे। मौद्रिक नीति का गैर सरकारी क्षेत्रों को साख प्रदान करने का भी महत्त्वपूर्ण कदम था।

यद्यपि 1991 में आर्थिक सुधार कार्यक्रम में CRR तथा SLR तथा बैंक दर में कटौती करने से साफ दिखाई देता है कि मौद्रिक नीति औद्योगिक व द्धि की सहायता के लिए साख का विस्तार करना चाहती थी। कीमत स्थिरता को बनाए रखने से यह औद्योगिक क्षेत्र में ऊँची दर से व द्धि करने की सहायक है।

यह भी माना जाता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में मौद्रिक नीति की भूमिका सीमित है। यदि शर्तों को सही रूप से लागू किया जाए तो मौद्रिक नीति अर्थव्यवस्था में सुचारूरूप से कार्य करने पर प्रेरित कर सकती है। बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात् मौद्रिक नीति का गैर सरकारी क्षेत्र को धन मुहैया कराना राष्ट्रीय आर्थिक नीति का एक महत्त्वपूर्ण यंत्र बन गया था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि RBI की मौद्रिक नीति अर्थव्यवस्था में कीमत स्थिरता बनाए रखने तथा आर्थिक व द्धि बढ़ाने में सहायक है। औद्योगिक क्षेत्रों को कम ब्याज दर पर ऋण प्रदानकर यह निवेश के रास्तों का विस्तार करती है।

मौद्रिक नीति का अवलोकन करते हुए एस० चक्रवर्ती ने 1985 में RBI को अपनी रिपोर्ट सौंपी तथा सुझाव दिया की मौद्रिक तथा राजस्व नीति के बीच समन्वय होना चाहिए, मुद्रा पूर्ति का नियमन, कीमत स्थिरता बनाए रखना, ब्याज दर नीति तथा साख का प्रयोग आदि मौद्रिक नीति के मुख्य उद्देश्य होने चाहिए। इसकी सिफारिशें निम्न थी।

1. मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य कीमत स्थिरता बनाए रखना होना चाहिए।
2. बजट घाटा पूरा करने के लिए वित्त प्रक्रिया का संचालन मौद्रिक नीति द्वारा नहीं होना चाहिए।
3. कमेटी ने यह भी सिफारिश की कि बैंकों को अपनी उधार दर निर्धारित करने की

स्वतन्त्रता होनी चाहिए। केवल चयनित क्षेत्रों में ही ब्याज दर में छूट देनी चाहिए।

4. कमेटी के अनुसार भारत में मुद्रा बाजार के ढाँचे में परिवर्तन करना चाहिए। उनके विचार से ट्रेजरी बिल बाजार, कॉल मुद्रा बाजार, व्यापारिक वित्त बाजार को लघु स्तर पर साधन जुटाने के लिए अहम भूमिका निभानी चाहिए।

इस प्रकार मौद्रिक नीति को प्रभावी बनाने के लिए तथा इसका नियंत्रण बढ़ाने तथा साख नियंत्रण व विकास प्रक्रिया बढ़ाने के लिए इन सुझावों पर गौर करने की आवश्यकता है। क्योंकि मौद्रिक नीति का प्रयोग यदि अच्छे के लिए किया जाए तो यह अच्छी है यदि हम इसका प्रयोग खराब के लिए करते है तो अर्थव्यवस्था पर इसके दुष्परिणाम भी देखने को मिलेंगे।

# अध्याय-25
# भारत में कीमत स्तर
# (Price Trends in India)

आर्थिक संव द्धि तथा आर्थिक जीवन में कीमत स्थिरता एक जरूरी शर्त है। कीमतों में उतार-चढ़ाव से अनिश्चितता की स्थिति रहती है जो विकास प्रक्रिया के लिए सही नहीं हैं। यदि कीमतों में तेजी से व द्धि होती है तो इसका नुकसान गरीबों को सहन करना पड़ता है अथवा गरीबों के लिए यह घातक है। बाजार अर्थव्यवस्था में उत्पादक अपने उत्पादकों की माँग का पूर्णरूप से अध्ययन करने के बाद ही फैसला करता है। इसलिए जो भी कीमत में परिवर्तन होता है। उसका उत्पादन में उसी समय प्रभाव दिखाई देता है। पचास के दशक से कीमतों में लगातार व द्धि हुई है। कीमत उतार-चढ़ाव का असर उत्पादक तथा उपभोगकर्त्ता दोनों पर ही पड़ता है लेकिन सबसे ज्यादा नुकसान गरीब उपभोगकर्त्ता को होता है क्योंकि कीमत बढ़ने पर उसकी वास्तविक आय कम हो जाती है।

यदि योजना के अन्तर्गत कीमत आँकड़ों का आंकलन करें तो 1950-51 से अब तक कीमत स्तर में गिरावट रिकॉर्ड की गई है। कीमत सूचकांक नंबर (आधार वर्ष 1961-62 = 100) जो 1950-51 में 89 था घटकर 1955-56 में 74 हो गया। इसलिए साधारण कीमत स्तर में प्रतिवर्ष 3.2 प्रतिशत की गिरावट हुई है। 1956-57 से 1963-64 में कीमत स्तर में ठीक-ठाक व द्धि हुई इस समय में कीमत स्तर वार्षिक दर पर 5.1 प्रतिशत बढ़ा। यदि कीमत लघु-काल में बढ़ती है तो इससे अर्थव्यवस्था गड़बड़ा जाती है। लेकिन दीर्घकाल में बढ़ने पर इतना ज्यादा अंतर नहीं पड़ता। इस दौरान खाद्यान्न वस्तुओं की तथा औद्योगिक कच्चे माल की कीमत निर्मित वस्तुओं की अपेक्षा तेजी से बढ़ी। इन वर्षों में कृषि उत्पादों में भी काफी व द्धि हुई। 1964-65 में साधारण कीमत स्तर प्रतिवर्ष औसत दर से 9.1 प्रतिशत बढ़ा। इस बढ़ी कीमत से लोगों को काफी तंगी हुई। यद्यपि ये कीमत एक दर से नहीं बढ़ी। 1964-65 से 1967-68 तक कीमतें 11.0 प्रतिशत प्रतिवर्ष से बढ़ी। 1971-72 से 1974-75 में देश को ऊँची स्फीति की दशा से गुजरना पड़ा। 1991-92 में भी स्फीति की दर 13.7 प्रतिशत थी। 1998 में स्फीति की दर 6.4 प्रतिशत थी। स्फीतिकारी दबाव की वजह से 1997-98 में प्राथमिक उत्पादों में तेजी से व द्धि हुई। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि देश में कीमत नीति का उद्देश्य माँग व पूर्ति में इस तरह संतुलन पैदा करना है कि जिससे अर्थव्यवस्था पर इसका ऋणात्मक प्रभाव न पड़ें। कीमत नीति का मुख्य उद्देश्य माँग व पूर्ति में संतुलन बनाए रखना है। प्रभावी मांग में व द्धि होने पर साधारण कीमत में बढ़ोत्तरी होती है। लेकिन माँग बढ़ने पर यदि पूर्ति में बढ़ोत्तरी न हो तो स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसको निम्न तरीके से वर्णित किया गया है-

1. **सार्वजनिक खर्च में व द्धि (Increase in Public Expenditure)** - भारत में सार्वजनिक खर्च पहले ही बढ़ चुका है। अल्प-विकसित अर्थव्यवस्था में नई संस्थाओं की स्थापना से सार्वजनिक खर्च बढ़ना लाजमी है। 1950-51 से 198-99 तक केन्द्र तथा राज्य सरकार के खर्च में देश के NNP का 10.6 प्रतिशत से 56.6 प्रतिशत की व द्धि हुई है। वर्तमान में सरकार का 45 प्रतिशत खर्च गैर विकास कार्यों पर खर्च होता है।

इसलिए इतना बड़ा खर्च गैर-विकास वस्तुओं पर खर्च होने से अथवा अनुत्पादक क्रियाओं पर खर्च होने से कीमतों में व द्धि होती है। इसका मुख्य कारण गैर-विकसित कार्यों पर खर्च होने से लोगों की क्रय शक्ति बढ़ने से वस्तुओं की माँग भी बढ़ जाती है तथा उस हिसाब से वस्तुओं की पूर्ति में व द्धि नहीं होती। इसलिए सरकार के बगैर सोचे-समझे खर्च से सरकारी खर्च बढ़ने से जो आमतौर पर ब्याज के रूप में दिया जाता है जिससे बजट घाटा बढ़ने से स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न हो जाते हैं।

2. **घाटे की वित्त व्यवस्था** **(Deficit Financing)** - जब सरकारी आय से सरकारी खर्च ज्यादा है तो सरकार बैंकों से उधार लेकर घाटा पूरा करती है। साधनों को बढ़ाने के प्रक्रिया को घाटा वित्त व्यवस्था कहते हैं। सरकार लोगों पर कर भार लगाकर घाटा पूरा करती है। लेकिन यदि वित्त घाटा बहुत ज्यादा है तो यह न्यायसंगत नहीं है। द्वितीय तथा त तीय पंचवर्षीय योजना में वित्त घाटा 954 करोड़ रुपये तथा 1133 करोड़ था। इस तरह के वित्त घाटा का मतलब है देश में संव द्धि धीरे है और यह स्फीति का कारण बन जाता है। यह स्थिति 1990-91 में तो और भी खराब थी क्योंकि उस वर्ष बजट घाटा 34,669 करोड़ रुपये था। यद्यपि सरकार ने 1991-92 में इसको नियंत्रित करने की कोशिश की तथा यह कम होकर 7,081 करोड़ हो गया लेकिन आठवीं पंचवर्षीय योजना में यह स्थिति काबू से बाहर हो गई और बजट घाटा इस योजना के अन्तर्गत 61,134 करोड़ था। ये थे माँग की तरफ (माँग बढ़ने से) अर्थव्यवस्था पर प्रभाव। अब हम पूर्ति पक्ष का वर्णन करेंगे कि यह कैसे कीमत को प्रभावित करता है।

**जरूरी वस्तुओं की जमाखोरी** **(Hoarding of Essential Articles)** - कीमतें बढ़ने पर अथवा कृषि फसल के फेल होने पर अथवा मौसम हालात ठीक न होने पर बड़े किसान व थोक व्यापारी जो कृषि वस्तुओं के दलाल हैं वे वस्तुओं की जमाखोरी करना आरम्भ कर देते हैं कि भविष्य में इन वस्तुओं की कीमतें बढ़ेंगी। यदि इन उत्पादकों तथा मध्य आदमी का व्यवहार गलत नहीं है न ही अनैतिक है क्योंकि यही तो पूँजीवाद का मंत्र है। जब उत्पादन कम हो तथा साथ में जमाखोरी भी हो तो कीमतें अपने आप बढ़ जाती हैं। यद्यपि भारत में आर्थिक नियोजन के समय से ही जमाखोरी एक आम बात रही है। 1991 में भी कीमत बढ़ने का यह मुख्य कारण रहा था। 1998 में भी जमाखोरी की वजह से प्याज की कीमतें आसमान छू गई थी।

3. **औद्योगिक उत्पादन में अपूर्ण बढ़ोत्तरी** **(Inadequate Rise in Industrial Product)**- अल्पविकसित देशों जनसंख्या दबाव से माँग में लगातार व द्धि होती रहती है लेकिन सरकार का काफी पैसा अनुत्पादक क्रियाओं पर खर्च होता है जैसे सब्सिडी देना आदि। ऐसी अवस्था में उत्पादक क्रियाओं पर कम खर्च से उत्पादन की मात्रा माँग की अपेक्षा नहीं बढ़ पाती, कारण - माँग अधिक पूर्ति कम और यह कीमत व द्धि का कारण बनती है।

4. **कृषि कीमत नीति** **(Agricultural Price Policy)** - भूमि सुधार अथवा जमींदारी प्रथा खत्म होने पर एक नया वर्ग बड़े किसान के रूप में उभर कर आए हैं। वैसे तो भारतीय कृषि का जीवन निर्वाह खेती का नाम दिया है। लेकिन बाजार आधिक्य में सबसे ज्यादा योगदान बड़े किसानों का है।

क्योंकि ये सरकार पर कीमतें बढ़ाने का दबाव डालते हैं तथा अवैधानिक तरीके जैसे जमाखोरी आदि भी करते हैं। सरकार ने किसानों के लिए न्यूनतम कीमत निश्चित

की हुई है जिससे उन्हें उत्पादन बढ़ने से कोई जोखिम नहीं उठाना पड़ता क्योंकि सरकार इसे अपने आप खरीद लेती है। इसलिए यही कारण है कि किसान सरकार पर लगातार कीमत बढ़ाने के लिए दबाव डालते रहते हैं।

5. **कृषि उत्पादन में अस्थिरता** (Unstability in Agriculature Production) - यद्यपि गत कुछ वर्षों में कृषि उत्पादन में काफी व द्धि हुई है लेकिन फिर भी भारतीय क षि की प्रव त्ति मौसमी है तथा अधिकतर खेती वर्षा पर निर्भर करती है ऐसी अवस्था में कृषि उत्पादन में स्थिरता नहीं रहती और यह कीमत व द्धि का कारण बन जाती है। लेकिन जो श्रमिक औद्योगिक क्षेत्र में काम करते हैं वे भी कृषि वस्तुओं में कीमत बढ़ने पर अपने मालिक से मजूदरी बढ़ाने की बात करते है। इसलिए गत कुछ वर्षों में जिन वर्षों में कृषि वस्तुओं की कीमतों में कमी आई है उस वर्ष औद्योगिक वस्तुओं की कीमतें बढ़ी है।

लेकिन बढ़ी कीमतों का अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। क्योंकि अर्थशास्त्रियों का मानना है कि थोड़ी कीमत व द्धि तो अर्थव्यवस्था के लिए ठीक है क्योंकि यह निवेश के द्वार खोलती है। जिससे रोजगार तथा आय दोनों में व द्धि होती है। लेकिन उच्च गति से बढ़ी हुई कीमत विकास में बाधक है। निम्न कारणों द्वारा हम कीमत व द्धि का अर्थव्यवस्था पर पड़नेवाले प्रभावों का वर्णन करेंगे।

1. **आय असमानता** (Income Inequalities) - यदि कीमतें लगातार बढ़ती है तो अर्थव्यवस्था में आय तथा धन में असमानता बढ़ती है। जिन लोगों की आय निश्चित है जैसे श्रमिक, सरकारी कर्मचारी, अध्यापक आदि की कीमतें बढ़ने पर उनकी क्रय शक्ति पर भी प्रभाव पड़ता है। उत्पादक तथा व्यापारी भारी मात्रा में लाभ कमाते हैं। अर्थव्यवस्था का धन कुछ ही लोगों के हाथों में सिमटकर रह जाता है। यद्यपि कीमतें बढ़ने पर श्रमिक वर्ग ज्यादा मजदूरी की माँग करता है लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि कीमत बढ़ने से मजदूरी भी बढ़ जाए। ऐसी अवस्था में गरीब वर्ग तथा मध्यम वर्ग पिसता है तथा बड़े किसान, व्यापारी तथा उत्पादक बड़ी कीमत से लाभ कमाते हैं।

2. **विकास में रुकावट** (Hindrance in Development) - बड़ी कीमत हमेशा विकास में रुकावट बनती है। कीमतें बढ़ने से चालू प्रोजेक्टों की लागत बढ़ जाती है तथा यह समय पर पूरे नहीं हो पाते। कीमतें बढ़ने पर बचत भी प्रभावित होती है। भारत में बचत घरेलू क्षेत्र द्वारा की जाती है। इसलिए कीमत बढ़ने पर यह क्षेत्र महसूस करता है कि उनकी बचत का मूल्य कम हो रहा है और ये बचत करना कम कर देते हैं। यद्यपि विकसित देशों में निजी क्षेत्र स्फीति के समय भारी बचत करता है लेकिन भारत में ऐसा नहीं हैं।

3. **संतुलन का उलटा प्रभावित होना** (Balance of Payment Affected Adversely) - कीमत व द्धि की समस्या सिर्फ भारत की ही नहीं यह पूरे देश की समस्या है। लेकिन भारत में कीमतें बढ़ने से भुगतान संतुलन प्रभावित है क्योंकि कीमतें बढ़ने पर देश की वस्तुओं की माँग अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कम रहती है। इसके साथ भारत आयातक दूसरे देश की वस्तुओं को अपने देश की अपेक्षा सस्ती पाते हैं। कारण आयात अधिक किया निर्यात कम तथा भुगतान संतुलन की समस्या खड़ी हो जाती है।

# कीमत नियंत्रण के लिए सरकारी नीति
## (Government Policy to Control Price)

सरकार ने 1962 के पश्चात् ही कीमत नियंत्रण पर ध्यान देना आरम्भ किया है। सरकार ने कीमत नियंत्रण के लिए कई उपाय किए हैं। भारत में कीमत व द्धि तथा दूसरे देशों की कीमत व द्धि के बीच काफी अंतर है। इसलिए विकसित देशों ने कीमत नियंत्रण के जो कार्य किए हैं वे हमारे देश में प्रभावी नहीं है। भारत में अथवा अर्ध-विकसित देशों में कीमत स्थिर करने का मुख्य तरीका है मुद्रा पूर्ति पर प्रतिबंध लगाना। सरकार का मानना है कि कीमत को केवल मुद्रा तथा राजकोषीय माप द्वारा नियंत्रित नहीं किया जा सकता। यद्यपि सरकार ने वित्त घाटा कम करने के लिए गैर-विकास खर्च में कमी की है। इसके लिए सरकार ने निम्न कदम उठाए हैं।

1. **मौद्रिक उपाय (Monetary Measures)** - कीमत नियंत्रण के लिए सरकार ने RBI की मौद्रिक नीति का अवमूल्यन कर 1980 में CRR को बढ़ाया ताकि व्यापारिक बैंक साख का विस्तार न कर सकें। क्योंकि भारत जैसे देश में जहाँ बैंक दर नीति तथा खुले बाजार की क्रियाएँ पूर्णरूप से सही नहीं है वहाँ CRR पर निर्भर रहना मजबूरी है। SLR को भी दो अवस्थाओं में बढ़ाया गया। 35 प्रतिशत 28 जुलाई 1984 को तथा 36 प्रतिशत कर दिया। यद्यपि नरसिंहम कमेटी ने CRR तथा SLR पर निर्भर रहने वाली नीति को घटा दिया है इसका वर्णन हम RBI की मौद्रिक नीतिवाले अध्ययन में कर चुके हैं लेकिन यदि हम RBI की मौद्रिक नीति को देखें तो वह ज्यादा प्रभावी साबित नहीं क्योंकि RBI सरकार के निर्देश पर काम करता है। यह तभी संभव है जब RBI को मौद्रिक पद्धति से कार्यों पर नियंत्रण तथा देखभाल के लिए पूर्ण स्वतंत्रता हो।

2. **राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)** - इसका भी राजकोषीय नीतिवाले अध्याय में वर्णन कर चुके हैं। राजकोषीय नीति को कीमत नियंत्रण के लिए प्रभावी तौर पर प्रयोग किया जाता है। यद्यपि अल्पविकसित देशों में इसका प्रभाव कम दिखाई देता है। यद्यपि सरकार ने हमेशा कहा है कि उसने गैर-विकसित खर्च एक सीमा तक किया है। निजी क्षेत्र में उद्योगों को विभिन्न कर लाभ दिया है। इससे पूर्ति की स्थिति में सुधार होगा। घाटे की वित्त व्यवस्था को रोकने के प्रबंध किए हैं यद्यपि यह कहना मुश्किल है कि सरकार ने कीमत नियंत्रण के इन उपायों का पूर्व रूप से पालन किया है। यद्यपि वित्त घाटा में कमी आई है जो 1992-93 में GDP का 5.1 प्रतिशत था लेकिन 1993-94 में यह वित्त घाटा बढ़कर GDP का 6.4 प्रतिशत हो गया यद्यपि 1998-99 में यह GDP का 5 प्रतिशत था।

3. **जमाखोरी तथा काला-बाजारी पर नियंत्रण (To Control as Hoarders and Black Markters)** - सरकार ने आवश्यक वस्तुओं की जमाखोरी तथा काला-बाजारी रोकने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली शुरू की तथा उन वस्तुओं का आयात किया जिनकी मात्रा कम थी। यद्यपि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत उत्पादन, स्टॉक, यातायात तथा इन आवश्यक वस्तुओं के वितरण में समन्वय होना चाहिए। केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच भी सार्वजनिक वित्त प्रणाली के तहत समन्वय होना चाहिए।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आवश्यकताओं की पूर्ति में कमी होने से कीमतों में व द्धि हो जाती है। इस प्रकार सरकार ने इस कमी को पूरा करने के लिए सार्वजनिक वित्त प्रणाली आरंभ की। इस प्रणाली के तहत उपभोक्ताओं को सामान्य कीमतों पर वस्तुएँ उपलब्ध कराई जाती है। यह पद्धति कीमत को नियंत्रण करने मे कारगर साबित हुई है। इस प्रकार इसका वर्णन पहले भी किया जा चुका है कि थोड़ी कीमत व द्धि अर्थव्यवस्था के लिए लाभकारी है लेकिन ऊँची कीमत व द्धि अर्थव्यवस्था के संतुलन को बिगाड़ देती है। उत्पादक तथा उपभोक्ता की रुचि को ध्यान में रखते हुए कीमतों में स्थिरता होनी आवश्यक है तभी देश का विकास संभव होगा।